हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के उदय का समाजशास्त्र

(एम॰ फिल॰ की उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध)

शोध-निदेशक
प्रोफेसर मैनेजर पाण्डेय

शोधार्थी
राहुल सिंह

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

2006

CENTRE OF INDIAN LANGUAGES
SCHOOL OF LANGUAGE, LITERATURE & CULTURE STUDIES
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI - 110067

Dated: 27/07/2005

DECLARATION

I declare that the work done in the dissertation entitle "**Hindi Sahitya Mein Aadhunikta Ke Uday Ka Samajshastra**" by me is an original work and has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/ Institution.

Rahul Singh
27/7/07
(Rahul Singh)
Research Scholar

M. Pandey 26.7.05
Prof. Manager Pandey
(SUPERVISOR)
CIL/SLL&CS/JNU

M. S. Husain
Prof. Mohd. Shahid Husain
(CHAIRPERSON)
CIL/SLL&CS/JNU

मम्मी-पापा को
कमाई की पहली किस्त

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

प्रथम अध्याय 1-54

आधुनिकता का अर्थ एवं उसके विचारधारात्मक आधार

1. आधुनिकता का पाश्चात्य विचारधारात्मक आधार
2. हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का अर्थ एवं अवधारणा

   (विशेष संदर्भ: आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी और रामविलास शर्मा की इतिहासदृष्टि)

   i) हिन्दी नवजागरण: अवधारणा और हिन्दी साहित्य

द्वितीय अध्याय 55-96

आधुनिकता के भौतिक आधार और हिन्दी साहित्य में उसके परिणाम

1. i) व्यापारिक पूंजी और व्यापारिक पूंजीवाद

   ii) मध्यवर्ग और आधुनिकता

   iii) 1857 और मध्य वर्ग

   iv) रेल डाक तार यातायात के अन्य साधन

   v) प्रेस पत्रकारिता और हिन्दी साहित्य

2. हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के भौतिक आधार: प्रभाव एवं परिणाम

तृतीय अध्याय 97-121

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता और परंपरा का द्वन्द्व

i) आधुनिकता: समाज-सुधार और धर्म-सुधार आंदोलनों के परिप्रेक्ष्य में

ii) आधुनिकता: राष्ट्रीय आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में

चतुर्थ अध्याय 122-165

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का विकास और उसकी विशेषताएँ

1. हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का प्रारंभिक स्वरूप

2. 1936 के बाद हिन्दी साहित्य में आधुनिकता की दशा और दिशा

i) आधुनिकता और आधुनिकतावाद

उपसंहार 166-168

संदर्भ ग्रंथ/ सहायक ग्रंथ/ सामग्री सूची 169-178

i) हिन्दी पुस्तकें

ii) सम्पादित हिन्दी पुस्तकें

iii) हिन्दी पत्र एवं पत्रिकायें

iv) अंग्रेजी पुस्तकें एवं आलेख

v) शब्द-कोश

vi) वेबसाइट

प्रस्तावना

यूरोप में आधुनिकता की एक सुस्पष्ट अवधारणा और इतिहास मौजूद है। प्रस्तुत 'लघु शोध-प्रबंध' मेरी इस जिज्ञासा का परिणाम है कि क्या हिन्दी साहित्य में भी आधुनिकता की कोई अपनी सैद्धांतिकी है या हम केवल पश्चिम से आयातित विचारों को ही अविवेकपूर्ण तरीके से अपनाकर ढोये जा रहे हैं? मूल प्रश्न यही था लेकिन ज्यों-ज्यों शोध का कार्य बढ़ता गया, त्यों-त्यों प्रश्नों की संख्या भी बढ़ती गयी। साहित्यिक कृतियों के साक्ष्य पर इन प्रश्नों का उत्तर ढूँढ पाना सहज नहीं था। समस्या का समाधान प्रो॰ मैनेजर पाण्डेय के इन विचारों से बेहद सहजता से हो गया कि -

"साहित्यिक समाजशास्त्र का लक्ष्य केवल कृति की व्याख्या नहीं बल्कि उसका लक्ष्य साहित्यिक कृति की सामाजिक अस्मिता की व्याख्या है और साहित्यिक कृति की सामाजिक अस्मिता रचना के सामाजिक संदर्भ और सामाजिक अस्तित्व से निर्मित होती है। इसलिए साहित्य के समाजशास्त्र में उस प्रक्रिया को समझने की कोशिश होती है, जिसमें कोई रचना साहित्यिक कृति बनती है।"

चूंकि हिन्दी साहित्य में आधुनिकता एक औपनिवेशिक निर्मिति है, अत: स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्यिक कृतियों ने औपनिवेशिक परिवेश से प्रभाव अवश्य ग्रहण किया होगा। मेरे लिए यह जानना ज्यादा महत्वपूर्ण था कि साहित्यिक कृतियों ने केवल प्रभाव ग्रहण किया या औपनिवेशक भारत और भारतीय साहित्य (विशेषकर हिन्दी साहित्य) ने राष्ट्रीय परिस्थितियों को प्रभावित भी किया? इस सवाल का जवाब तलाशने के क्रम में औपनिवेशिक भारत के राष्ट्रीय आंदोलन से सम्बद्ध राजनीतिदर्शन, इतिहासदर्शन, सामाजिक-राजनीतिक और धर्म सुधार आंदोलनों की सामाजिक स्थितियों का सर्वेक्षण आवश्यक हो गया। एम॰ गिन्सबर्ग ने अपने 'रीजन एंड अनरीजन इन सोसायटी' नामक पुस्तक में समाजशास्त्र के जिन चार प्रमुख स्रोतों की चर्चा की है, उनमें से तीन यही हैं।

टी॰बी॰ बॉटमोर ने समाजशास्त्र की पद्धतिगत व्याख्या करते हुए कहा था कि - "समाजशास्त्र एक नई पद्धति है, अन्य सामाजिक विज्ञान जिन तथ्यों पर पहले ही विचार कर चुके हैं, उन्हें देखने का एक नया तरीका है। वह नया दृष्टिकोण, ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अलग हटकर समाजीकरण या अंत:क्रिया के रूपों पर विचार करने में निहित है।"

इन्हीं बातों-विचारों से संकेत ग्रहण कर मैंने अन्तर्ज्ञानानुशासनात्मक शोध प्रविधि (Inter-disciplinary research methodology) अपनायी। इसीलिए अन्य अनुशासनों (Disciplines) से भी यथा-समाजशास्त्र, इतिहास, अर्थव्यवस्था, दर्शन, धर्मसुधार, समाज-सुधार और राष्ट्रीय-राजनीतिक आंदोलनों से भी परिवेश को समझने लायक सामग्री यथासंभव ग्रहण की गई और तब शोध का विषय बना **"हिन्दी साहित्य में**

आधुनिकता के उदय का समाजशास्त्र" (*Emergence of Sociology of Modernity in Hindi Literature*)।

प्रस्तुत 'लघु शोध-प्रबंध' मूल रूप से चार अध्यायों में विभक्त है जिसके अंतर्गत विषय एवं अवधारणा को समझने के दृष्टिकोण से कई छोटे-छोटे अध्यायों की प्रस्तावना यथास्थान की गई है। पहला अध्याय का शीर्षक है - 'आधुनिकता का अर्थ एवं उसके विचारधारात्मक आधार' इस अध्याय के पहले खण्ड में आधुनिकता के पाश्चात्य विचारधारात्मक आधारों की चर्चा करते हुए अवधारणा के रूप में उसके विकास की विभिन्न अवस्थाओं की ओर संकेत किया गया है। आधुनिकता की यूरोपीय अवधारणा पर बात देकार्त से आरंभ की गई है इसका मतलब यह नहीं कि यूरोप में आधुनिकता का आरंभ देकार्त से होता है। कहीं से शुरूआत करनी थी और देकार्त एक सुविधाजनक बिन्दु प्रतीत हुए, जहाँ से 'आधुनिकता' के रूप-ग्रहण की प्रक्रिया एक निश्चित दिशा की ओर बढ़ती दीखती है। इसके अगले चरण के रूप में मैंने कांट को देखा और फिर इन दार्शनिकों, समाजशास्त्रियों के विचारों की आलोचना-प्रत्यालोचना के क्रम में आधुनिकता का जो 'क्रिटिक' विकसित होता है उन सबकी चर्चा इस खंड में की है।

पहला अध्याय का दूसरा खण्ड 'हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का अर्थ एवं अवधारणा' पर केन्द्रित है। हिन्दी साहित्य में किसी बड़े आलोचक ने आधुनिकता पर स्वतंत्र रूप से किसी पुस्तक की रचना नहीं की है। इसलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी और रामविलास शर्मा की इतिहासदृष्टि के विवेचन विश्लेषण के माध्यम से उन सूत्रों को तलाशने की कोशिश की गई है कि क्या इनके यहाँ ऐसे विचार हैं, जो हिन्दी साहित्य की आधुनिकता की सैद्धांतिकी निर्मित करने में सहायक सिद्ध हों या हो सकते हैं? इसके परिणाम आश्चर्यजनक रहे। इन तीनों आलोचकों के यहां कुछ ठोस और मौलिक विचार मिले। तमाम विवादों और संदेह के बावजूद रामविलासजी के हिंदी नवजागरण की अवधारणा, हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के प्रश्न से अभिन्न रूप से जुड़ी मिली।

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता अपने आधुनिक अर्थों में औपनिवेशिक निर्मिति (Colonial Construct) है। दूसरा अध्याय राजनीतिक उद्देश्यों और अंग्रेजी राज के प्रच्छन्न आर्थिक दोहन की नीति को साक्ष्यों और आंकड़ों के आधार पर सामने लाता है। जो इस बात को प्रमाणित करता है कि आधुनिकता भारतीय समाज-साहित्य में अंग्रेजी राज की देन नहीं हैं, अंग्रेजी राज का परिणाम है। जो अंग्रेजी राज के कारण नहीं, अंग्रेजी राज के बावजूद आई।

दूसरा अध्याय भी दो खण्डों में है। पहला खण्ड व्यापारिक पूंजी और व्यापारिक पूंजीवाद के मध्य अंतर को दिखलाते हुए आरंभ होता है। इसमें इस बात को बतलाने का प्रयत्न है कि व्यापारिक पूंजी की प्रचुरता से आधुनिकता का कोई प्रगाढ़ संबंध नहीं है। आधुनिकता के लिए जिन ऐतिहासिक भौतिक परिस्थितियों की आवश्यकता होती है वह

व्यापारिक पूंजीवाद के दौर में निर्मित होती है। औपनिवेशिक भारत के आर्थिक विकास को रोकने और आर्थिक दोहन की नीतियों की पूर्ति हेतु अंग्रेजों ने आधुनिकता के भौतिक आधारों (रेल, डाक, तार, प्रेस आदि) का निर्माण किया। इन भौतिक आधारों की अपनी कोई चेतना नहीं थी। इनके द्वारा किस प्रकार की चेतना निर्मित की जाये, इसका निर्णय उस व्यक्ति, सत्ता या संगठन के हाथ में होता था, जो इन पर नियंत्रण रखता था। मध्यवर्ग की भूमिका यहाँ निर्णायक हो जाती है क्योंकि मध्यवर्ग आधुनिकता का उत्पाद और उत्पादक दोनों साथ-साथ है। भारतीय मध्यवर्ग अस्तित्वमान पारंपरिक आधारों से ही अंग्रेजी राज की आवश्यकता के कारण उभर कर सामने आ गया था। दूसरा अध्याय इन सभी बातों पर तर्कसंगत ढंग से चर्चा करते हुए हिन्दी साहित्य पर इसके प्रभाव को दर्शाता है।

तीसरा अध्याय 'हिन्दी साहित्य में आधुनिकता और परम्परा का द्वन्द्व' पर केन्द्रित है। औपनिवेशिक भारत में समाज सुधार और धर्म-सुधार आंदोलनों के द्वारा समाज और धर्म के रूढ़िवादी तत्वों को दूर करने के प्रयत्न हुए। इसकी प्रतिक्रिया अलग-अलग हुई। रूढ़िवादी तत्वों ने इसे भारतीय परंपरा-संस्कृति पर विदेशी हस्तक्षेप मानते हुए विरोध किया तो नवशिक्षित पाश्चात्य आचार-विचार प्रभावित बुद्धिजीवियों ने इसे अपने समाज के लिए आवश्यक बतलाया। हिन्दी साहित्य और समाज इन रूढ़िवादी, पुनरूत्थानवादी और फंडामेंटलिस्टों से प्रभवित होता रहा। आर्य समाज, ब्रहम समाज, प्रार्थना समाज के सनातनियों से आपसी मतभेद का हिन्दी साहित्य पर क्या प्रभाव पड़ा? राष्ट्रीय आंदोलन का चरित्र इनसे अप्रभावित रह सका या नहीं? तीसरा अध्याय इन्हीं प्रश्नों की पड़ताल करता है।

चौथा अध्याय 'हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का विकास और उसकी विशेषताओं' पर केन्द्रित है। पहला खण्ड भारतेन्दु युग से छायावाद की समाप्ति (1936) तक आधुनिकता के आकार ग्रहण करने की प्रक्रिया को रेखांकित करता है। जहाँ भारतेन्दु-युग, द्विवेदी-युग और छायावाद के मध्य एक अन्तर्धारा का विकास देखने को मिलता है। विधाओं के जन्म, उनके बदलते रूप-विधान और लेखकीय दायित्व को युगानुकूल संदर्भों से जोड़कर देखा गया है। राष्ट्रीय आंदोलन, औपनिवेशिक परिस्थितियों ने रचनाकारों के साहित्यिक और आलोचनात्मक विवेक के निर्माण में क्या भूमिका निभायी और फिर आलोचकीय विवेक संपन्न इन साहित्यकारों ने क्या भूमिका निभायी?

दूसरे खण्ड में 1936 के बाद हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के विकास की चर्चा है। जब 'आधुनिकतावादी आधुनिकता' की विशेषताओं को आधुनिकता का पर्याय मान लिया गया। आधुनिकता और आधुनिकतावाद के अंतर का स्पष्टीकरण यहाँ कर दिया गया है।

विशेष इतना ही कि पूरे लघु शोध-प्रबंध में हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के उदय के मूल बिन्दु की तलाश के बजाय उस प्रक्रिया के रेखांकन को प्राथमिकता दी गयी है, जिससे होता हुआ यह भाव-बोध हिन्दी साहित्य में विकसित हुआ। विषय की जटिलता

और कुछेक पुस्तकों की अनुपलब्धता के कारण कहीं-कहीं संकेतों से काम चलाया गया है, विस्तार की संभावना को दरकिनार किया गया है क्योंकि एम॰ फिल के इस लघु शोध-प्रबंध के साथ-साथ अपनी भी कुछ सीमायें रही हैं।

अब कुछ निजी बातें। प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध मेरे मित्रों के सहयोग के बिना पूरा नहीं हो पाता, विशेषकर शफीक (जिसने मेरे शोध से जुड़ी अधिकांश अंग्रेजी पुस्तकें मुझे पलक झपकते उपलब्ध करा दी), मुहीब (जिसने कभी भी पूरे लेखन के दौरान मुझे भूखा रहने नहीं दिया), मित्र रंजन (जो पूरे लघु शोध-प्रबंध के लिखने के दौरान दूसरे के कमरे में सोता रहा, ताकि मेरी एकाग्रता न टूटे), विनीत, अजीम, महेश्वर, शीतांशु और नीरज (जिनके सहयोग के बिना इसको अंतिम रूप देना संभव नहीं था) इन सबका मैं हृदय से आभारी हूँ।

अपने गुरु और शोध-निदेशक प्रो॰ मैनेजर पाण्डेय जिनके सान्निध्य से मैंने जाना कि एक अच्छे शोध-निदेशक की क्या अहमियत है.. के प्रति आभार व्यक्त करके भी गुरु ऋण से उऋण नहीं हुआ जा सकता। फिलहाल इतना ही।

राहुल सिंह

प्रथम अध्याय

आधुनिकता का अर्थ एवं उसके विचारधारात्मक आधार

1. **आधुनिकता का पाश्चात्य विचारधारात्मक आधार**

2. **हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का अर्थ एवं अवधारणा**
   (विशेष संदर्भ: आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी और रामविलास शर्मा की इतिहासदृष्टि)

क) **हिन्दी नवजागरण: अवधारणा और हिन्दी साहित्य**

आधुनिकता का अर्थ एवं उसके विचारधारात्मक आधार

1. आधुनिकता का पाश्चात्य विचारधारात्मक आधार

आधुनिकता एक यूरोपीय स्थिति और अवधारणा है।[1] ध्यान रहे आधुनिकता कोरी साहित्यिक अवधारणा नहीं है, बल्कि अन्य ज्ञानानुशासनों से होकर यह साहित्य में आई है। 'आधुनिकता' का आरंभिक प्रयोग 'थियोलॉजी' के संदर्भ में देखने को मिलता है। बाद में समय के साथ-साथ अन्य ज्ञानानुशासनों को प्रभावित करता हुआ और उनसे प्रभावित होता हुआ, इसका स्वरूप विकसित हुआ है। अन्य ज्ञानानुशासनों में आधुनिकता की पहचान और परख की कसौटियाँ एक समान नहीं है। इतिहास में आधुनिकता का लक्ष्य समय के रैखिक अवधारणा का विकास है तो स्थापत्य के क्षेत्र में नवीन वास्तुकला का निर्माण है। दर्शन में व्यक्तित्व की स्वीकृति और प्रतिष्ठा एवं संबंधों में आये बदलाव से इसकी सम्बद्धता दीखती है, तो समाजशास्त्र जीवन पद्धति में आये बदलावों का रेखांकन करते हुए व्यक्ति के बजाय संस्थाओं में विश्वास करने की प्रवृत्ति को आधुनिकता से जोड़ता है। विज्ञान और टेकनॉलोजी की भूमिका भी इसमें शामिल है। विभिन्न ज्ञानानुशासनों द्वारा निरूपित भिन्न-भिन्न लक्षणों के मध्य समानता का एक सूत्र यह है कि इन लक्षणों की स्पष्ट पहचान औद्योगिक पूंजीवाद के उदय के साथ होती है।

पश्चिम में आधुनिकता का एक विचारधारा और दृष्टिकोण के रूप में स्पष्ट इतिहास है। इसे कोई नकार नहीं सकता कि ऐतिहासिक कारणों से आधुनिकता ने समूचे भूमंडल को प्रभावित किया है।... आधुनिकता के निहितार्थ एक स्थान से दूसरे स्थान में बदलते रहे हैं, जो अलग-अलग हिस्सों में स्थानीय शक्तियों द्वारा की गयी व्याख्या पर निर्भर रहे हैं। कोई कह सकता है कि आधुनिकता अपने प्रतिस्कंदी (रीजिलिएंस) और लचीले स्वरूप के कारण गैर-पश्चिमी समाजों में भी जहाँ वह प्रत्यक्ष रूप से पश्चिमी राजनीतिक व्यवस्था से संचालित नहीं है , सौंदर्य और सांस्कृतिक विमर्श की एक अत्यंत उपयोगी अवधारणा बन चुकी है।[2] भारतीय संदर्भ

---

[1] सुधीश पचौरी-आलोचना से आगे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000 ई०, पृ० सं-13

[2] Modernity as a ideology and an attitude has a specific history in the west and one cannot deny its influence spreading across the entire globe, on account of curious historical reasons.... But its implications and meaning differed from place to place, depending upon the manner of its appropriation by local forces one can argue that modernity became an extremely useable concept in aesthetic and cultural discourses for its resilience and flexibility, even for the non-western societies which have not been directly governed by western political systems.

Sudha P. Pandya, Prafulla C. Kar-Interdisciplinary Perspectives on Modernity Pencraft International, Delhi 2001, Pg. No. 9 (Introduction)

में विचार करें तो पाते हैं कि आज की तारीख में आधुनिकता ने यहाँ भी सौंदर्य और सांस्कृतिक-सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक विमर्श की एक अत्यंत उपयोगी अवधारणा का रूप ग्रहण कर लिया है। मेरी जिज्ञासा यह है कि क्या हिन्दी साहित्य में आधुनिकता की कोई अपनी सैद्धांतिकी है? या फिर हम पाश्चात्य चिंतन से उपजी आयातित-आधुनिकता को ही धारण कर स्वयं को गौरवान्वित महसूस कर रहे हैं?

पश्चिमी साहित्य की आधुनिकता से हिन्दी साहित्य की आधुनिकता के साम्य और वैषम्य का उद्‌घाटन तभी संभव है, जब इन दोनों के संदर्भ में आधुनिकता की अवधारणा और उसके विचारधारात्मक आधार की एक रूपरेखा हमारे सामने हो। चूंकि आधुनिकता यूरोपीय स्थिति और अवधारणा है। अतः पहले यूरोपीय संदर्भ में ही आधुनिकता के अर्थ, अवधारणा एवं विचारधारात्मक आधार की चर्चा संगत जान पड़ती है।

'आधुनिकता', जिस 'माडर्निटी' शब्द की हिन्दी है, वह अंग्रेजी में ग्रीक 'मोडो' (क्रियाविशेषण) से आया है, जिसका अर्थ है हाल-फिलहाल, अभी का, आज, इस समय का, समकालीन।"[3] लेकिन आधुनिकता जिस आधुनिक शब्द से बना है उस आधुनिक शब्द की व्युत्पत्ति पाँचवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लैटिन शब्द 'मौडर्नस' (Modernus) से हुई है, जिसका प्रयोग औपचारिक रूप से ईसाई वर्तमान को गैर ईसाई रोमन अतीत से अलग करने हेतु किया गया था (केलिनेस्क्यू, हैबरमास)। उसके बाद इस शब्द का व्यवहार, प्राचीन की जगह वर्तमान को स्थापित करने हेतु किया गया, जो यूरोप में उस अवधि में उत्पन्न हो रहा था, जब नए युग की चेतना प्राचीन के साथ नए संबंध के माध्यम से नया आकार ग्रहण कर रही थी। (हैबरमास)।[4] शब्दकोश में भी 'मॉडर्न' (आधुनिक) की व्युत्पत्ति लैटिन के 'मोडर्नस' से ही बतलायी गयी है।[5] "आधुनिकता (माडर्निटी) का उपलब्ध कोशगत अर्थ है-आधुनिकता एक पद है, जो आधुनिक होने की शर्त को व्याख्यायित करता है। चूँकि आधुनिक का उपयोग एक बड़े कालखंड का वर्णन करने के लिए होता है, अतः आधुनिकता को संदर्भ के अर्थ में ही लिया जाना चाहिए।"[6]

---

3 सुधीश पचौरी-आलोचना से आगे राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000 ई॰, पृ॰ सं॰-18

4 बेरी स्मार्ट-आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता और वर्तमान, पृ॰ सं॰-155, पत्रिका-समकालीन सृजन, संपादक-शंभुनाथ, अंक-21, 2002 ई॰

5 New Compact Oxford Dictionary Thesaurus and Wordpower Guide Indian Edition, Oxford University Press, Nineteenth Impression, 2005, Modern□Origin Latin Modernus, Pg. No. 575

6 http//www.wikipedia.org/wiki/modernity
Modernity is a term used to describe the condition of being 'Modern', Since the modern is used to describe a wide range of periods. Modernity must be taken in context.

'आधुनिकता' की अवधारणा साहित्य-इतिहास में काल-विभाजन की समस्या से जुड़ी हुई है। काल विभाजन के कई प्रचलित आधारों में से एक है, कालपरक विभाजन का आधार (आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिककाल)। यूरोप में मध्ययुग को 'डार्क ऐजेज' भी कहा जाता है और कुछ विद्वान वहाँ आधुनिक युग की शुरूआत पंद्रहवीं शताब्दी से होने वाले पुनर्जागरण (रिनेसांस) से मानते हैं। अब सवाल यह उठता है कि पंद्रहवीं शताब्दी में ऐसा क्या होता है कि यूरोप अंधकार की जड़ता को तोड़ता है? "पंद्रहवीं शताब्दी अंग्रेजी, फ्रांसीसी, जर्मन आदि आधुनिक यूरोपीय जातियों के निर्माण का काल है। जातीय निर्माण का मतलब है, सामंती व्यवस्था के भीतर व्यापारिक पूँजीवादी का विकास। यहीं से लैटिन को पीछे ठेलकर अंग्रेजी, इतालवी, फ्रांसीसी, जर्मन आधुनिक यूरोपीय भाषाओं में साहित्य रचना शुरू हुई। आधुनिक समाज की मुख्य पहचान आधुनिक विज्ञान इसी काल की उपलब्धि है।"[7] जातीय गठन की इस अवधारणा का विकास और विस्तार हिन्दी साहित्य में रामविलास शर्मा ने किया है। बहरहाल, 15वीं-16वीं सदी से बुद्धिवादी (rationalist) दर्शन की व्यस्थित शुरूआत देकार्त (1596-1650) के साथ आरंभ होती है। वे देकार्त ही थे, जिन्होंने नये विज्ञान के कार्यसूची की नींव रखते हुए, लोकप्रिय सिद्धांत दिया 'मैं सोचता हूँ, इसीलिए मैं हूँ।'[8] देकार्त ने अपने दर्शन से सिद्ध किया कि मनुष्य की मुक्ति 'प्रकृति पर स्वामित्व' में निहित है।"[9]

बुद्धिवाद पर इतना बल देने का प्रधान कारण यह है कि मध्ययुग में धर्म के कारण जिस आस्था, विश्वास और श्रद्धा की प्रधानता थी, उसको स्थानापन्न किया तर्क, विचार और विवेक ने, जो बुद्धिवाद का परिणाम था। बुद्धिवाद आधुनिकता के प्रधान और अनिवार्य लक्षणों में से एक है, किन्तु उसका पर्याय नहीं है। ध्यान रखना चाहिए कि आधुनिकता केवल बुद्धिवाद की प्रक्रिया नहीं है बल्कि भौतिकवाद की भी प्रक्रिया है। यही कारण है कि आधुनिकता के लक्षणों को हम व्यापारिक पूंजीवाद के उदय के साथ तो देखते हैं, किन्तु उसकी स्पष्ट पहचान औद्योगिक पूंजीवाद के दौर में जाकर ही होती है।

मध्ययुगीन धार्मिक अंधविश्वासों की पहचान और परख अब तर्क की कसौटी पर की जाने लगी। तार्किक चिन्तन ने वैचारिकता को बढ़ावा दिया और फिर उन विचारों की पुष्टि के लिए विज्ञान आगे आया। जैसे देकार्त के समकालीन

---

7 समकालीन सृजन-शंभुनाथ (संपादक), अंक-21, 2002 ई०, पृ०स०-99

8 It was Rene Descartes (1596-1650), who scripted the agenda for a new science with his famous principle. "Cogito Ergo Sum" (I think, therefore I am). Sudha P. Panday, Prafulla C. Kar (Edited) - Interdisciplinary Perspective on Modernity, Pencraft International, 2001, Delhi, Pg. No. 51.

9 सुधीश चौधरी-आलोचना से आगे, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-2000 ई०, पृ०सं०-14

कोपरनिकस (1473-1543) ने यह बात कही कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है। इस विचार की पुष्टि गैलीलियो (1564-1642) ने दूरबीन का निर्माण करके कर दिया। इस तरह वस्तुजगत से प्रेरणा ग्रहण कर नये-नये विचारों को विज्ञान की सहायता से मूर्त रूप प्रदान किया जाने लगा, जिससे बुद्धिवाद और विज्ञान के मध्य अनुपूरक संबंध विकसित हुए। केपलर (1571-1630) और न्यूटन (1642-1727) इसी नयी शुरूआत के महानायक थे।

यूरोप में आधुनिकता के विकास को अलग-अलग चरणों में बाँटकर देखा गया है। 15वीं-16वीं शती के पुनर्जागरण को आधुनिकता का पहला चरण माना गया है। आधुनिकता के संबंध में पुनर्जागरण काल की मुख्य सीमा यह रही है कि "मशीनों और औद्योगिक उत्पादन से पुनर्जागरण काल की आधुनिकता का कोई संबंध नहीं था। सामाजिक, आर्थिक, भाषिक, वैचारिक परिवर्तन के बावजूद, पुराना ढाँचा, पुरानी रूढ़ियाँ अभी निःशेष नहीं हुई थीं।"[10] इन पुराने ढाँचों पुरानी रूढ़ियों पर चोट आधुनिकता के दूसरे चरण में अर्थात् ज्ञानोदय (एनलाइटेनमेंट) काल में देखने को मिलता है। फ्रांसीसी राज्य क्रांति और इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति इसी दूसरे चरण के अंतर्गत आते हैं। "अठारहवीं शताब्दी में इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति और फ्रांस की राज्य क्रांति ने पुराने ढाँचे को जोरदार धक्का दिया। यूरोप का रोमांटिक युग औद्योगिक पूंजीवाद का युग है। उत्पादन प्रक्रिया में मशीन के प्रयोग से उत्पादन की तकनीक और उत्पादन संबंधों में तब्दीली आई। मनुष्य के साथ मशीन भी उत्पादन-श्रम करने लगी। मनुष्य ने विज्ञान को बढ़ावा दिया, विज्ञान से टेकनोलॉजी विकसित हुई, टेकनोलॉजी से मशीन का निर्माण हुआ। मनुष्य को अपनी बौद्धिक क्षमता पर भरोसा बढ़ा। फ्रांसीसी क्रांति ने मनुष्यों को आपसी समानता में बाधक धारणाओं को लगभग समाप्त कर दिया। एक अच्छा नियम सबके लिए अच्छा हो फ्रांसीसी क्रांति का नारा था। फ्रांस की राजनीतिक सत्ता सामंत वर्ग के हाथ से निकलकर बुर्जुआ वर्ग के पास आ गई।"[11] यह आधुनिकता का दूसरा चरण था। पहले चरण में (पुनर्जागरणकाल) यूरोप ईसाइयत की छाँह में हजार साल की नींद से अंगड़ाई लेता हुआ जाग रहा था और दूसरे चरण (ज्ञानोदय काल) में विश्वविजेता बनकर औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित कर रहा था।"[12] पश्चिम या यूरोप के नाम से मूल रूप से यहाँ फ्रांस और ब्रिटेन की बात की जा रही है क्योंकि प्रथम विश्वयुद्ध

---

[10] समकालीन सृजन-शंभुनाथ (संपादक), अंक-21, वर्ष 2002 ई॰, पृ॰सं॰-99

[11] समकालीन सृजन-शंभुनाथ (संपादक) अंक-21, 2002 ई॰, पृ॰ सं॰-99-100

[12] अजय तिवारी- आधुनिकीकरण पर पुनर्विचार, तद्भव, अंक-11, अगस्त-2004 संपादक-अखिलेश, पृ॰सं॰-32

तक पश्चिमी राष्ट्रों में इनका ही वर्चस्व बना हुआ था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिकी वर्चस्ववाद का दौर आरंभ होता है।"[13]

बहरहाल, ***देकार्त (1596-1650)*** से जिस बुद्धिवादी (Rationalist) दर्शन की शुरूआत हुई थी, उसका विकास और विस्तार ब्रिटिश अनुभववादियों (Empiricists) ने किया। यह दूसरी धारा थी, "यह धारा प्राकृतिक विज्ञान से और विशेषत: उसके वस्तुनिष्ठ स्वरूप और प्रायोगिक प्रणाली से प्रभावित थी। **जॉन लॉक (1632-1704)** का ब्रिटिश अनुभववादियों में महत्वपूर्ण स्थान था। लॉक अपने आप को न्यूटन का अधीनस्थ विचार-श्रमिक (Philosophical under labourer) कहा करते थे।"[14]

लॉक का ज्ञान का अनुभववादी सिद्धांत, अन्तर्जात विचार जैसी किसी चीज को मान्यता देने के बजाय समस्त मूल ज्ञानप्राप्ति का आधार इंद्रियानुभव को बताता था। इसके विपरीत इसी दौर में फ्रांसीसी विचारकों ने अनुभव के स्थान पर बुद्धिवाद को प्रधानता दी, कहते हैं "फ्रांस के इस युग में (1715-1760) एक नये देवता, बुद्धि देवता की प्रतिष्ठा हुई।"[15] इस युग को बुद्धिवादी युग या बौद्धिक युग कहा गया। मोन्तेस्क्यू (1689-1755), वाल्तेयर (1694-1760), रूसो (1712-1782) इसी दौर की उपज थे। रूसो व्यक्ति की प्राकृतिक स्वतंत्रता का पक्षधर था, उसका मानना था कि सामाजिक अनुबंध द्वारा मनुष्य अपनी प्राकृतिक स्वतंत्रता खो देता है। (यह अलग बात है कि "रूसो जो आजादी का दीवाना था लेकिन फ्रांसीसी-क्रांति में सामाजिक-दमन का एक मॉडल बनाने के लिए उसका इस्तेमाल हुआ।[16])

ब्रिटिश अनुभववाद (Empiricism) और फ्रांसीसी बुद्धिवाद (Ratinoalism) का संयोग **कांट (1724-1804)** के यहाँ देखने को मिलता है। "कांट ने प्रबोधनकालीन चिन्तकों जैसे वाल्तेयर, रूसो और मोन्तेस्क्यू को प्रभावित किया था।"[17] कांट ने अनुभववाद के संदर्भ में कहा कि 'ज्ञानप्राप्ति का आधार केवल

---

13 Edward W. Said – Orientalism (Western Conceptions of the Orient) Penguin Books, 2001, Pg. No. 4

14 रवि-सिन्हा-आधुनिकता और आधुनिकताएँ, संधान-सुभाष गाताड़े (संपादक) अंक-3, अक्टूबर-दिसम्बर 2001, पृ०सं०-16

15 भूपेन्द्रनाथ सान्याल-फ्रैंच साहित्य का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, हिन्दी समिति प्रभाग, 1979 ई०, द्वितीय संस्करण, पृ०सं० 150

16 विजय कुमार-अंधेरे समय में विचार, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2006, पृ०सं०123

17 Kant Influenced the Enlightenment thinkers like Voltaire, Rousseau and Montesquieu.
Kalidas Misra – The Road to Auschwitz Foucault and Modernity.
Interdisciplinary Perspectives on Modernity – Sudha P. Pandya, Praffula C. Kar Pencraft International – Delhi, Pg. No. 52

अनुभव नहीं हो सकता। विश्व के बारे में हमारा ज्ञान केवल ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त बिखरे हुए संकेतों पर आधारित होता है, जिसे हम तर्कसंगत रूप में समन्वित करके सार्थक अनुभव का आकार देते हैं। इससे स्पष्ट है कि हम ज्ञान प्राप्त करने के लिए 'व्यावहारिक विवेक' का सहारा लेते हैं। मात्र ऐन्द्रिक अनुभव के आधार पर विश्व के यथार्थ रूप का ज्ञान प्राप्त करना कठिन है। (क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन से)

कांट ने 'क्रिटीक ऑफ प्योर रीजन' (1781 ई०) में आधुनिकता को तर्क का आधार प्रदान किया।[18] 1784 ई० में लिखे अपने प्रसिद्ध निबंध *'ज्ञानोदय क्या है?'* में कांट ने प्रबोधन (ज्ञानोदय) का मतलब बताया "मनुष्य का स्वयं प्राप्त अपरिपक्वता (अवयस्कता) से उबर जाना। अपरिपक्वता का अर्थ है बिना किसी दूसरे के निर्देश के स्वयं अपनी समझ के उपयोग में अक्षमता।"[19] मनुष्य इस अपरिपक्वता से उबर सकता है, अपने विवेक के इस्तेमाल से, स्वार्जित ज्ञान के उपयोग से। "इस तरह 'ज्ञानोदय' साहस का पर्याय है क्योंकि वह स्वार्जित ज्ञान से परिचालित होता है। ... कांट के 'ज्ञानोदय' में 'ज्ञान की अनुभव से सिद्धि' होती है। "कांट के हिसाब से हर चीज 'ज्ञान' का निर्माण है, यदि वह अपनी सिद्धि अपने तर्क से स्वयं करती है। ... कांट ने, देकार्त के चक्करदार अनुभववाद को भी प्रश्नांकित किया। उन्होंने कहा कि एक क्षणिक मानसिक अवस्था तब तक 'मानसिक' नहीं है जब तक कि व्यक्ति उसके होने के बारे में सचेत नहीं है। इस तरह अनुभव काफी नहीं (वह पशुओं को भी होता है), अनुभववाद का सचेत ज्ञान भी जरूरी है। इससे देकार्त के चक्करदार अनुभववाद का जादू टूटा।"[20]

कांट के चिन्तन में स्वयंसिद्ध तर्क ज्ञान का निर्माण करता है। प्रबोधन काल में तर्कबुद्धि विज्ञानबुद्धि (Scientific Reason) से संचालित होने लगी थी। **हीगेल** ने अपने निबंध *'आस्था और ज्ञान' (Belief and Knowledge)* में कांट को सुधारते हुए कहा है कि "ज्ञान और तर्क की विजययात्रा उस आस्था के विरूद्ध यात्रा है, जिसे उसने 'आस्था' का 'विश्वास' समझा। यह विजय यही सिद्ध करती है कि तर्क ने स्वयं को 'अतर्क' बना डाला।"[21] सवाल उठता है कि तर्क ने स्वयं को अतर्क कैसे बना डाला? हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि "आधुनिकता की संरचना में और विशेषकर प्रबोधन की परियोजना में आत्मप्रश्नेयता (Reflexivity) का गुण गहरे रचा बसा है। विज्ञान और तर्कबुद्धि दोनों की प्रकृति अपने आप को हमेशा

---

[18] सुधीश पचौरी-आलोचना से आगे, राजकमल प्रकाशन, 2000 ई०, पृ०सं०-21

[19] इम्मानुएल कांट- प्रबोधन क्या है?
संधान, अंक-3, अक्टूबर-दिसम्बर-2001 ई०, सुभाष गाताडे (संपादक), पृ०सं०-29

[20] सुधीश पचौरी-आलोचना से आगे, राजकमल प्रकाशन, 2000ई० पृ०सं०-21

[21] सुधीश पचौरी-आलोचना से आगे, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2000ई० पृ०-22

कटघरे में खड़ा रखने की है। विज्ञान अपने आप को गलत सिद्ध करने के प्रयास में आगे बढ़ता है और अधिक व्यापक और अधिक गहरे सिद्धांतों तक पहुँचता है। तर्कबुद्धि भी अपने आप से सवाल पूछती रहती है और इस प्रक्रिया में अपना परिष्कार करती जाती है।"[22] तो तर्क के इस निरंतर परिष्कार की प्रक्रिया में तर्क का अतर्क में बदलते चले जाना स्वाभाविक है।

हीगेल (1770-1831) ने इतिहास के दर्शन, विशेषत: चिन्तन के इतिहास को विकसित किया। इस क्रम में उन्होंने विचार को प्रमुखता देते हुए तीन चरणों की ओर संकेत किया। प्रथम चरण, जो विचार की प्रारंभिक प्रस्थापना है, को वाद (थीसिस) कहा। प्रारंभिक प्रस्थापना की कमियों को दूर करने के लिए प्रति-प्रस्थापना का दूसरा चरण आया, जिसे 'प्रतिवाद' (एन्टीथिसिस) की संज्ञा दी और तीसरे चरण में आंरभिक दो चरणों के तर्क सम्मत तत्वों को मिला दिया गया, इसे 'संवाद' (सिनथिसिस) कहा गया। चिन्तन के इतिहास की इस प्रक्रिया को हीगेल ने सामाजिक परिवर्तन या विकास की प्रक्रिया से जोड़ दिया। हीगेल के चिन्तन में दो अवधारणायें प्रमुख हैं - द्वन्द्वात्मकता और आदर्शवाद। द्वन्द्वात्मकता का परिचय हो गया। रही बात आदर्शवाद की, तो "हीगेल विश्वास करते हैं एक निरपेक्ष विचार (Absolute Idea) एक विश्व चेतना (World Spirit) में, जो निर्विकल्प रूप से प्रकृति और मानव को उठाये, इसीलिए वे प्रकृति को समझने के लिए दिखने वाली विभिन्नता (Visible Diversity) में निहित आध्यात्मिक नियमों को समझने पर बल देते हैं, उन नियमों को जो प्रकृति को व्यवस्था और संदर्भ दें और विश्व का एकीकरण एक इकाई में कर दें।"[23]

"हीगेल के शिष्य **लुडविग फायरबाख (1804-1872)** ने इस बात को सामने रखा कि स्वतंत्रता केवल तभी आ सकती है जब ऐतिहासिक चेतना के केन्द्र में मनुष्य स्वयं को ईश्वर के स्थान पर रखे, वे ऐसा कहकर ऐतिहासिक विकास के हीगेलियन आख्यान का ही समर्थन कर रहे थे।"[24] अंतर इतना रहा कि फायरबाख ने हीगेल के आदर्शवादी दर्शन के स्थान पर भौतिकवादी दर्शन को प्राथमिकता देते हुए

---

[22] रवि सिन्हा-आधुनिकता और आधुनिकताएँ, संधान-सुभाष गाताड़े (संपादक) अंक-3, अक्टूबर-दिसम्बर 2001, पृ॰ सं॰-18

[23] "Hegel believed in an absolute idea, a world spirit which ultimately gives rise to nature and man and that is why, to understand nature he emphasized the spiritual laws behind the visible diversity, laws which give order and coherence to nature and unite the world into a single whole".
Kalidas Mishra – The Road to Auschwitz: Foucault and Modernity.
Sudha P. Panday, Prafulla C. Kar (Edited) – Interdisciplinary Perspective on Modernity, Pencraft International, Delhi, Pg. No. 53.

[24] Hegel's disciple Ludwig Feuerbach (1804-1872) pointed out that freedom would come only when man rather than God would place himself at the centre of historical development. Do – Pg. No. 53

विचारों के स्थान पर मानव जीवन की भौतिक वास्तविकता पर बल दिया और **कार्ल मार्क्स (1818-1883)** ने हीगेल के मनोजगत संबंधी नियमों के स्थान पर भौतिक यथार्थ (मैटर) की बात की। "कार्ल मार्क्स ने भी मानव विकास की कथा में धार्मिक आयाम के स्थान पर सामाजिक - आर्थिक कारकों के कार्य-कारण संबंध को रखा जो वैज्ञानिक विधान पर आधारित थे।"[25] कार्ल मार्क्स ने हीगेल से 'द्वन्द्वामकता' और फायरबाख से 'भौतिकवाद' की अवधारणा ग्रहण कर 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' के सिद्धांत की प्रस्तावना की।

कार्ल मार्क्स ने समाज की आर्थिक संरचना और सामाजिक संस्थाओं (धर्म, कानून, परिवार, कला) के मध्य संबंधों की धारणा पर विचार करते हुए व्यक्ति को ही उसके जीवन का भाग्यनिर्माता बतलाया। मार्क्स के चिंतन ने जहाँ मनुष्य की नियति संबंधी धारणा पर प्रश्नचिन्ह लगाने का कार्य किया था, वहीं **चार्ल्स डारविन** के विकासवाद के सिद्धांत (Theory of Evolution – 1859) ने ईश्वर से उसका देवत्व छीन लिया और आगे चलकर **नीत्शे (1844-1900)** ने तो ईश्वर के मृत्यु की घोषणा ही कर दी। डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत को समाज के विकासवादी सिद्धांत से जोड़कर देखने का कार्य हर्बर्ट **स्पेन्सर (1820-1903)** ने किया और **फ्रायड (1856-1939)** ने 'काम भावना' (लिविडो) को मानव की मूल वृत्ति बताकर हलचल मचा दी।

यहाँ इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि "आधुकिता जिस समाज को बनाती है, उसमें वह तब तक वैधता नहीं पा सकती जब तक कि वह अपने औचित्य और अद्वितीयता का दर्शन न बना ले। यूरोप में यह दर्शन कांट से शुरू होता है और हीगेल पर खत्म होता है। मार्क्स इस आधुनिकता के विखंडन के कुछ बिंदु-भर देखते हैं।"[26] इसका तात्पर्य यह नहीं लगाना चाहिए कि आधुनिकता को लेकर बहसें मार्क्स तक आकर समाप्त हो जाती है, बहसें आज तक जारी है लेकिन उनका संदर्भ परिप्रेक्ष्य और ऐतिहासिक परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं।

बेकन, देकार्त, हाब्स, लॉक, मोन्तेस्क्यू, वाल्तेयर, रूसो, ह्यूम, कांट, हीगेल, फायरबाख, मार्क्स, डार्विन, स्पेन्सर और फ्रायड आदि के चिंतन से यूरोप में जो आधुनिकता की सैद्धांतिकी निर्मित होती है, उसकी सीमा और संभावनाओं की पड़ताल करने के क्रम में, विश्लेषण और मूल्यांकन के क्रम में आधुनिकता एक विमर्श के रूप में विकसित होती है। इस आधुनिकता संबंधी विमर्श से पूर्ववर्ती

---

25 Karl Marx (1818-1883) also replaced the religious dimension in the story of human development with economic and social factors dependent on the scientific God of Causality. Do Pg. No. 53

26 सुधीश पचौरी-आलोचना से आगे, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2000ई॰, पृ॰सं॰ 16

दार्शनिकों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक विचारों को संशोधित परिवर्धित करने का दौर आरंभ होता है परिणामत: कुछ महत्वपूर्ण अवधारणाएँ और विचारधारायें भी उभरकर सामने आती है। थोड़ी चर्चा इनकी भी कर लेना आवश्यक है, जिससे पूर्ववर्ती और परवर्ती आधुनिकता के अंतर को समझा जा सके।

बुर्जुआ वर्ग द्वारा लाई गई आधुनिकता और ज्ञानोदय पर सबसे पहली टीका **बौदलेयर** ने की और उसे प्रश्नांकित किया। **मैक्स वेबर (1864-1920)** ने तो 'आधुनिक ब्रह्मांड' को एक 'लौह पिंजरा' तक कहा, जहाँ मनष्य अपने किये की कैद में ही जीने लगता है।"[27] ज्ञानोदय के विरासत के तौर पर मैक्स वेबर ने *'उद्देश्यपरक साधक तार्किकता (Zweckrationalitat)* की अवधारणा को प्रस्तुत किया और इसकी सहायता से प्रशासनतंत्र या नौकरशाही का विश्लेषण किया। अपने चिंतन में "मैक्स वेबर ने जहाँ तक हो सका, विज्ञान की उन्नति, सार्वभौमिक स्वच्छन्द चेतना और तार्किकता के मध्य मजबूत संबंधों की अनिवार्यता को अस्वीकार किया और ज्ञानोदय के विरासत के रूप में *'उद्देश्यपरक साधक तार्किकता' (Zweckrationalitat)* की विजय को पाया। एक 'उद्देश्यपरक साधक तार्किकता' जो समूचे सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के 'स्पैक्ट्रम', कानून, प्रशासनिक नौकरशाही और कला तक को चारों ओर से घेरकर प्रभावित और संक्रमित कर सकती है। सार्वभौमिक मुक्ति के बोध को मजबूती प्रदान करने के स्थान पर 'उद्देश्यपरक साधक तार्किकता' ने केवल एक नौकरशाही प्रशासनतंत्र के निर्माण में मदद की, जिससे बचने की कोई गुंजाईश नहीं थी।"[28] वेबर का आशय यह था कि औद्योगिक पूंजीवाद में जैसे-जैसे लागत, लाभ, कुशलता की सामाजिक महत्ता में बढ़ोतरी होती है, तार्किकीकरण एक शक्तिशाली सिद्धांत के रूप में विकसित होता जाता है। परिणामस्वरूप उस 'लौह पिंजरे' का निर्माण होता है, जिससे पलायन संभव नहीं है। दूसरे शब्दों में कहें तो मानवीय आत्मा पर इसके दमघोंटू प्रभाव से बचना अत्यंत कठिन होता है। **रिचर्ड बर्न्सटाइन** ने वेबर पर टिप्पणी करते हुए ठीक ही

---

[27] सुधीश पचौरी-आलोचना से आगे, राजकमल प्रकाश, दिल्ली, 2000 ई०, पृ० सं० 15

[28] Max Waber (1864-1920), however, rejected the strong necessary linkage between the growth of science, rationality and universal human freedom and found in the legacy of the Enlightenment only the triumph of "Zweckrationalitat", a purposive instrumental ratinoality which can affect and infect the entire spectrum of social and cultural life, encompassing economic structures, law, bureaucratic administration and even the arts. "Zweckrationalitat", instead of leading to a concrete realization of universal freedom, helped only in the creation of an "iron cage" of bureaucratic rationality from which there was no escape.
Kalidas Mishra – The Road to Auschwitz: Foucault and Modernity.
Indira P. Pandya, Prafulla C. Kar (Edited) – Interdisciplinary Perspectives on Modernity. Pencraft International, Delhi. Pg. No. 57

कहा था कि "हमारे ऊपर जो उत्साहहीन और संयमित चेतावनी मंडरा रही है वह आधुनिकता का स्मृतिलेख हो सकती है।"[29]

ज्ञानोदय काल के यूरोप और दो विश्वयुद्धों के मध्य यूरोप की ऐतिहासिक परिस्थितियों में काफी बदलाव आ चुका था। परिणामत: आधुनिकता संबंधी विमर्श भी नयी दिशाओं की ओर मुड़ गया था। ज्ञानोदय काल में आधुनिकता के विकास की जिन संभावनाओं की ओर संकेत किया गया था, वास्तविकता कुछ और ही हालत बयां कर रही थी। "18वीं सदी के ज्ञानोदय-युग ने मनुष्य को एक उम्मीद दी थी कि तर्कवाद, मशीन, केन्द्रीकृत राज्य-व्यवस्था और वैज्ञानिक चिंतन मनुष्य की मुक्ति को संभव बनायेंगे। 20वीं सदी तक आते-आते यूरोप के विकसित औद्योगिक समाजों में इसी तर्कवाद, मशीन, राज्यसत्ता की विकराल ताकत और वैज्ञानिक विकास की कोख से तानाशाही युद्ध, नस्ली घृणा, दमन, नृशंसता और सामाजिक विभेदों का जन्म हो रहा था। मनुष्य की एक छद्म चेतना को गढ़ने के नए-नए तरीके विकसित हो रहे थे। ... प्रथम विश्वयुद्ध के बाद का यह वह समय था जब एक 'निहिलिज्म' ने यूरोपीय बौद्धिकों को घेर लिया था। मार्क्सवादी बुद्धिजीवियों के भी अपने गहरे असमंजस थे। न उन्हें स्टालिन की विशाल नौकरशाही वाला सोवियत मार्क्सवाद आश्वस्त करता था और न विकसित औद्योगिक समाजों में पूंजीवाद के संकट के भीतर से सर्वहारा की कोई क्रांतिकारी चेतना फूटती नजर आ रही थी (मार्क्सवादियों की यह परंपरागत अवधारणा है कि बुर्जुआ समाज में सर्वहारा स्वत: क्रांतिकारी होगा)। मार्क्सवादी सिद्धांत हमेशा से कहते आये थे कि पूंजीवादी एक आंतरिक संकट से घिर जायेगा और उसकी कोख से साम्यवाद का जन्म होगा, पर बीसवीं सदी के यूरोप में पूंजीवाद की कोख से तो फासीवाद का जन्म हो रहा था। यूरोप के इन मार्क्सवादियों ने देखा, विकसित औद्योगिक समाजों में सर्वहारा में क्रांति की मानसिकता विकसित ही नहीं हो पाती। वहाँ संस्कृति, समाज व्यक्ति, जीवन-मूल्य और विवेक की संभावनाएँ धूमिल हो जाती हैं। यह यूरोपीय मार्क्सवादियों के लिए संशय, मोहभंग, आत्मनिरीक्षण और नई दिशाओं के संधान का समय था।

मार्क्सवादी बौद्धिकों का ऐसा एक समूह 1920 के आसपास फ्रैंकफर्ट में एकत्रित हुआ और उसने '*इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज*' की स्थापना की, जिसे '*फ्रैंकफर्ट स्कूल*' के नाम से भी जाना जाता है। ...होर्खाइमर, एडोर्नो, मार्क्यूज और वाल्टर बेंजामिन जैसे चिंतकों ने फासीवाद के उभार के जिम्मेदार कारणों का अध्ययन

---

29 Richard Bernstein is apt in commenting about Weber's "Chilling and robering warning which hovers over us and may well be the epitaph of modernity".
Kalidas Misra – The Road to Auschwitz: Foucault and Modernity.
Sudha P. Pandya, Prafull C. Kar (Edited) – Interdiscipilinary Perspectives on Modernity. Pg. No. 56.

किया। अध्ययन के इन तरीकों को -'*क्रिटीकल थ्योरी*' (*Critical Theory*) के नाम से जाना जाता है। ...'*फ्रैंकफर्ट स्कूल*' केवल परंपरागत मार्क्सवादी अवधारणाओं में मौजूद अपर्याप्तताओं को ही नहीं देख रहा था, वह फासीवाद का विश्लेषण करते हुए 18वीं सदी के ज्ञानोदय-युग से चले आ रहे उन बहुत सारे विश्वासों पर भी उंगली उठा रहा था जिन्होंने तर्क, बुद्धि, विज्ञान, तकनीक, स्वतंतत्रता और विकासवाद की अवधारणाओं के तहत आधुनिक सर्वसत्तावादी निरंकुश समाजों को जन्म दिया था। '*फ्रैंकफर्ट स्कूल*' का यह 'रेडिकल चिंतन' था। इन विचारकों ने फासीवाद के बीज ज्ञानोदय-युग की विरासत में देखे, जहाँ केवल प्राकृतिक विज्ञानों के विकास और प्रत्यक्षवाद को ही मनुष्य की मुक्ति का साधन मान लिया गया था। ज्ञानोदय-युग इस संसार के रहस्यों को अनावृत करने की आकांक्षाओं और संभावनाओं से जन्मा था। विज्ञान प्रकृति पर काबू पाना चाहता था। अपने दो सौ वर्षों के इस विजय-अभियान में वह निरंतर एकाधिकारवाद की ओर बढ़ता गया और बीसवीं सदी में उसने सर्वसत्तावादी निरंकुश समाजों को जन्म दिया। ज्ञानोदय युग का यह अंतर्विरोध '*फ्रैंकफर्ट स्कूल*' के राजनीतिक दर्शन का प्रस्थान-बिंदु था।[30]

मार्टिन हाइडेगर (1889-1913) के आरंभिक दौर के लेखन में फासीवादी रूझान देखने को मिलते हैं। "हाइडेगर के, 'कैरियर' की शुरूआती दौर में नाजीवाद को लेकर उसके खुद के भ्रम थे, लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के तत्काल प्रभाव से उसने ज्ञानोदयकालीन तर्क और उसके विकास की आलोचना की।"[31] आधुनिकता की सबसे प्रखर आलोचना एडोर्नो और होर्खाइमर के (डायलेक्टिक ऑफ इनलाइटेनमेंट) में देखने को मिलती है। **"थियोडोर एडोर्नो (1903-1968)** और **मैक्स होर्खाइमर (1895-1973)** के '*डायलेक्टिक ऑफ इनलाइटेनमेंट*' की पहली पंक्ति ही इस विवादास्पद बहस के साथ खुलती है "प्रगतिशील विचार के अपने व्यापक अर्थों में, ज्ञानोदय का लक्ष्य हमेशा से मानव को भयमुक्त कर उसका प्रभुत्व (श्रेष्ठता) स्थापित करना रहा है, तथापि ज्ञानोदय संपन्न पृथ्वी नाश फैलाकर विजयोत्सव मना रही है। उनकी पुस्तक विकास और ज्ञानोदय के बारे में उदारवाद और मार्क्सवाद के स्थापित मान्यताओं पर सवाल उठाती है और पाती है कि पूंजीवादी समाज में वस्तुतः साधक तार्किकता की अग्रगामिता को नहीं रोक पाने में और मानव स्वतंत्रता के

---

[30] विजय कुमार-अंधेरे समय में विचार, संवाद प्रकाशन, मेरठ, जनवरी 2006 ई०, पृ० सं० (29-31)

[31] Martin Heidegger, who himself had his illusions about Nazism early in his career, critiqed the ideas of the enlightened reason and progress in the immediate aftermath of the second world war.
Kalidas Mishra – The Road to Auschwitz: Foucault and Modernity.
Sudha P. Pandya, Prafulla C. Kar – Interdisciplinary Perspectives on Modernity, Pencraft International, Delhi, 2001, Do, Pg. No. 56

गतिशील ह्रास का एक दूसरे से संबंध है।"[32] मूल बात यह कि '*डायलेक्टिक ऑफ एनलाइटेनमेंट*' में एडोर्नो कहते हैं कि आधुनिकता के साथ आई तथाकथित तार्किकता ने मनुष्यों को अभी उनके मिथकीय अतीत से मुक्त नहीं किया है। प्राकृतिक दुनिया पर मनुष्य का वर्चस्व धीरे-धीरे उसे सामाजिक दुनिया के नियंत्रण की और भी ले गया है। 'प्रगति' की अवधारणा एक प्रकार की पाशविकता में बदल गई है। विज्ञान और टेक्नोलॉजी अमानवीयकरण की प्रक्रिया के औजार बन गए हैं। फासीवाद के उदय की परिस्थितियों में एडोर्नो ने संस्कृति के इसी आततायी रूप को टेक्नालॉजी और पूंजी के विकास से जोड़कर देखा था।[33]

18वीं सदी में आधुनिकता का जो स्वरूप था, 20वीं सदी के दूसरे दशक तक आते-आते उसके स्वरूप और संरचना में व्यापक बदलाव आ गये थे। 1920 ई॰ के आस-पास यूरोप में आधुनिकता का जो रूप विकसित हो रहा था, उसका संदर्भ ज्ञानोदयकालीन नहीं रह गया था। ऐतिहासिक परिस्थितियाँ बदल चुकी थी, पूंजीवाद के गर्भ से पनपा फासीवाद अपने चरम पर था, जिसकी परिणति यहूदियों को यातनाशिविरों में भेजने में हुई। इसी दौर में कला-साहित्य के क्षेत्र में आधुनिकतावादी कला आंदोलनों और अवां-गार्द प्रवृतियों का जन्म हुआ जिनकी प्रतिरोधात्मक क्षमता को '*फ्रैंकफर्ट स्कूल*' की '*क्रिटिकल थ्योरी*' ने रेखांकित किया। 20वीं सदी में विकसित होने वाला इस 'आधुनिकतावादी आधुनिकता' के ऐतिहासिक संदर्भ विश्व युद्धों वाला परिवेश, कला-साहित्य के आधुनिकतावादी आंदोलन, फासीवाद, क्रान्सन्ट्रेशन कैम्प और होलोकॉस्ट साहित्य रहा। संकट बोध, अस्तित्वबोध, विडंबना, संत्रास, अजनबीपन, अलगाव या एलियनेशन आत्म बोध, आत्म प्रश्नेयता आदि इस 'आधुनिकतावादी आधुनिकता' की विशेषताएँ रहीं। ऐतिहासिक संदर्भों का ध्यान न रखने के कारण भ्रमवश ये प्रवृतियाँ हिन्दी साहित्य में भी आधुनिकता के नाम पर प्रचलित हो गई हैं। इसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

ज्ञानोदय कालीन आधुनिकता का विकास और परिणति हिटलर के जिन यातनाशिविरों में हुई, उससे इस आधुनिकता को और आधुनिकतावादी परियोजना (Modernist Project) को प्रश्नांकित किया गया। "**Condorecet** ने अपनी

---

[32] Theodor Adorno (1903-1968) and Max Horkheimer, in 'Dialectic of Enlightenment', opened the contentious debate right in the first line: "In the most general sense of progressive thought, the Enlightenment has always aimed at liberating men from fear and establishing their sovereignity. Yet the fully enlightened earth radiates disaster triumphant." Their book questioned the long-standing liberal and Marxian assumptions about progress and Enlightenment and saw a linkage between the virtually unstoppable advance of instrumental rationality in capitalistic societies and progressive deterioration of human freedom. Do Pg. No. 55.

[33] विजय कुमार - अंधेरे समय में विचार, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2006, पृ॰सं॰ 56

पुस्तक *'स्केच फॉर ए हिस्टोरिकल पिक्चर ऑफ द प्रोग्रेस ऑफ द ह्यूमन माइन्ड'* (1795 ई०) में आधुनिकता को तर्क के विजय के रूप में परिभाषित किया था, 'सभ्यता के स्वाभाविक विकास' के रूप में वह आकार ग्रहण कर रही थी।"[34] लेकिन नाजीवाद के उदय ने जिस नस्लवादी हत्याओं को जन्म दिया उसके बाद ज्ञानोदय कालीन आधुनिकता का विकसित रूप प्रश्नों और चुनौतियों के घेरे मे आ गया।" प्रख्यात इतिहासकार और आलोचक **ह्यूग थॉमस (Huge Thomas)** ने लिखा कि *'आश्वित्ज'* के लेखक (सर्जक) विश्व के उस देश के नागरिक थे, जहाँ 18वीं सदी में सर्वाधिक साक्षरता दर थी।"[35] **"झिगमून्ट बोमन (Zygmunt Bauman)** ने आधुनिकतावादी परियोजना (Modernist Project) को चुनौती देते हुए कहा कि *होलोकास्ट (Holocaust)* सभ्यता की असफलता नहीं है बल्कि ... यह तो सभ्य होने की प्रकृति और उसकी स्थिर क्षमता का स्वाभाविक परिणाम है।"[36]

जर्मनी में फासीवाद के उदय ने ज्ञानोदय के अर्थ, प्रकृति, संरचना और स्वरूपगत अन्य विशेषताओं की पुनर्व्याख्या और पुनरावलोकन का दौर ला दिया। यह अकारण नहीं कि कांट ने *'ज्ञानोदय क्या है?' (What is Enlightenment?)* नामक लेख 1784 ई० में लिखा था। उसके 200 वर्षो पश्चात् 1984 ई० में **मिशेल फूको (1926-1984)** ठीक उसी शीर्षक से निबंध लिख रहे थे! मिशेल फूको (Micheal Faucault) ने *'ज्ञानोदय क्या है?'* नामक उस निबंध में आधुनिकता को 'अनुभव और चिंतन का माध्यम', तथा 'समकालीन यथार्थ से जुड़ने का माध्यम' कहा।[37] अपने इसी निबंध में फूको कह रहे थे "आधुनिक युग को 'प्राक् आधुनिक' या 'उत्तर आधुनिक' से अलगाने से ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि पता लगाया जाए कि आधुनिकता अपने जन्म के समय से ही अपने से इतर प्रवृत्तियों के साथ किस तरह का व्यवहार करती रही है? इसके पीछे उसके मंतव्य क्या रहे हैं? उसकी कार्यप्रणाली क्या रही है? मिशेल फूको इस तरह जागरण-काल और ज्ञानोदय-युग का एक निर्मम 'क्रिटिक' तैयार करते हैं। वे आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के विकास के साथ

---

34 Condorcet in his book, Sketch for a Historical Picture of the Progress of the Human Mind (1795), defined modernity in terms of the triumph of reason that was formed by "the natural progress of civilization"
Kalidas Mishra – The Road to Auschwitz: Foucault and Modernity Sudha P. Pandya, Prafulla C. Kar – Interdisciplinary perspectives on Modernity, Pencraft International, Delhi – 2001, Pg No. 48

35 The noted historian and critic, Huge Thomas Writes: The people with the highest rate of literacy in the world in the eighteenth century were the authors of Auschwitz. do: Pg. No. 57

36 Zygmunt Bauman has also challenged the modernist project by suggesting that "the holocaust was not a failure of civilization: rather it is a natural outcome of the civilizing tendency and its constant potential, Do, Pg. No. 59.

37 Michel Foucault echoed a similar idea in his essay, "What is Enlightenment?" where he called modernity a "way of thinking and feeling", a "mode of relating to contemporary reality". Do, Pg. No. 49

अस्तित्व में आए समग्रता, मानकीकरण और सत्य के अधिकारिक रूपों के तमाम दावों पर सवाल उठाते हैं।"[38]

"फूको अपने इन तमाम अध्ययनों में इस एक केंद्रीय विचार को रखते हैं कि ज्ञानोदय-युग की मूल इच्छा यह थी कि ऐसी पद्धतियाँ विकसित की जाएं, जिनसे हमारे समाज तर्क आधारित तरीकों और किसी नियमित व्यवस्था के अंतर्गत स्वाचालित ढंग से नियंत्रित होते रहें। वे कहते हैं कि 19वीं सदी में जब विभिन्न किस्म के आधुनिक मानव-विज्ञानों का विकास हो रहा था तो उनकी पदावली जो इतनी 'वस्तुपरक' और 'निर्दोष' दिखाई पड़ती हैं, दरअसल शक्ति संरचना के विकास को दर्शाती है।"[39]

आधुनिकता की 'व्यक्त अपूर्णता' के स्थान पर 'अव्यक्त पूर्णता' पर बल देते हुए **जार्गुन हैबरमास (Jurgen Habermas) (1929)** ने आधुनिकता के प्रति आशावादी दृष्टि रखी है। आधुनिकता की सीमाओं से परिचित होते हुए भी इसकी संभावना पर उनकी आस्था बनी हुई है। आज जिस *लोकवृत (Public Sphere)* की चर्चा साहित्यिक हलकों में रही है, उसका विश्लेषण करते हुए हैबरमास ने कहा है कि "सार्वजनिक जीवन के दायरे में 18वीं सदी के शुरूआती वर्षों में आकार लेना आरंभ किया था। इसका उद्देश्य था कि यह व्यक्ति के पारिवारिक और सार्वजनिक जीवन के सरोकारों के बीच एक पटरी बिठाए। इसका काम मनुष्य के निजी हितों तथा व्यापक समाज के हितों के बीच एक संवाद बनाते हुए किसी आम सहमति तक पहुँचना था। बुर्जुआ सामाजिक दायरे के कारण ही यह संभव हुआ कि एक तरफ तो राज्य सत्ता का विरोध करने वाली सार्वजनिक धारणाएँ आकार ले सकीं और दूसरी ओर वे ताकतें भी उभरीं, जो बुर्जुआ समाज को अपने हिसाब से गढ़ना और चलाना चाहती थी। इस सार्वजनिक दायरे की वजह से ही जनता के सामान्य हितों के तमाम मुद्दों पर बहसें संभव हो सकी थी। इसी सार्वजनिक दायरे ने वाणी की स्वतंत्रता, सार्वजनिक सभाओं के आयोजन, प्रेस की आजादी, राजनीतिक प्रक्रियाओं और बहसों की खुली हिस्सेदारी को संभव बनाया था।"[40]

फूको और हैबरमास के चिंतन में यह साम्य देखने को मिलता है कि "फूको हैबरमास की तरह यह स्वीकार करते हैं कि हमारी आधुनिकता की शुरूआत कांट के उस प्रयास से होती है, जब वे तर्क बुद्धि को निर्णायक करार देते हैं यानि कि

---

[38] विजय कुमार-अंधेरे समय में विचार, संवाह प्रकाशन, मेरठ, 2006 ई॰, पृ॰सं॰-120-121

[39] वही, पृ॰ सं॰ 125

[40] विजय कुमार - अंधेरे समय में विचार, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2006 ई॰, पृ॰सं॰-65

तर्क की सीमाओं की स्थापना और उसके वैध इस्तेमाल से।"[41] लेकिन फूको और हैबरमास के चिंतन में विषमता की रेखायें ज्यादा गहरी हैं। फूको इस आधुकिता की परिणति देखकर क्षुब्ध हैं। फूको के लिए 'Modernity Project' 'आधुनिकता-परियोजना' 'आश्वित्ज' (हिटलर का यातना गृह) की सृष्टि करती है और ज्ञान-शक्ति के नये विमर्शों को जन्म देती है, गढ़ती है; तो वहीं दूसरी और हैबरमास के लिए *'आधुनिकता एक अधूरी परियोजना है' (Modernity is an incomplete project)* क्योंकि इसकी संभावनाएँ अभी शेष नहीं हुई हैं।

इसके स्पष्टीकरण के लिए दो रूपकों का उदाहरण हमारे सामने उपलब्ध है। आधुनिकता को परिभाषित करते हुए **एंथनी गिडिन्स (Anthony Giddens, 1938)** ने अपनी पुस्तक *'दि कोन्सीक्वेन्सेज ऑफ मार्डनिटी, 1990' (The Consequences of Modernity, 1990)* मे लिखा है कि 'आधुनिकता एक तरह का *जगर्नाट (Juggernaut)* है। शब्दकोश में जगर्नाट के दो अर्थ मिलते हैं; एक बड़ी भारी गाड़ी, और दूसरा रथ पर सवार हिन्दू देवता कृष्ण (जगन्नाथ) का[42]। यह दिलचस्प है कि रथ की सवारी का अपना आनंद है लेकिन उसको नियंत्रण में रखना और उसकी मंजिलें तय करना सहज नहीं है। इसी तरह आधुनिकता पर नियंत्रण न होने से उसकी मंजिलें तय करना भी अपने वश में नहीं है इसलिए आधुनिकता की परियोजना अभी अधूरी है। यदि 'फूकोल्डियन' रूपक का उपयोग करें तो कह सकते हैं कि "आधुनिकता एक दृष्टिकोण के रूप में, संभवत: अनंत काल तक अपनी संभावनाओं का विकास करते हुए और तथाकथित प्रतिपक्षियों को अपने अनुकूल बनाते हुए अपनी उपस्थिति बनाये रखेगी। कम से कम हैबरमास ने 'आधुनिकता को अधूरी परियोजना' कहते हुए ऐसा ही सोचा होगा।"[43] यह अनुमान है लेकिन स्वयं हैबरमास ने क्या सोचा था? इस धारणा के निहितार्थ तक पहुँचने में हैबरमास की इस मान्यता से थोड़ी सहूलियत होगी। हैबरमास का मानना है कि "आधुनिकता पूर्व की अवधारणाओं की वकालत करने के बजाय आधुनिक विज्ञान को नए सिरे से आत्म-बोधक बनाना होगा। उसे एक ऐसा माध्यम बनाना होगा, जिसके द्वारा मनुष्य

---

41 ह्यूबेयर एल॰ ड्रेफ्यू और पॉल रॉबिनो- 'परिपक्वता क्या है? प्रबोधन क्या है? के बारे में हैबरमास और फूको संधान अंक-3, अक्टूबर-दिसम्बर, 2001 ई॰, सुभाष गाताडे (संपादक), पृ॰ सं॰-55

42 Juggernaut/ Jug-ger-naut/ .N. Brit. A large heavy vechicle □ origin Sanskrit 'Lord of the World', referring to an image of the Hindu God Krishna carried on a heavy chariot, Pg. No. 489.
New Compact Oxford Dictionary Thesaurus and Word Power Guide
Indian Edition, Oxford University Press, Nineteenth Impression, 2005

43 Foucauldian metaphor, modernity as an altitude will perhaps continue to be present for all time by expending its scope and accommodating within its fold its so called adversaries. At least this is what Habermas thought when he described modernity as an incomplete project,
Sudha P. Pandya, Prafulla C. Kar – Interdisciplinary. Perspectives on Modernity, Pencraft International, Delhi, 2001, Pg. No. 11.

समुदायों की आवश्यकताों और हितों को स्पष्ट किया जा सके। उन्हें राजनीतिक रूप से प्राप्त किये जाने वाले लक्ष्यों के साथ जोड़ा जाए।[44] जब तक ऐसा नहीं होता है। हम यही मानें की आधुनिकता की परियोजना अधूरी है।

इतनी चर्चा के बाद हम पाते हैं कि आधुनिकता एक यूरोपीय अवधारणा और स्थिति है, जिसका यूरोपीय संदर्भो में एक निश्चित इतिहास और विचारधारात्मक आधार है। वहाँ साहित्य में 'आधुनिकता' अन्य ज्ञानानुशासनों से होकर आई है। अन्य ज्ञानानुशासनों (Disciplines) को प्रभावित करती हुई और उनसे प्रभावित होती हुई, आधुनिकता का स्वरूप निरंतर विकासशील रहा है। आधुनिकता के इस विकासशील स्वरूप, जो परिवर्तित होता रहा है, को समझने की सुविधा की दृष्टि से कई चरणों में बाँटा गया है। सामान्यत: यूरोपीय आधुनिकता के दो चरणों का उल्लेख मिलता है। "पहला चरण 15वीं-16वीं शताब्दी का पुनर्जागरण था, दूसरा चरण 18वीं शताब्दी का ज्ञानोदय।"[45] जबकि "बरमैन ने आधुनिकता के विकास में तीन अलग-अलग चरणों की पहचान की है। प्रथम चरण का विस्तार सोलहवीं शताब्दी के आरंभ से लेकर अठारहवीं शताब्दी के अंत तक माना है। दूसरा चरण फ्रांस की क्रांति से और तीसरे चरण को बरमैन विश्व स्तर पर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तथा वैश्विक सांस्कृतिक आधुनिकीकरण के विकास के रूप में उल्लिखित करते हैं। जब सामाजिक और राजनीतिक जीवन में अधिकाधिक अनिश्चितता और आंदोलन शुरू होता है।"[46]

पहले चरण में आधुनिकता की कुछ अपनी विशेषताएँ रही है। जैसे पुनर्जागरणकालीन आधुनिकता, जिसकी चर्चा मैंने देकार्त से आंरभ की है (इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि आधुनिकता का शुरूआती बिन्दु देकार्त है, मैंने यहाँ कुछेक पड़ावों का उल्लेख किया है, जो आधुनिकता की पहचान और परख में सहायक सिद्ध हुए हैं। देकार्त पहला पड़ाव है, जिसने आधुनिकता की अवधारणा को एक मुकम्मल पहचान देने मे गति प्रदान की है और इसके अगले पड़ाव के रूप में मैने कांट को देखा है।) की मुख्य पहचान तार्किकता से होती है और दूसरी पहचान प्रकृति में पद्धति की तलाश से। प्रकृति में पद्धति की तलाश से हमारा तात्पर्य "देकार्त के उस प्रश्न से है जिसने आधुनिकता के दर्शन की मूल समस्या पर यह कह कर अंगुली धर दी थी कि क्या यथार्थ का विज्ञान संभव है? देकार्त का जवाब था कि हाँ, यह संभव है। यदि हमें 'सही पद्धति' मिल जाए तो हम एक विज्ञान संभव कर सकते हैं। इस तरह 'पद्धति' विज्ञान बन गई। यदि हम ऐसे नियमों की

---

[44] विजय कुमार - अंधेरे समय में विचार, संवाद, प्रकाशन, मेरठ, 2006 ई॰, पृ॰सं॰-67

[45] अजय तिवारी - आधुनिकीकरण पर पुनर्विचार, तद्भव, अंक-11, अगस्त-2004 अखिलेश संपादक-पृ॰सं॰32

[46] बेरी स्मार्ट-आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता और वर्तमान, समकालीन सृजन-शंभुनाथ (संपादक), अंक-21, 2002 ई॰ पृ॰ सं॰-155

संरचना कर सके जो निश्चित परिणाम देने वाले हों, जो सार्वभौमिक हों, जो सार्वकालिक हों, तब हम रहस्यमय, कभी पकड़ में न आनेवाली प्रकृति को नाथ सकते हैं। इस पद्धति का आधार है कि मनुष्य एक विचारशील प्राणी है।"[47]

दूसरा चरण ज्ञानोदय या प्रबोधनकालीन आधुनिकता का है। इलेन मिक्सिन्स वुड कहती है "यह माना जाता है कि विवेकशीलता, विवेकशील नियोजन का जुनून, तकनीकी केन्द्रीयता, ज्ञान और उत्पादन का मानकीकरण, रैखिक प्रगति विशेषत: बुद्धि और स्वतंत्रता की प्रगति में विश्वास, विश्व के पूर्णतावादी दृष्टिकोणों के प्रति लगाव तथा सार्वभौमिक और संपूर्ण सत्यों में विश्वास तथाकथित ज्ञानोदय परियोजना का प्रतिनिधित्व करते हैं।"[48]

तीसरे चरण की आधुनिकता विश्वयुद्धों के मध्य उपजी मानसिकता और परिवेश से जुड़ी है, जो वस्तुत: आधुनिकतावादी आधुनिकता है और आधुनिकता का यही रूप उत्तर आधुनिकता की विडम्बना, संत्रास, अजनबीपन, अलगाव या एलियनेशन, आत्म-समीक्षा, आत्मबोध, संकट-बोध, मूल्यहीनता, अमूर्तता के रूप में देखी जाती है। इस तरह आधुनिकता के कई रूप हैं।

20वीं शताब्दी के अंत तक आते-आते आधुनिकता के विमर्श ने आधुनिकता के कुछ लक्षणों, तत्वों, मूल्यों और अवधारणाओं की पहचान की। जिसकी सहायता से आज आधुनिकता का एक सहजबोध (Common sense) विकसित हुआ है। इस सहजबोध ने जाने-अनजाने प्रतिमान का रूप भी ग्रहण कर लिया है। **पीटर बर्गर (Peter Berger, 1929)** ने अपनी पुस्तक *'फेसिंग अप-टू मॉडर्निटी'* 1977 ई०, *(Facing up to modernity)* में आधुनिकता के पाँच लक्षण बतलाए हैं - अमूर्तिकरण, भविष्यवाद, वैयक्तिक्ता, मुक्ति और धर्मनिरपेक्षता।

रवि सिन्हा यूरोपीय बनावट के अंदर आधुनिकता के आठ मूल तत्वों की पहचान करते हैं। (1) विज्ञान (2) तर्कबुद्धि (3) प्रगति की अवधारणा (4) मानवीय कर्तृत्व का महत्व (5) आत्मप्रश्नेयता (6) धर्मनिरपेक्षता (7) निजी और सार्वजनिक का भेद और (8) न्याय, स्वाधीनता, मुक्ति।[49] इसी संदर्भ में ए. जमाल ख्वाजा के चिंतन को भी देख लेना संगत जान पड़ता है। पश्चिमी आधुनिकता के

---

[47] सुधीश पचौरी-आलोचना से आगे, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2000 ई०, पृ०सं० 19

[48] राबर्ट डब्ल्यू मैक्वेस्नी, इलेन मिक्सिन्स वुड, जॉन बेलेमी फॉस्टर (संपादक) - पूंजीवाद और सूचना का युग।

ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2006 (प्रथम हिन्दी संस्कारण) पृ०सं०58,61

[49] रवि सिन्हा - आधुनिकता और आधुनिकताएँ, संधान-सुभाष गाताडे (संपादक) अंक-3, अक्टूबर - दिसम्बर 2001 ई०, पृ० सं० (15-20)

आधारभूत अवधारणाओं एवं आधारभूत मूल्यों की व्यवस्थित चर्चा इन्होंने अपने निबंध 'आधुनिकता क्या है?" (What is Modernity में की है। (इन आधारभूत अवधारणाओं एवं मूल्यों के सटीक हिन्दी परिभाषिक शब्द तक न पहुँच पाने के कारण मूल अंग्रेजी में ही पाद टिप्पणी (Footnote) में दे रहा हूँ।)[50]

इस तरह हम पाते हैं कि "रिनेसाँस-रिफार्मेशन-एनलाइटेनमेण्ट-इण्डस्ट्रियलाइजेशन की कड़ी में चौदहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी तक के पाँच सौ वर्षों के दौरान आधुनिकता का यूरोप में सूत्रपात हुआ।"[51] इस आधुनिकता के लक्षणों, तत्वों, अवधारणाओं और मूल्यों ने मिलकर आधुनिकता को एक यूरोपीय प्रतिमान की शक्ल दी। इसी प्रतिमान के आधार पर 'तीसरी दुनिया' के देशों को आधुनिक और गैर आधुनिक राष्ट्रों में विभजित किया गया। बीसवीं सदी के मध्य तक 'तीसरी दुनिया' के लिए आधुनिकता के दो मॉडल उपलब्ध थे। यूरोप के पूंजीवादी आधुनिकता को चीन और सोवियत संघ की समाजवादी आधुनिकता से चुनौती तो मिली लेकिन इस समाजवादी आधुनिकता का भी अनिवार्य संदर्भ पूंजीवादी आधुनिकता ही थी। "आधुनिकता की मार्क्सवादी आलोचना दरअसल पूंजीवादी आधुनिकता की आलोचना थी। उसका केन्द्रीय तत्व यह था कि अपने को स्थापित कर लेने के बाद पूंजीवाद आधुनिकता के आदर्शों का परित्याग कर देता है, उन्हें वर्गहित के दायरे में बाँध देता है। प्रगति, न्याय, समता और मुक्ति के आदर्शों को वास्तविक रूप आधुनिकता की समाजवादी राह पकड़कर ही दी जा सकती है। सारी दुनिया के पूर्व-आधुनिक देशों के सामने आधुनिकता के ये दो वैकल्पिक रास्ते थे। दोनों तरफ अपनी-अपनी शक्ल में दुनिया को ढालने की परियोजनाएँ थी और दोनों ही परियोजनाओं में तीसरी दुनिया के लिए एक दूसरे प्रकार का समरस, समतल, समरूप भविष्य था।"[52] सवाल यह उठता है कि भारत जो औपनिवेशिक राष्ट्र था, उसने कौन सा मार्ग अपनाया? या अपने लिए किसी नये मार्ग की खोज की?

---

50 The basic concept of Western Modernity are as follows:
(1) Natural or Intracosmic causation (2) Empirical Explanation (3) Universal Evolution (4) Social Causation (5) Relativism (6) Dimensional Integration. The basic values of Western Modernity.
(1) Life affirmation or this worldiness (2) Affluence (3) Humanitic love and dignity of the Individual (4) Spiritual autonomy (5) Polymorphous Equality (6) Dynamism (7) Ceaseless Creativity of Values.
A. Jamal Khawja – What is Modernity?, Modernity and Contemporary Indian Literature Indian Institute of Advanced Study, Simla, 1968, Pg. No. 19-23.

51 रवि सिन्हा- आधुनिकता और आधुनिकताएँ, संधान-सुभाष गाताडे (संपादक) अंक-3, अक्टूबर-दिसंबर 2001, पृ॰सं॰-15

52 वही, पृ॰ सं॰-12

2. हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का अर्थ और अवधारणा

चाहे वह इतिहास का क्षेत्र हो या साहित्य का, आधुनिकता आधुनिक काल से जुड़ी अवधारणा है और आधुनिक काल का प्रश्न साहित्य-इतिहास दोनों क्षेत्रों में कालविभाजन की समस्या से जुड़ा है। भारत में आधुनिकता का प्रवेश भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न समयों में हुआ। सुशोभन सरकार के अनुसार सन् 1757 में बंगाल में आधुनिक-काल का उदय और मध्य काल का अंत होता है। महाराष्ट्र में 1818 ई॰ से आधुनिक काल का आरंभ माना जाता है। सन् 1856 ई॰ में अवध भी अंग्रेजी राज्य का अंग बन गया। सन् 1857 ई॰ में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का बिगुल बजा। हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों विशेषत: उत्तर प्रदेश में इसी वर्ष से आधुनिक काल का समारंभ माना जाता है।"[53] भारतीय इतिहास में आधुनिक काल का आरंभ सामान्यत: 1857 ई॰ में पलासी के युद्ध में अंग्रेजों को विजय से माना जाता है। लेकिन हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में अंग्रेजों का प्रभुत्व 1857 ई॰ में स्थापित होता है, बंगाल की अधीनता के सौ साल बाद। अत: यह देखना आवश्यक हो जाता है कि हिन्दी साहित्य में आधुनिक-काल का आरंभ कब से माना जाता है और उस काल-विभाजन के विचारधारात्मक आधार क्या रहे?

हिन्दी साहित्येतिहालेखन के क्रम में सर्वप्रथम 'आधुनिक-काल', कालविभाजन के एक कालखंड के रूप में प्रयुक्त हुआ। हिन्दी साहित्य का 'पक्का और व्यवस्थित ढाँचा' निर्मित करने वाले आचार्य शुक्ल ने 'आधुनिक-काल' का आरंभ सं॰ 1900 (1843 ई॰) से माना और गद्य के आविर्भाव से इसका संबंध जोड़ते हुए, प्रकृति के आधार पर इसका नामकरण 'गद्यकाल' किया। हजारी प्रसाद द्विवेदी किसी निश्चित वर्ष को आधुनिक-काल के आरंभिक बिन्दु के रूप में प्रस्तावित नहीं करते हैं। इनके अनुसार "हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल सन् ईसवी की उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ से माना जाता है। साहित्य में आधुनिकता की आरंभिक सीमा का निश्चय करना कठिन होता है। विचारों के क्षेत्र में बहुत सी बातें पहले से ही संचित होती रहती हैं और उनका साहित्य रूप में प्रकाशन देर से होता है। भारतवर्ष में अंग्रेजों के साथ संपर्क तो बहुत पहले से स्थापित हो चुका था, किन्तु साहित्य पर इसका प्रभाव बहुत बाद में पड़ा।... वस्तुत: साहित्य में आधुनिकता का वाहन प्रेस है और उसके प्रचार के सहायक हैं यातायात के समुन्नत साधन।"[54] साथ ही द्विवेदी जी बल देते हैं, इस बात पर कि साहित्य में आधुनिकता के प्रवेश के लिए प्रेस और यातायात के

---

[53] बच्चन सिंह - हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण, 2000, पृ॰सं॰-277

[54] हजारी प्रसाद द्विवेदी-हिन्दी साहित्य: उद्‌भव विकास, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1984 ई॰, पृ॰सं॰-208

साधन के साथ "शांतिपूर्ण व्यवस्था की भी आवश्यकता होती है।"[55] आचार्य शुक्ल और द्विवेदीजी के आधुनिकता संबंधी विचाराधारात्मक आधार के मूल में अंग्रेजों द्वारा निर्मित भौतिक आधारों (प्रेस और यातायात के समुन्नत साधन) की ओर स्पष्ट संकेत है। अंग्रेजों के आगमन के पूर्व उत्तर मध्यकाल में आधुनिकता के ये भौतिक आधार सहज सुलभ नहीं थे और न ही 'सचेत परिवर्तनेच्छा' की वह भावना ही प्रखर रूप में विद्यमान थी, जो 'आधुनिकता' की प्रमुख विशेषता है।

आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहासलेखन में आधुनिकता की परिभाषा नहीं दी है, बल्कि उस प्रक्रिया का उद्‌घाटन किया है। जिससे इस चेतना की उत्पत्ति, विकास की अवस्थाओं एवं सरणियों को हिन्दी साहित्य में पहचाना जा सके। प्रवृति के आधार पर आचार्य शुक्ल ने आधुनिक काल को 'गद्य-काल' कहा है। 'गद्य-काल' नामकरण न सिर्फ आधुनिकता के अन्य पहलुओं बल्कि आचार्य शुक्ल की इतिहास दृष्टि की ओर भी संकेत करता है। आधुनिक काल में ही गद्य का आविर्भाव क्यों हुआ? क्योंकि उसके लिए ऐतिहासिक परिस्थितियों और भौतिक आधार का निर्माण आधुनिक काल से पहले नहीं हो सका था।

1757 ई० में बंगाल में अंग्रेजों का आधिपत्य हुआ और उससे पहले "1682 ई० में बंगाल प्रेसीडेन्सी बना।"[56] भारतेन्दु काल (1850-85) तक बंगाल कला-साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में काफी आगे बढ़ गया था। बकौल आचार्य शुक्ल बंग देश में नए ढंग के नाटकों और उपन्यासों का सूत्रपात हो चुका था, जिनमें देश और समाज की नई रूचि और भावना का प्रतिबिम्ब आने लगा था। पर हिन्दी साहित्य अपने पुराने रास्ते पर ही पड़ा था।"[57] यह पुराना रास्ता क्या था? आचार्य शुक्ल ने रीतिकालीन साहित्य के बारे में कहा है कि "रीतिग्रंथों को इस परंपरा द्वारा साहित्य के विस्तृत विकास में कुछ बाधा भी पड़ी। प्रकृति की अनेकरूपता, जीवन की भिन्न-भिन्न चिंत्य बातों तथा जगत के नाना रहस्यों की ओर कवियों की दृष्टि नहीं जाने पाई। वह एक प्रकार से बद्ध और परिमित सी हो गई। उसका क्षेत्र संकुचित हो गया। वाग्धारा बंधी हुई नालियों में प्रवाहित होने लगी। जिससे अनुभव के बहुत से गोचर और अगोचर विषय रससिक्त होकर सामने आने से रह गये।"[58] हिन्दी साहित्य जो अपने पुराने रास्ते पर था "भारतेन्दु ने उस साहित्य को दूसरी ओर

---

[55] वही, पृ० सं०-208

[56] कार्ल मार्क्स - भारतीय इतिहास पर टिप्पणियाँ (664-1558): इंडिया पब्लिशर्स लखनऊ, 1964 ई०, रमेश सिन्हा (अनुवादक), पृ०सं०-54

[57] रामचंद्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी तेइसवाँ संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण, 1994 ई०, पृ० सं० - 246

[58] वही-पृ० सं०-131

मोड़कर जीवन के साथ फिर से लगा दिया। इस प्रकार हमारे जीवन और साहित्य के बीच जो विच्छेद पड़ रहा था, उसे उन्होंने दूर किया। हमारे साहित्य को नए-नए विषयों की ओर प्रवृत्त करने वाले हरिश्चन्द्र ही हुए।"[59] इस तरह आचार्य शुक्ल ने जहाँ एक ओर भारतेन्दु को आधुनिक हिन्दी गद्य का प्रवर्तक कहा, वहीं दूसरी ओर अपनी ऐतिहासिक अंतर्दृष्टि और आलोचनात्मक विवेक का परिचय देते हुए ये बातें भी कही कि - "गद्य को जिस परिमाण में भारतेन्दु ने नए-नए विषयों और मार्गों की ओर लगाया उस परिमाण में पद्य को नहीं।"[60] "भारतेन्दु ने हिन्दी काव्य को केवल नए-नए विषयों की ओर ही उन्मुख किया, उसके भीतर किसी नवीन विधान या प्रणाली का सूत्रपात नहीं किया।"[61] निष्कर्ष यह कि "उनकी कविताओं के भीतर आधुनिकता कम ही मिलेगी।"[62] तो सवाल यह उठता है कि ऐसा क्या है? जो भारतेन्दु के गद्य में तो बहुतायत में पाया जाता है लेकिन उसकी उपलब्धता पद्य में कम है।

भारतेन्दु ने गद्य खड़ी बोली हिन्दी में लिखा है और पद्य ब्रजभाषा में भारतेन्दु के लिए खड़ीबोली में काव्य - सर्जना का प्रयास सफल और सार्थक सिद्ध नहीं हुआ था। उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद की जैसी और जितनी आलोचना भारतेन्दुकालीन गद्य में देखने को मिलती है, उस परिमाण में पद्य में नहीं। स्वयं भारतेन्दु ने भक्ति और श्रृंगार विषयक काफी कविताएँ लिखी थी, जो आधुनिकता रूपी चेतना के विकास में बाधक थीं। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह कि हिन्दी साहित्य में आधुनिकता गद्य और पद्य दोनों में समान रूप से एक ही समय में प्रतिफलित नहीं होती है। साथ ही यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि हिन्दी गद्य के प्रवर्तन का श्रेय भारतेन्दु को स्थूल रूप में ही प्राप्त है, क्योंकि हिन्दी गद्य की सभी विधायें भारतेन्दु काल में विकसित नहीं हो सकी थी। कहानी का विधा के रूप में जन्म और विकास भारतेन्दु काल के बाद ही होता है।

भारतेन्दुयगीन साहित्य में जो कुछेक महत्वपूर्ण विशिष्टताएँ हमें देखने को मिलती हैं, जिनके आधार पर हम उन्हें 'मध्यकाल' (भक्तिकाल और रीतिकाल) से अलगाकर आधुनिक काल की श्रेणी में डालते हैं। वह यह कि भारतेन्दु-युगीन रचनाकार अपने परिवेश के प्रति जागरूक हैं। परिवेश का यथार्थ-बोध उनमें अपने समकालीन औपनिवेशिक शासन के फलस्वरूप उत्पन्न विषमता के स्वरूप और

Jawaharlal Nehru University Library

---

[59] वही-पृ० सं०-246

[60] वही-पृ० सं०-320

[61] वही-पृ० सं०-320

[62] वही-पृ० सं०-320

प्रकृति का एक बोध विकसित करता है। परिणामतः परिवेशगत असंतोष को दूर कर अपने इस लोक को बेहतर बनाने की प्रतिबद्धता और 'सचेत परिवर्तनेच्छा' से भारतेन्दुयुगीन रचनाकार 'लैस' दीखते हैं। इस चेतना के प्रचार-प्रसार में सहायक प्रेस और यातायात के समुन्नत साधनों की उपलब्धता भी आचार्य शुक्ल द्वारा भारतेन्द युग से आधुनिक काल का आरंभ मानने की स्थापना की पुष्टि करता है।

भारतेन्दु युगीन रचनाकार परिवेशगत यथार्थ बोध से उत्पन्न विषमता बोध को दूर करने के लिए जिस चेतना का प्रचार-प्रसार कर रहे थे। गद्य में उस नयी चेतना को वाणी खड़ी बोली हिन्दी दे रही थी और पद्य में ब्रजभाषा खड़ी बोली की अपेक्षा कुछ अंशों में ज्यादा कारगर साबित हुई थी। ब्रज भाषा के पिछले 400 वर्षो का काव्य संस्कार आलोचना के नाम पर भी कुछ ऐसा कहलवा देता था।

सूर सूर तुलसी ससि, उडुगन केशवदास
अबके कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकास।

काव्यशास्त्रीय विश्लेषण जैसे शब्दशक्ति की भी व्याख्या कैसे की जाती रही थी, देखना रोचक होगा।

अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणा लीन
अधम व्यंजना रस बिरस, उल्टी कहत प्रवीन।

कहने का तात्पर्य इतना कि भारतेन्दुयुगीन रचनाकार जिस आलोचनात्मक चेतना का प्रचार प्रसार गद्य के माध्यम से कर रहे थे। यह नयी प्रकार की चेतना (गद्य में) रीतिकालीन ब्रजभाषा में नहीं अभिव्यक्त हो सकती थी।"[63] भारतेन्दु ने इस चेतना के प्रचार प्रसार के लिए गद्य के साथ-साथ खड़ी बोली का भी चुनाव किया था। "शायद वे समझते थे कि नवीन स्फूर्ति की अभिव्यक्ति गद्य रूपों में ही हो सकती थी।"[64] किन्तु शायद इससे भी गहरा कोई कारण था। भारतेन्दु के समय में पहली बार हमारा समाज विचार प्रक्रिया से परिचालित होने की तैयारी कर रहा था। अपनी संस्कृति के महत्वबोध का मूल्य सामाजिक स्तर पर कई विचारधाराओं को उत्पन्न करने में समर्थ हुआ। सामाजिक जीवन के भीतर से धार्मिक संस्कार धीरे-धीरे शेष हो रहा था और उसके स्थान पर वैचारिक संस्कार का बीज पड़ गया था।"[65]

---

[63] नित्यानंद तिवारी-आधुनिक साहित्य और इतिहास बोध, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली 1994 ई०, पृ० सं०-39

[64] रामस्वरूप चतुर्वेदी-आधुनिक काव्य बोधः अज्ञेय और शमशेर, कादम्बिनी अंक 6 अप्रैल 1961 पृ० सं० - 106

[65] नित्यानंद तिवारी आधुनिक साहित्य और इतिहास बोध, वाणी प्रकाशन, 1994 ई० पृ० सं०39

इस कार्य के लिए खड़ी बोली और गद्य दोनों का चुनाव भारतेन्दु के इतिहास-विवेक को दर्शाता है।

बहरहाल, आचार्य शुक्ल ने जहाँ आधुनिकता की परिभाषा की बजाय उस प्रक्रिया का अंकन किया था। जिसके द्वारा आधुनिकता हिन्दी साहित्य में आ रही थी, वहीं हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आधुनिकता पर विचार करते हुए उसके अर्थों के संधान की कोशिश की। आधुनिकता क्या है? शब्दार्थ पर विचार करें तो 'अधुना' या इस समय जो कुछ है, वह आधुनिक है। पर आधुनिक का यही अर्थ नहीं है। हम बराबर देखते हैं कि कुछ बातें इस समय भी ऐसी हैं, जो आधुनिक नहीं है, बल्कि मध्यकालीन है।... आधुनिकता अपने आप में कोई मूल्य नहीं है। मनुष्य ने अनुभवों द्वारा जिन महनीय मूल्यों को उपलब्ध किया है, उन्हें नए संदर्भों में देखने की दृष्टि आधुनिकता है। यह एक गतिशील प्रक्रिया है। ... आधुनिकता, ज्ञान की अत्याधुनिक उपलब्धियों के आलोक में रूप ग्रहण करने का प्रयास करती है, इसलिए बौद्धिक है।..."[66] एक बात इससे स्पष्ट रूप से सामने आती है कि द्विवेदी जी की दृष्टि में आधुनिकता मूल्य नहीं प्रक्रिया है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आधुनिकता के अनिवार्य संदर्भ के रूप में 'मध्ययुगीनता' को देखा है। बकौल द्विवेदी जी "मध्य युग पर दृष्टि केन्द्रित करने का कारण यह है कि उसके पेट से हमारा आधुनिक युग उत्पन्न हुआ है।"[67] मध्यकालीन बोध के स्वरूप पर बात करते हुए, द्विवेदी जी पाठकों में आधुनिकता की समझ (हिन्दी साहित्य के संदर्भ में) विकसित करते हैं। हिन्दी साहित्य में मध्ययुगीनता और आधुनिकता की अवधारणा पर द्विवेदी जी ने व्यवस्थित विवेचन प्रस्तुत किया है। "द्विवेदी जी के मन्तव्यों के आधार पर विचार करें तो मध्यकालीनता को निर्मित करने वाले घटक थे 'पतनोन्मुख और जबदी हुई मनोवृत्ति' अथवा 'कुंठित और स्तब्ध मनोवृत्ति', 'ब्राह्मण धर्मानुमोदित व्यवस्था', 'पुराणों मे आस्था', अतीत को आदर्श मानना, अनुकरण प्रधान साहित्य और अतिशय अलंकरण-प्रियता। इसमें सन्देह नहीं कि इन्हीं प्रवृतियों से मध्यकालीनता की पहचान निश्चित होती है लेकिन भारतीय इतिहास में अत्यंत संक्षिप्त अवधियों को छोड़कर ऐसी परिस्थितियाँ प्रायः नहीं रहीं।"[68] इसी तरह आधुनिकता की विशिष्टताओं में द्विवेदी जी "परिवेश के प्रति सजगता,

---

[66] हजारी प्रसाद द्विवेदी - 'परंपरा बनाम आधुनिकता' शीर्षक लेख से

[67] हजारी प्रसाद द्विवेदी - विचार प्रवाह से

[68] अजय तिवारी - मध्यमकालीनता और आधुनिकता की पहचान, मित्र (अंक-2, सं॰ मिथिलेश्वर, अप्रैल 2003, आरा), पृ॰ सं॰ 76

वस्तुनिष्ठ दृष्टि, बौद्धिकता, यथार्थवाद सामूहिक मुक्ति की भावना और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ऐतिहासिक दृष्टि की प्रतिष्ठा"[69] आदि को गिनते हैं।

'मध्ययुगीनता' की दो मुख्य विशेषताओं के रूप में द्विवेदी जी 'जबदी हुई स्तब्ध मनोवृत्ति' और कुंठित मनोवृत्ति' को सामने रखते हैं, 'स्तब्ध मनोवृत्ति' से मतलब यह कि स्वतंत्र चिंतन और आत्मविश्वास के अभाव का युग।"[70] और 'कुंठित मनोवृत्ति' से द्विवेदी जी का तात्पर्य है कि "जब साहित्यकार प्रतीक और रूढ़ि का विवेक खो देता है तो वह कुंठाग्रस्त हो जाता है। इसका दूसरा लक्षण यह है कि जहाँ शब्द प्रधान हो जाए और अर्थ से क्रमशः कटता हुआ शब्द स्तब्ध और प्रयोग विरहित शैथिल्य को जन्म देता हो।"[71] ये दोनों विशेषताएँ उत्तर मध्य (रीतिकाल) में देखने को मिलती है। आधुनिकता की मुख्य विशेषता द्विवेदी जी ने 'सचेत परिवर्तनेच्छा' को माना था।

'भक्तिकाल' के भक्ति-साहित्य में 'सचेत परिवर्तनेच्छा' की भावना पर्याप्त मात्रा में देखने को मिलती है तो क्या कारण रहे कि हम भक्ति-काल को आधुनिक नहीं कह सके? इसलिए नहीं कह सके क्योंकि "उसका अनुध्यात आदर्श परलोक में मनुष्य को मुक्त करना है। इसी लोक, में इसी मर्त्यजगत को सुंदर और शोभन बनाने के उद्देश्य से वह नहीं लिखा गया। भक्ति साहित्य संसार के बाह्यरूप को यथास्थित छोड़कर व्यक्ति मानव के चित्त में परिवर्तन लाने पर अधिक जोर देता है।"[72]

भक्तिकाल इहलोक को बेहतर बनाने की अपेक्षा परलोक संवारने पर ज्यादा बल देता है। सामूहिक मुक्ति की बजाय व्यक्तिगत मुक्ति की बात करता है। कबीर अपने तमाम प्रगतिशील तेवर के बावजूद 'रहना नहीं देस बिराना है' कहते हैं। रहस्यवादी स्वर भी पर्याप्त मात्रा में वहाँ है। इहलौकिकता के अभाव की पूर्ति यद्यपि रीतिकाल में हो जाती है। लेकिन अपने परिवेश के प्रति असंतोष, बेचैनी नहीं देखने को मिलती। 'सचेत परिवर्तनेच्छा' का अभाव देखने को मिलता है। कहना न होगा कि 'आधुनिकता' के कुछेक लक्षण और विशेषताएँ भक्तिकाल और रीतिकाल दोनों में देखने को मिलते हैं लेकिन संगत तौर पर आधुनिकता की बुनियादी और मूलभूत शर्तों की पूर्ति वहाँ नहीं होती। साहित्यिक प्रवृतियों को आधार बनाकर मूल्यांकन के

---

[69] मैनेजर पाण्डेय-साहित्य और इतिहास दृष्टि, अरूणोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1992 ई०, पृ० सं०-145

[70] हजारी प्रसाद द्विवेदी - मध्यकालीन बोध का स्वरूप, पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़, मार्च 1970 ई० (प्रथम संस्करण) पृ० सं० - 17

[71] वही पृ० सं० - 22

[72] हजारी प्रसाद द्विवेदी-मध्यकालीन बोध का स्वरूप, पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़, प्रथम संस्करण-मार्च 1970 ई०, पृ०सं० 208

क्रम में हमें यह न भूलना चाहिए कि 'आधुनिकता' सिर्फ बुद्धिवाद नहीं बल्कि भौतिकवाद की भी प्रक्रिया है। आधुनिक काल को 'गद्य-काल' कहते हुए शुक्लजी ने इस भौतिक आधार की ओर संकेत मात्र किया था अर्थात् गद्य के प्रचार प्रसार के लिए प्रेस की उपलब्धता। द्विवेदी जी ने इस भौतिक आधार को ज्यादा स्पष्ट किया, यह कहते हुए कि "वस्तुतः साहित्य में आधुनिकता का वाहन प्रेस है और उसके प्रचार के सहायक हैं यातायात के समुन्नत साधन और शांतिपूर्ण व्यवस्था।"[73] द्विवेदी जी इस आधुनिक साहित्य के निर्माण के मूल में अंग्रेजों को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से सहायक मानते हैं।

यह जग जाहिर है कि अंग्रेजों ने भारत में जिन भौतिक आधारों का निर्माण किया उसके मूल में भारत के औद्योगिक विकास को रोकने की ब्रिटिश नीति थी, जिसने भारतीय उद्योग धंधों और आर्थिक व्यवस्था की रीढ़ तोड़ डाली थी। ऐसी स्थिति में अंग्रेजों के आगमन से आधुनिकता के उदय को जोड़ने पर, अंग्रेजी राज की प्रगतिशील भूमिका सामने आती थी। वास्तविकता इसके विपरीत थी। भारतीय संदर्भ में आधुनिकता अंग्रेजी राज के कारण नहीं उसके बावजूद आयी थी। आधुनिक काल का नाम देखकर पाठक की धारणा यह बनती है कि अंग्रेजी राज कायम होने से पहले सारा साहित्य मध्यकालीनता (अर्थात् सामंती रूढ़ियों) की परिधि में हैं; साहित्य में आधुनिकता की शुरूआत अंग्रेजी राज के कारण हुई।"[74]

रामविलास जी 'आधुनिकता' को देशज संदर्भों में समझना समझाना चाहते थे।[75] इसके लिए उन्होनें मार्क्सवाद के सिद्धांतों का प्रयोग भारतीय संदर्भों में आधुनिकता को समझने के लिए किया। "मार्क्सवाद की मूल स्थापना यह है कि जातियों का निर्माण पूंजीवाद के युग में होता है।"[76] ध्यान रहे यह मार्क्स की मूल स्थापना नहीं है बल्कि मार्क्सवाद की मूल स्थापना है। यहाँ स्पष्टीकरण इसलिए आवश्यक था कि "हिन्दी जाति के गठन और हिन्दी भाषा के जातीय रूप के विकास के बारे में रामविलास शर्मा के चिंतन पर जातीय निर्माण और जातीय भाषा संबंधी लेनिन और स्तालिन के विचारों का प्रभाव है, लेनिन से अधिक स्तालिन के विचारों का असर है। जातीय निर्माण की प्रक्रिया के बारे में लेनिन ने लिखा है कि

---

[73] हजारी प्रसाद द्विवेदी-हिन्दी साहित्य उद्भव विकास, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1984 ई॰, पृ॰ सं॰ 208

[74] रामविलास शर्मा- भारतेन्दु हरिशचन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ: हिन्दी जाति का साहित्य, समकालीन सृजन (अंक - 21, 2002, शंभुनाथ सं॰) पृ॰सं॰-26

[75] पी॰एन॰सिंह॰ - रामविसलास शर्मा और हिन्दी जाति, आलोचना (सहस्त्राब्दी अंक-पांच, अप्रैल-जून 2001, परमानंद श्रीवास्तव (संपादक), पृ॰ सं॰ 75

[76] रामविलास शर्मा- भारतेन्दु हरिशचन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, 2004 (छठी आवृति), पृ॰ सं॰-22

जातियों का विकास पूंजीवाद के विकास के साथ होता है। स्तालिन का मत है कि जाति का विकास एक निश्चित ऐतिहासिक काल में होता है, यह काल पूंजीवाद के उदय का काल है।"[77] "सौदागरी पूंजीवाद और औद्योगिक पूंजीवाद, पूंजीवाद के विकास की दो अवस्थायें है। पहली अवस्था में लघु जातियों का गठन होता है, दूसरी अवस्था में महाजाति या राष्ट्र का विकास होता है। इन दोनों अवस्थाओं में जातीय भाषा के निर्माण और विकास की प्रक्रिया चलती है।"[78] लेकिन लेनिन और स्तालिन के चिंतन से रामविलास जी की मान्यता थोड़ी अलग है, उनेक अनुसार "सामंती व्यवस्था में लघुजातियों का निर्माण होता है, महाजाति का नहीं।"[79] "किन्तु किसी महाजाति के गठन और उसकी भाषा के विकास में सामन्ती राज्यसत्ता का भी योग हो सकता है।"[80] सवाल यह उठता है कि लघुजाति और महाजाति का फर्क क्या है? और इसका संबंध आधुनिक काल से कैसे है?

काल-विभाजन के प्रचलित कई आधारों में से एक आधार सामाजिक विकास का भी है। जिसके अनुसार आदिम साम्यवादी युग, सामंती युग और पूंजीवादी युग की बात की जाती है। कालपरक विभाजन करने पर यह क्रमशः प्राचीनयुग, मध्ययुग और आधुनिक-युग कहे जायेंगे। मार्क्सवाद के अनुसार जातीय भाषा और जातीय गठन पूंजीवाद के युग में होता है, जो आधुनिक-काल की सीमारेखा के अंतर्गत आता है। यूरोप में आधुनिक-काल का आरंभ कुछेक विद्वान 15 वीं-16वीं शताब्दी से होने वाले पुनर्जागरण से मानते हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी अंग्रेजी, फ्रांसीसी, जर्मन आदि आधुनिक यूरोपीय जातियों के निर्माण का काल है। जातीय निर्माण का मतलब है सामंती व्यवस्था के गर्भ से व्यापारिक पूंजीवाद का विकास। यहीं से लैटिन को पीछे ठेलकर अंग्रेजी, इतालवी, फ्रांसीसी, जर्मन आदि आधुनिक यूरोपीय भाषाओं में साहित्य रचना शुरू हुई। आधुनिक समाज की मुख्य पहचान, आधुनिक विज्ञान इसी काल की उपलब्धि है। अगर रामविलासजी इस यूरोपीय प्रतिमान का इस्तेमाल भारतीय संदर्भों में कर रहे थे तो किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए?

"यूरोप में औपनिवेशिक शोषण-उत्पीड़न पर परदा डालने के लिए 'व्हाइट मैन्स बर्डेन' (श्वेतजनों पर बोझ) नामक धारणा विकसित की गयी, जिसका हवाला देकर अंग्रेज बार-बार कहते थे कि वे तो भारत को सभ्य बनाने के लिए मिशन

---

[77] मैनेजर पाण्डेय - साहित्य और इतिहास दृष्टि, अरूणोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1992 ई॰ पृ॰ सं॰ 168

[78] मैनेजर पाण्डेय - साहित्य और इतिहास दृष्टि, अरूणोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1992 ई॰ पृ॰ सं॰ 170

[79] रामविलास शर्मा- भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2005 (पांचवी आवृत्ति) पृ॰ सं॰-252

[80] वही सं॰ सं॰ 253

(Civilising mission) के साथ कार्य कर रहे हैं क्योंकि भारत जैसे पिछड़े और जटिल समाज पर राज करना एक बोझ ही है।"[81]

एडवर्ड सईद की 'प्राच्यवाद' (Orientalism) की जो अवधारणा है, वह पश्चिम के द्वारा पूर्व के बारे में निर्मित अवधारणा है। (Western conception of the orient)। जिसका सीधा सरल अर्थ है "पूर्व पर एकाधिपत्य, उसकी पुनर्रचना और उस पर वर्चस्व की पाश्चात्य शैली।"[82] सभ्य बनाने का मिशन (civilising mission) इस 'प्राच्यवाद' का सटीक उदाहरण है। औपनिवेशिक काल में इन बातों ने भारतीयों के मन में एक हीनता की ग्रंथि निर्मित कर दी थी। रामविलास जी ने 'यूरोपीय हथियार से ही यूरोपकेन्द्रिक सोच पर हमला किया।'[83] उनके लिए "साहित्य के इतिहास की समस्या यह है कि आधुनिक-काल अंग्रेजी राज कायम होने से पहले शुरू हुआ या बाद को? काल-विभाजन की समस्या विशुद्ध साहित्य के इतिहास लेखन की समस्या नहीं है: उसका सीधा संबंध भारत में अंग्रेजी राज की भूमिका से है।"[84] यदि अंग्रेजी राज के स्थापित होने के पूर्व यहाँ जाति का निर्माण हुआ था या जातीय भाषा या जातीय गठन हुआ था तो अंग्रेजी राज को सामंती व्यवस्था से आगे ले जाने का श्रेय नहीं दिया जा सकता, लेकिन ऐसा न होने की स्थिति में 'इसका श्रेय अंग्रेजी राज को ही देना होगा, चाहे उसने जातीय विकास के लिए जिस ढंग से मार्ग प्रशस्त किया हो।'[85]

रामविलास जी के अनुसार "जातीयता का प्रमुख चिह्न है भाषा। जाति के निर्माण से भाषा के गठन और विकास का घनिष्ठ संबंध है।"[86] और आधुनिक भाषाओं का विकास समझने के लिए उन्हें बोलनेवाली आधुनिक जातियों का विकास समझना आवश्यक है। इन आधुनिक जातियों का विकास सामन्ती व्यवस्था की लघु जातियों के विकास से सम्बद्ध है और इन लघु जातियों का विकास प्राचीन जनों के

---

[81] इतिहासबोध - लाल बहादुर वर्मा (संपादक), फरवरी 2005, पृ०सं० 50

[82] In short, Orientalism as a Western style for dominating, restructuring and having authority over the orient, introduction. Edward W. said – Orientatlism, Penguin Books India, 2001, Pg. No. 3.

[83] शंभुनाथ - हिन्दी नवजागरण की अवधारणा संदेह के बावजूद, आलोचना (सहस्त्राब्दी अंक-पांच अप्रैल-जून-2001, परमानंद श्रीवास्तव (संपादक), पृ०सं० 56

[84] रामविलास शर्मा - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, 2004 (छठी आवृति), पृ०सं० 21

[85] वही पृ० सं० 21

[86] रामविलास शर्मा - भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2002 (पांचवी आवृति) पृ०सं० 280

विघटन और एकीकरण से सम्बद्ध है।"[87] जिन तत्वों से जन का निर्माण होता है, उन्हीं से सामंतयुगीन लघु जाति का और पूंजीवादी महाजाति का निर्माण होता है। किन्तु इन तत्वों के गुण और परिमाण में अंतर होता है। इसीलिए जन लघुजाति और महाजाति में भी गुणात्मक अंतर है। जन के आर्थिक जीवन का आधार सामूहिक या कुलगत उत्पादन और सम्पत्ति है। लघुजाति का आर्थिक जीवन नये श्रम-विभाजन के आधार पर बनता है जिसका स्पष्ट चिह्न है वर्ण-व्यवस्था। महाजाति का आर्थिक जीवन वितरण और उत्पादन के नये पूंजीवादी संबंधों पर निर्भर होता है और उसमें वर्ण व्यवस्था विश्रृंखल होकर नये वर्गों को स्थान देती है। जन से महाजाति तक के परिवर्तन की धुरी आर्थिक जीवन है। इसी से जन संगठित होकर संघ बनाते हैं। विभिन्न जनपद सिमटकर लघुजाति का विस्तृत प्रदेश बनते है, भिन्न बोलियाँ बोलने वाले एक-दूसरे के निकट आते हैं; बोलियों के बीच व्यापक व्यवहार के लिए 'भाषाओं' का अभ्युदय होता है। सभी परिस्थितियों में आर्थिक जीवन की नियामक भूमिका रहे, यह आवश्यक नहीं है।"[88]

रामविलास जी के अनुसार "जिस सामाजिक इकाई में नवजागरण के कार्य संपन्न होते हैं, उसे हम जाति की संज्ञा देते हैं।"[89] "मार्क्सवाद के अनुसार जाति की व्याख्या क्या है? इसे स्तालिन ने *'मार्क्सवाद और जातीय तथा औपनिवेशिक प्रश्न'* नाम की पुस्तक में बता दिया था। "जाति वह है जो भाषा, प्रदेश, आर्थिक जीवन और मानसिक गठन में एक हो और एक सांस्कृतिक समाज के रूप में उसका ऐतिहासिक विकास हुआ हो।" इसके साथ स्तालिन ने यह जरूरी शर्त और जोड़ दी थी "इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि उपयुक्त विशेषताओं में किसी एक विशेषता के न रहने पर ही जाति नहीं बन जाती। इसके विपरीत इन विशेषताओं में एक भी कम हुई तो जातीयता खंडित हो जाती है।"[90]

बहरहाल, अपने व्यापक अध्ययन-विश्लेषण के बाद रामविलास जी की यह ध्यातव्य स्थापना है कि "भारत में जातीय गठन की प्रक्रिया सब जगह एक ही समय संपन्न नहीं होती, फिर भी मोटे रूप से 12वीं सदी को नई जातियों के निर्माण का प्रारंभिक काल मान सकते हैं।"[91] और चूँकि नई जातियों का निर्माण काल पूंजीवाद

---

87 वही, पृ०सं० 243

88 रामविलास शर्मा - भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली 2002 (पांचवी आवृति)पृ०सं० 247-248

89 वही, पृ०सं०21

90 रजनी पाम दत्त - आज का भारत, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड पृ० सं० 419

91 रामविलास शर्मा - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली 2004, (छठी आवृति), पृ०सं० 26

के युग में होता है, अत: 12वीं सदी से आधुनिक-काल का आरंभ मानना चाहिए। हिन्दी साहित्य के संदर्भ में उनकी यह प्रमुख स्थापना है कि "जिसे लोग मध्यकाल कहते हैं, उसे आधुनिक-काल का प्रथम चरण मानना चाहिए।"[92] और अगर ऐसा नहीं मानते तो "हमें यह बात केवल भारत के संदर्भ में नहीं, यूरोप के संदर्भ में भी कहनी चाहिए: मानना चाहिए कि यूरोप का पुनर्जागरण काल वास्तव में मध्यकाल है।"[93] रामविलास जी के "ये विचार अंतत: इस इस स्थापना तक पहुंचाते हैं कि इटली नवजागरण (14वीं सदी) से भी पहले हिन्दी नवजागरण (13वीं सदी) का प्रथम चरण आ चुका था।"[94] रामविलास जी की यह अवधारणा महत्वपूर्ण होते हुए भी असंगतियों से मुक्त नहीं है। इसलिए इन असंगतियों को दूर कर लें तो 'हिन्दी जाति' की अवधारणा व्यर्थ नहीं है।

जिस 'जातीय गठन' की अवधारणा के आधार पर रामविलास जी हिन्दी साहित्य के मध्यकाल को आधुनिक-काल कहने की पुरजोर वकालत करते हैं उसी "जातीय गठन के सवाल पर लेनिन ने *'जातियों का आत्मनिर्णय का अधिकार'* में पूंजीवाद के दो कालों के बीच सख्ती से फर्क करते हुए प्रथम काल में जातीय गठन के लिए जो शर्तें रखी थीं, वे इस प्रकार हैं - सामंतवाद विरोधी संघर्ष, पूंजीवादी-जनवादी सुधार, जातीय राज्य की बेचैनी, प्रतिनिधित्वमूलक लोकतांत्रिक संस्थाओं का निर्माण आदि। रामविलास शर्मा हिन्दी जातीय निर्माण के चिह्न ढूंढते समय इन जरूरी बातों पर ध्यान नहीं देते। वे काव्य-भाषाओं में खड़ी बोली के चिह्न दिखाकर, व्यापारिक पूंजीवाद के कुछ अधकचरे लक्षण संकेतित कर और कुछ इस्लामी लेखकों के इतिहास-लेखन (जो अंग्रेजो के इतिहास-लेखन से पहले शुरू हो चुका था) का उदाहरण रखकर ही हिन्दी का जातीय गठन घोषित कर देते हैं।"[95] उन्होंने हिन्दी जाति को खूब विकसित दिखलाने के लिए व्यापारिक - पूंजीवाद से संबंधित साहित्यिक तथ्य इकट्ठे किये, क्योंकि आर्थिक तथ्य पूरे उपलब्ध नहीं थे और राजनीतिक तथ्य विपरीत थे।"[96] इतना ही नहीं जातीय भाषाओं के निर्माण के नाम पर भक्ति साहित्य की उन विशेषताओं (जातीय) की भी अनदेखी की, जो उस

---

[92] शंभुनाथ - हिन्दी नवजागरण की अवधारणा: सन्देह के बावजूद, (आलोचना, सहस्त्राब्दी अंक-पांच, अप्रैल-जून 2001), पृ०सं० 55

[93] रामविलास शर्मा - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली 2004, (छठी आवृति), पृ०सं० 22

[94] शंभुनाथ - हिन्दी नवजागरण की अवधारणा: सन्दहे के बावजूद, आलोचना- (सहस्त्राब्दी अंक - पांच, अप्रैल-जून, 2001) पृ०सं० 55

[95] शंभुनाथ - हिन्दी नवजागरण की अवधारणा : सन्देह के बावजूद, आलोचना, (सहस्त्राब्दी अंक-पांच, अप्रैल-जून 2001) पृ०सं० 57

[96] वही, पृ०सं० 56

साहित्य को आधुनिक-काल के दायरे में आने से रोकती थी। जैसे-भक्त कवियों की मोक्ष और पारलौकिकता की अवधारणा के कारण उस 'सचेत परिवर्तनेच्छा' (आधुनिक साहित्य की मुख्य विशेषता) का अभाव जो विकल्पों की सृष्टि करती है। भाषा के आधार पर खुसरो और विद्यापति तक को आधुनिक काल के अंतर्गत शामिल करते हैं, ऐसा अंतर्वस्तु की अनदेखी करने के कारण होता है। "खुसरो की पहेलियों और मुकरियों में लोकजागरण के चिह्न की तुलना में चमत्कारवाद अधिक है। उनकी पहेलियों की अन्तर्वस्तु में सामंतवाद-विरोधी प्रक्रिया का कौन-सा पहलू है? खुसरो ने जितनी पहेलियाँ लिखीं, उनसे बहुत ज्यादा मसनवियाँ लिखीं, जिनमें खिलजी और तुगलक वंश की विरुदावली ही नहीं, भुजाएँ फड़कानेवाले साम्प्रदायिक कथन भी है। क्या यही है धर्मनिरपेक्ष जातीय गठन की सामंतवाद विरोधी प्रक्रिया?... विद्यापति का कवित्व बड़ा ऊंचा है, फिर भी उनके पदों में लोकजागरण की भावना से अधिक सशक्त है रीतिवाद।"[97] इतना ही नहीं इहलौकिक-प्रवृति का अभाव और कुछ भक्त कवियों की वर्णव्यवस्था में आस्था (व्यक्ति के जन्म के आधार पर जातीय श्रेष्ठता की परंपरा की उपस्थिति, भक्त कवियों के स्त्री विषयक विचार) जैसी प्रवृत्तियों को कम से कम आधुनिकता का सूचक तो नहीं ही माना जा सकता है।

यह तो थी भक्तिकालीन साहित्य की स्थिति, लेकिन "12वीं सदी से हिन्दी साहित्य के आधुनिक-काल का आरंभ मानने की धारणा के लिए सबसे बड़ी चुनौती रीतिकाल है। रीतिकाल के साहित्य का आधार और स्वरूप निस्संदेह सामंती है, उसे सामंतवाद विरोधी आधुनिक-काल के अंतर्गत कैसे शामिल किया जा सकता है?"[98] तो क्या हम यह मान सकते हैं कि "भारत में 12वीं सदी से आरंभ होनेवाले पूंजीवाद का विकास सफल नहीं हुआ, बाद में अवरुद्ध होकर निष्फल हो गया। समाज का सामंती आधार और उससे निर्मित सांस्कृतिक ढाँचा एक बार कमजोर होने के बावजूद कायम रहा। यही कारण है कि भक्तिकाल के बाद रीतिकाल आया।"[99] रामविलास जी ऐसा मानने से इनकार करते हुए कहते हैं कि श्रृंगारिकता या दरबारी संस्कृति की छाप होने का मतलब यह नहीं है कि "पूंजीवाद का विकास अवरुद्ध और निष्फल हो गया था।.... भारतीय पूंजीवाद का सहज वास्तविक विकास अवरुद्ध होता है अंग्रेजी राज में।"[100]

---

[97] वही, पृ०सं० 57

[98] मैनेजर पाण्डेय - साहित्य और इतिहास दृष्टि, अरूणोदय प्रकाशन, दिल्ली 1992 ई० पृ०सं० 174

[99] वही, पृ०सं० 175

[100] रामविलास शर्मा - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आरै हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004 (छठी आवृति), पृ० सं० 32

अगर रामविलास जी की इस मान्यता को मान लें कि अंग्रेजों ने भारतीय पूंजीवाद के सहज-विकास को अवरुद्ध किया तो क्या नतीजे सामने आते हैं? यह देखना दिलचस्प है। भारत में अंग्रेज 1757 ई० में बंगाल को अपने अधीन करते हैं। 1818 में महाराष्ट्र को और 1856 ई० में अवध को अपने साम्राज्य में मिलाते हैं। इसके खिलाफ 1857 का विद्रोह होता है। हिन्दी प्रदेश में आधुनिक काल के आरंभ का वर्ष 1857 ई० माना जाता है। हिन्दी साहित्येतिहास में रीतिकाल का कालविभाजन (सं-1700-सं० 1900) अर्थात् (1643 ई० से 1843 ई०) माना गया है।[101] मतलब यह कि हिन्दी साहित्य के रीतिकाल वाले कालखण्ड में अंग्रेजों का आधिपत्य हिन्दी भाषी प्रदेशों में स्थापित नहीं हुआ था। अतः पूंजीवाद के सहज विकास को ज्यादा अवरुद्ध बंगाल में होना था न कि हिन्दी भाषी प्रदेशों में। लेकिन होता क्या है? 1850 ई० तक हिन्दी साहित्य में रीतिकालीन संस्कार ही हावी नजर आते हैं। आलोचना के नाम पर टीका एवं भाष्य की उपलब्धता देखने को मिलती है, विमर्श की भाषा का अभाव देखने को मिलता है और "बंग देश में नए ढंग के नाटकों और उपन्यासों का सूत्रपात हो चुका था, जिनमें देश और समाज की नई रूचि और भावना का प्रतिबिम्ब आने लगा था।"[102] व्यापारिक पूंजीवाद का सहज विकास अवरुद्ध होने पर बंगाल में नवजागरण की धारणा विकसित होती है और जहाँ व्यापारिक पूंजीवाद का सहज विकास ज्यादा प्रभावित नहीं होता, (हिन्दी प्रदेश में) वहाँ रीतिकालीन संस्कार बचे रहते हैं, क्या उलटबांसी है।

अंग्रेजी राज की प्रगतिशीलता की घोर आलोचना के बावजूद रामविलास जी के चिंतन की ऐसी परिणति क्यों होती है, जो कला-साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में अंग्रेजी राज की प्रगतिशील भूमिका की धारणा को ही पुष्ट करती है। इस अंतर्विरोध के सूत्र उनके चिंतन में ही मौजूद हैं, उनका यह मानना कि "यदि व्यापार के विकास के साथ, जाति के निर्माण और उसकी भाषा के प्रसार की ओर ध्यान दें तो आधुनिक-काल की शुरुआत 19वीं सदी के मध्य से और काफी पहले निश्चित करनी होगी।"[103] अब यहाँ तीन कारक हैं- व्यापार का विकास, जाति का निर्माण और उसकी भाषा का प्रसार। आधुनिक आर्य भाषा काल का आरंभ 1000 ई० से माना जाता है। रामविलास जी के अनुसार जातीय निर्माण एवं गठन 12वीं सदी से मानना चाहिए और व्यापार का विकास से मतलब यदि व्यापारिक पूंजीवाद के

---

[101] आचार्य रामचंद्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी तेईसवाँ संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण, पृ० सं०

[102] आचार्य रामचंद्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी तेईसवाँ संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण, 1994ई० पृ०सं० 246

[103] रामविलास शर्मा - भारतेन्दु हरिश्चंद्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004 (छठी आवृति), पृ० सं० 32

विकास से है तो अपनी पुस्तक 'मार्क्स और पिछड़े हुए समाज' में "उन्होंने कौटिल्य के अर्थशास्त्र से उत्पादन, पगार, खनिज-सम्पदा, उद्योग खेती, पशुपालन, विनिमय-व्यापार, व्यक्तिगत सम्पत्ति, विवाह और कानून से संबंधित बहुत सारे विवरण देकर कौटिल्यकालीन मगध के समाज में व्यापारिक पूंजीवाद के विकास के अलावा आधुनिक पूंजीवादी विशेषताएँ, यहाँ तक कि समाजवादी विशेषताएँ भी, दिखलाने की कोशिश की है।"[104] फिर भी, जातियों के गठन के मामले में मगध का व्यापारिक पूंजीवाद बाँझ ही साबित हुआ।"[105] व्यापारिक पूंजी का विकास और व्यापारिक पूंजीवाद का विकास दो अलग-अलग अवधारणायें हैं। मार्क्स के अनुसार "व्यापारिक पूंजी पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली से अधिक प्राचीन है, और वास्तव में, ऐतिहासिक दृष्टि से, वह पूंजी के अस्तित्व की प्राचीनतम स्वतंत्र अवस्था है।"[106] उत्पादन की आधुनिक प्रणाली अपने प्रथम चरण में केवल वहीं पनपीं, जहाँ मध्ययुग में उसके लिए भौतिक स्थितियाँ तैयार हो चुकी थीं। (Marx Engels-On Colonialism, Progress, Publisher, 1978)।

इस पूरे प्रसंग के माध्यम से मैं सिर्फ इतना कहना चाहता हूँ कि मध्ययुग में जातीय भाषाओं का विकास एवं जातीय गठन की प्रक्रिया तभी आरंभ हो सकी, जब उनके अनुकूल भौतिक स्थितियाँ निर्मित हुई। इसी तरह इसे आप संयोग या दुर्योग जो कहें, हिन्दी साहित्य में, हिन्दी भाषी प्रदेश में आधुनिकता के उदय की ऐतिहासिक परिस्थितियाँ और भौतिक आधारों का निर्माण अंग्रेजों के आगमन के बाद ही संभव हो सका। ऐसा कहकर अंग्रेजी राज की प्रगतिशीलता का गुणगान करना उद्देश्य नहीं है। मेरा स्पष्ट मानना है कि हिन्दी साहित्य में आधुनिकता अंग्रेजी राज के कारण नहीं अंग्रेजी राज के बावजूद आई है। व्यापारिक पूंजीवाद से जुड़े अन्य पहलुओं की चर्चा 'आधुनिकता के भौतिक आधार' वाले अध्याय में करेंगे।

रामविलास जी जिन तीन कारकों (व्यापारिक पूंजीवाद, जातीय भाषा का निर्माण और प्रसार तथा जाति का गठन) के आधार पर 19वीं सदी से काफी पहले आधुनिक-काल का आरंभिक बिंदु तलाशने निकलते हैं तो उनकी खोज 12वीं सदी पर जाकर समाप्त होती है। जाने को तो मगध-काल (कौटिल्य के समय) तक चले जाते हैं लेकिन जातीय गठन और जातीय भाषा के प्रसार का अभाव उन्हें 12वीं सदी से ही आधुनिक-काल का आरंभ मानने को विवश करता है। 12वीं सदी से आधुनिक काल का आरंभ मानने में कौन-कौन सी बातें अवरोधक हैं, इसका उल्लेख

---

[104] वीर भारत तलवार - सामना, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2005 (प्रथम संस्करण) पृ०सं० 74

[105] वीर भारत तलवार - सामना, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2005 (प्रथम संस्करण) पृ०सं० 79

[106] कार्ल मार्क्स- पूंजी, खण्ड-3, प्रगति प्रकाशन, मास्को, पी.पी.एच. हाउस (प्रा०) लिमिटेड पृ० सं० 283

किया जा चुका है। 12वीं सदी से आधुनिक-काल के आरंभ की अवधारणा से अपनी विनम्र असहमति दर्ज करते हुए, रामविलास जी के मत को ही दूसरे रूप में ज्यादा तर्कसंगत ढंग से स्वीकारा जा सकता है। जैसे हिन्दी साहित्येतिहास में आदिकाल में भक्तिकालीन काव्य के बीज मौजूद थे, भक्तिकाल में सूरदास और कुछेक अन्य कवियों में रीतिकालीन काव्य के सूत्र निहित थे, उसी तरह 12वीं सदी में पाये जाने वाले जातीय भाषाओं के विकास, जातीय गठन की प्रक्रिया और व्यापारिक पूंजीवाद के विकास को भी आधुनिक-काल के आगमन के पूर्व बीज रूप में मानना चाहिए, जिसकी पहचान 1857 ई० से आरंभ होने वाले 'हिन्दी नवजागरण' में होती है।

12वीं सदी से कहने का तात्पर्य यह नहीं कि जातीय गठन एवं जातीय भाषाओं के विकास और व्यापारिक पूंजीवाद का विकास 12वीं सदी में पूर्ण हो जाता है और 19वीं सदी में होने वाले हिन्दी नवजागरण के मध्य 700 वर्षों का अंतराल है। 12वीं सदी से आरंभ होने वाला भक्तिकाल 17वीं सदी (1643 ई०) तक जारी रहता है। ध्यान देने की बात है कि भक्तिकाल (1318-1643 ई०) के दौरान हिन्दी की जातीय भाषाओं का विकास होता है लेकिन जातीय भाषा के रूप में हिन्दी का गठन नवजागरण काल में ही होता है। इस दृष्टिकोण से देखने पर भक्तिकाल का अगला पड़ाव रीतिकाल का आगमन हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक ट्रेजेडी है, लेकिन यह एक ऐतिहासिक सच्चाई है।"[107] इस दिशा में अध्ययन की जरूरत अब भी बनी हुई है कि भक्तिकाल का अवसान किन कारणों से हुआ और रीतिकाल के उदय के क्या कारण रहे? उस संक्रमण बिन्दु (जहाँ भक्तिकाल समाप्त होता है और रीतिकाल आरंभ) के बाद सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक अवस्थायें क्या संकेत देती हैं? बजाय इन प्रश्नों के उत्तर देने के रामविलास जी इसे विचारणीय ही नहीं मानते हैं, उनका कहना है कि रीतिकाल "छोटी ट्रेजेडी है। असली और बड़ी ट्रेजेडी है, भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना। भारतीय पूंजीवाद का सहज वास्तविक विकास अवरुद्ध होता है अंग्रेजी राज में।"[108] उनका कहना सही है लेकिन इससे हिन्दी साहित्य में रीतिकाल की ट्रेजेडी क्यों होती है? इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता। शायद, इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिल पाने के कारण ही वह बीच की कड़ी छूटती नजर आती है, जिसके अभाव में हमारे सामने यह यक्ष प्रश्न खड़ा हो जाता है कि 'लोकजागरण' (भक्ति-काल) के दौर में जिस जातीय गठन और हिन्दी की जातीय भाषाओं का विकास होता है और जिसकी परिणति 1857 ई० से आरंभ होनेवाले 'हिन्दी

---

[107] मैनेजर पाण्डेय - साहित्य और इतिहास दृष्टि, अरुणोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1992 ई० पृ० सं० 174

[108] रामविलास शर्मा - भारतेन्दु हरिश्चंद्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, 2004 (छठी आवृति) पृ० सं० 32

नवजागरण' में होती है। इन दो चरणों के मध्य रीतिकाल के 200 वर्षों का अंतराल क्यों उपस्थित होता है?

जिस प्रकार यूरोप में सामान्यत: आधुनिकता के दो चरणों का उल्लेख मिलता है पहला चरण 15वीं - 16वीं सदी से आरंभ होने वाले पुनर्जागरण (रेनेसाँ) का और दूसरा 18वीं सदी से आरंभ होनेवाले ज्ञानोदय (एनलाइटेनमेंट) का। रामविलास जी ने भी हिन्दी साहित्य के संदर्भ में आधुनिकता के दो चरणों की ओर स्पष्ट संकेत किया है पहला 12वीं सदी से आरंभ होनेवाले लोकजागरण का और दूसरा 1857 से आरंभ होनेवाले हिन्दी नवजागरण का। मूल बात यह कि इन दोनों चरणों के जनजागरण का विशेष संबंध हिन्दी जाति, हिन्दी भाषा और हिन्दी प्रदेश से है, इसलिए यह 'हिन्दी नवजागरण' है।

हिन्दी साहित्य में 'आधुनिकता की अपनी सैद्धांतिकी के निर्माण में 'हिन्दी जाति' और 'हिन्दी नवजागरण' की अवधारणाएँ 'संदेह के बावजूद' मूल अवधारणाएँ (Key concepts) हैं, जिन पर विचार किये बिना इस सैद्धांतिकी पर मुकम्मल बात नहीं की जा सकती।

i) हिन्दी नवजागरण की अवधारणा और हिन्दी साहित्य

"यदि तुम महसूस करते हो कि तुम्हारे पास लंबे समय तक कहीं अपना ठौर बना लेने, स्वाभाविक परिवेश और देशज मुहावरे की सुख-सुविधा नहीं है और तुम्हें किसी तरह इन चीजों की भरपाई करनी है तो उन हालात में जो कुछ तुम लिखते हो उसमें जरूरी तौर पर तुम्हारी बेचैनियों का एक अनोखा भार, विस्तार और शायद अतिकथन भी होगा-निश्चय ही वे सब चीजें, जिन्हें आधुनिकता (और अब उत्तर आधुनिकता) के सुविधापूर्ण और व्यवस्थित पाठ व आलोचना ने या तो समझा ही नहीं है या उसकी अनदेखी की है।"[109] - एडवर्ड डब्ल्यू० सईद 'रिफ्लेकशंस ऑन एक्साइल'

रामविलास जी ने आजादी के 30 वर्ष बाद 1977 ई० में 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' नामक अपनी पुस्तक में 'हिन्दी नवजागरण' की अवधारणा प्रस्तुत की। संभवत: 'हिन्दी नवजागरण' की यह अवधारणा 'बंगला नवजागरण' से हिन्दी में आई हो (सुशोभन सरकार ने 'बेंगाल रिनेसाँ एंड अदर एजेज' नामक पुस्तक 1970 ई० में लिखी थी)

---

[109] पहल - अंक - 77, संपादक- ज्ञानरंजन, पृ०सं० 191

यूरोप में आधुनिकता के दो चरणों पुनर्जागरण (रिनैसांस) और ज्ञानोदय या प्रबोधन (एनलाइटेनमेंट) की बात की जाती है। नवजागरण जैसा कोई शब्द यूरोपीय संदर्भ में प्रयुक्त नहीं होता जैसे 'रिनैसांस' या 'इनलाइटेनमेंट' का देखने में मिलता है। "विल ड्यूराँ ने '*द रिनैसैंस*' में लिखा है कि सोलहवीं शताब्दी में इटली में नये पुत्र को -ला रिनास्विता (पुनर्जन्म) कहा गया। अंग्रेजी में 'रिनैंसा' शब्द फ्रेंच में 'रॅनैसान्स' से आया। फ्रांस में 'रेनैसान्स' का प्रयोग अठारहवीं सदी में हुआ। सर्वप्रथम जैकब बर्कहार्ट ने '*दि सिविलाइजेशन ऑफ रेनिसाँस इन इटली*' (1860) में 'रैनैसाँ' के इतिहास पर प्रकाश डाला। यूरोप में 'अंधकार युग' के बाद 'रेनैसाँ' आया, पर भारत में उन्नीसवीं सदी के नवजागरण के पूर्व कोई अंधकार काल नहीं था। यूरोप में रेनैसाँ ने प्राचीन रोम और यूनान से अपनी वैचारिक प्रेरणा प्राप्त की थी। भारत के नवजागरण और यूरोप के नवजागरण में अंतर है। यहाँ नवजागरण तब आया, जब भारत पराधीन हो चुका था। यूरोप में ऐसी स्थिति नहीं थी। ... उन्नीसवीं सदी के भारतीय नवजागरण में राष्ट्रीय भावना प्रमुख थी।"[110] यहाँ जिस यूरोपीय नवजागरण की बात की जा रही है, वस्तुतः वह ज्ञानोदयकालीन यूरोप की बात है और 'बेंगाल रेनेसाँ' का जो हिन्दी तर्जुमा 'बंगला नवजागरण' नाम से मिलता है, वह बंगला नवजागरण भी ज्ञानोदय काल (एनलाइटेनमेंट इरा) वाले यूरोप को अपना मॉडल मानता है।

रामविलास जी के यहाँ चार संज्ञाएँ देखने को मिलती थीं लोकजागरण, जनजागरण, पुनर्जागरण और नवजागरण। बाद में नवजागरण सब पर भारी रहा। बकौल प्रदीप सक्सेना "मैंने पूछा था (रामविलास जी से), आखिर आप 'नवजागरण' का अंग्रेजी स्थानापन्न क्यों नहीं देते हैं? बताइए उसका 'इक्विवेलेंट' क्या है? उन्होंने कहा - "यह किसी शब्द के समकक्ष नहीं है।"[111] उनके समूचे लेखन-कर्म में केन्द्रीय महत्व रखनेवाली इस अवधारणा (हिन्दी नवजागरण) के सबसे महत्वपूर्ण पहलू हैं: भारतेन्दु युग की साहित्यिक गतिविधियों को हिन्दी क्षेत्र के सांस्कृतिक नवजागरण का नाभिक निरूपित करना, इस नवजागरण का संबंध बंगाल के प्रभाव से जोड़ने का खंडन करते हुए इसका संबंध 1857 के स्वाधीनता संग्राम से जोड़ना।"[112] उनके अनुसार भारतेन्दु-युग हिन्दी नवजागरण का दूसरा चरण है, द्विवेदी-युग तीसरा और छायावाद चौथा चरण है।"[113]

---

[110] रविभूषण - रस्साकशी - इक्कीसवीं सदी में हिन्दी नवजागरण पर बहस, पहल, अंक 73 संपादक-ज्ञानरंजन, पृ०सं० 211-212

[111] प्रदीप सक्सेना-मार्क्सवादी आलोचना और रामविलास शर्मा के मूल्यांकन की समस्याएँ आलोचना, सहस्त्राब्दी अंक-पांच, अप्रैल-जून 2001, पृ०सं० 100

[112] पुरुषोत्तम अग्रवाल - भारतेन्दु और रामविलास शर्मा के भारतेन्दु, आलोचना, वही, पृ० सं० 102

[113] मैनेजर पाण्डेय - साहित्य और इतिहासदृष्टि, अरुणोदय, प्रकाशन, दिल्ली, 1992 ई० पृ०सं० 190

रामविलास जी के अनुसार 1857 ई० से आरंभ होनेवाले 'हिन्दी नवजागरण का अगला चरण है भारतेन्दु-काल। "भारतेन्दु हरिश्चंद्र और उनके समकालीन लेखकों को 1857 से जोड़नेवाली दो मुख्य चीजें हैं : (1) राष्ट्रीय स्वाधीनता का उद्देश्य और (2) अंग्रेजी राज के स्वरूप की पहचान।"[114] ऐसी स्थिति में देखना आवश्यक जान पड़ता है कि "1857 के स्वाधीनता संग्राम और हिन्दी नवजागरण के बीच क्या संबंध था? क्या सचमुच भारतेन्दु युग 1857 के साम्राज्य-विरोधी जागरण से जुड़ा हुआ है? क्या सचमुच हिन्दी नवजागरण 1857 में व्यक्त जनजागरण की ही अगली ऐतिहासिक अवस्था है? क्या सचमुच हिन्दी नवजागरण 1857 की राजनीति और उसकी संवेदना से प्रेरणा लेता है?"[115]

रामविलास जी का मानना है कि "1857 की स्वाधीनता संग्राम का चरित्र असांप्रदायिक और राष्ट्रीय था और राजसत्ता की मूल समस्या सामंतों के नहीं जनता के हित में हल की गई थी।"[116] जबकि भारतेन्दु-काल में यह असांप्रदायिक चरित्र बना नहीं रह सका। "1868 ई० में नागरी अक्षरों की सरकारी स्वीकृति के बाद सर सैय्यद अहमद को निश्चय हो गया कि 'अब हिन्दू और मुसलमान साथ नहीं रह सकते'; दूसरी ओर प्रतापनारायण मिश्र का यह कथन हिन्दी नवजागरण की भाषा संबंधी चिंता को बहुत सटीक ढंग से व्यक्त करता है। 'हिन्दी का पूर्ण प्रचार हुए बिना हिन्दुओं का उद्धार असंभव है।"[117] यह मानसिक बदलाव भारतेन्दु काल में क्यों होता है?

1857 के हिन्दू-मुस्लिम एकता को अपने साम्राज्य के लिए खतरा मानते हुए अंग्रेजी राज ने 'फूट डालो और शासन करो' की नीति अपनाते हुए, सांप्रदायिकता के बीज बोये। पूरे हिन्दू या मुस्लिम कौम की बातों और मांगों को सुनना, अंग्रेजों के लिए व्यावहारिक तौर पर संभव नहीं था। अतः इन कौमों से उन्होंने प्रतिनिधि चुन लिये। सर सैयद अहमद मुस्लिमों के प्रतिनिधि बने। "अंग्रेजों ने इस भेद को (और) गहरा किया। गिलक्रिस्ट ने हिन्दुओं और मुसलमानों की अलग भाषाओं के सिद्धांत की रचना की। रिज्ले ने धर्म के आधार पर दो कौमे गढ़ी और ग्रियर्सन ने भाषा और संस्कृति के क्षेत्र में फूट के उसूल को धार्मिक रूप दिया, सर सैयद ने लश्करों में

---

[114] रामविलास शर्मा - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, (छठी आवृति) पृ०सं० 13

[115] पुरुषोत्तम अग्रवाल- विचार का अनंत, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2000 ई० पृ०सृ० 21

[116] रामविलास शर्मा - महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली, 1989 (द्वितीय संस्करण), पृ०सं० 9

[117] पुरुषोत्तम अग्रवाल - विचार का अनंत, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2000 ई०, पृ०सं० 28

नई भाषा बनने की तजवीज पेश की। इकबाल ने मुस्लिम कौम और मुस्लिम संस्कृति का नारा लगाया। ये सब साम्राज्यवादी विषवृक्ष के फल थे।"[118]

1857 के स्वाधीनता संग्राम और भारतेन्दु-युग के मध्य अंतर इतना ही नहीं था। "1857 की राजनीति का मूल स्वर यदि 'सचेत वैरभाव (concious hostility) का था तो हिन्दी नवजागरण की राजनीति के मूल स्वर 'सचेत राजभक्ति - (concious loyality) का था।"[119] "1857 के बाद की स्थिति बुनियादी रूप से भिन्न थी। बंगाल, महाराष्ट्र की तरह हिन्दी क्षेत्र में भी पारम्परिक बौद्धिक वर्ग की जगह नए बुद्धिजीवी ने ली। इस नए बुद्धिजीवी, शिक्षित समुदाय के सभी प्रतिनिधियों के मन में अंग्रेजी राज का जो मूल्यांकन था, वह 1857 के नेताओं के मूल्यांकन से सर्वथा भिन्न था.... नवजागरणकालीन बुद्धिजीवी ने स्वत्व को 1857 में व्यंजित दृष्टि से नहीं, उससे पहले के वर्चस्व -संघर्षों के मुहावरे में परिभाषित किया। इस मुद्दे पर बंकिमचंद्र, भारतेन्दु, सर सैयद और जोतिबा फूले के बीच कोई बुनियादी पद्धतिगत अंतर नहीं है। (जोतिबा फूले के लिए अंग्रेज 'शूद्रों' के संरक्षक थे, तो भारतेन्दु के लिए 'मुसलमानों के कठिन दंड' से छुड़ानेवाले। उधर 1877-78 में रूस-तुर्की युद्ध के संदर्भ में सर सैयद अहमद भारतीय मुसलमानों से आग्रह कर रहे थे कि वे खलीफा को नहीं, बल्कि, अंग्रेजों को 'इस्लाम के संरक्षक' के रूप में देखें।) अंग्रेजी राज इन सबके लिए न केवल वास्तविकता है बल्कि ऐसा सुअवसर भी जिसका उपयोग अपने-अपने स्वत्व के विकास के लिए किया जा सकता है। भारतेन्दु ही नहीं, उनके समकालीन सभी बुद्धिजीवी निस्संदेह अंग्रेजी राज की आलोचना भी करते हैं, लेकिन वह आलोचना अंग्रेजों की न्याय-बुद्धि तथा अंग्रेजी राज की वैधता पर विश्वास रखते हुए की जा रही आलोचना है।"[120]

"पारंपरिक वर्गों से संबद्ध 1857 के विद्रोहियों के विपरीत हिन्दी (या बांग्ला या मराठी) नवजागरण के नेताओं तथा उनके लक्ष्यीभूत श्रोता / पाठक (ऑडिएंस) का संबंध नए मध्यवर्ग से था। इस मध्यवर्ग का उदय चुनौतियों का सामना करते हुए, जोखिम उठाकर हुआ था जबकि भारतीय मध्यवर्ग का उदय सरकारी नौकरियों के द्वारा हुआ था। इस मध्यवर्ग के पास आरंभ में आत्मबोध और देश-दशा की व्याख्या करने के लिए एक ओर औपनिवेशिक प्रतिमान थे, दूसरी ओर परंपरा की विरासत। इन्हीं के मध्य से एक तीसरा मार्ग निकला, जिससे राष्ट्रवादी और राष्ट्रीयता संबंधी सोच भी विकसित हुई। "इसमें दोहरा निषेध था एक ओर तो वर्चस्ववादी

---

[118] रामविलास शर्मा - भारत की भाषा समस्या, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली 1989 ई० पृ० सं० 88

[119] पुरुषोत्तम अग्रवाल - विचार का अनंत, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2000 ई० पृ० सं० 26

[120] पुरुषोत्तम अग्रवाल - भारतेन्दु और रामविलास शर्मा के भारतेन्दु, पृ०सं० (106-107) आलोचना-सहस्त्राब्दी अंक-पांच, अप्रैल-जून-2001, संपादक, परमानदं श्रीवास्तव

औपनिवेशिक प्रतिमानों का निषेध था, दूसरी ओर विकास के राह में रोड़े अटकाने वाले अस्मिता के प्राचीन चिह्नों को भी नकारा गया।"[121] भारतेन्दु काल में उपनिवेश विरोधी चेतना धीरे-धीरे आकार ग्रहण कर रही थी। भारतेन्दु से ज्यादा प्रखर रूप में यह चेतना बालकृष्ण भट्ट में मौजूद थी। रामविलास जी इसका विकास द्विवेदी-काल से होता हुआ छायावाद तक देखते हैं।

रामविलास जी ने 1857 से छायावाद तक चार चरणों में जिस 'हिन्दी नवजागरण' की अवधारणा प्रस्तावित की है। यह अवधारणा महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ अत्यन्त विवादास्पद भी रही है, इसलिए लगातार प्रश्नों से घिरी भी रही है। रामविलास जी ने 'हिन्दी नवजागरण' के चार चरणों 1857 का आंदोलन, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी और छायावाद (निराला) पर अत्यंत विस्तार से लिखा है लेकिन इसी 'तर्ज पर गालिब, हाली, नजीर या इकबाल पर इतने विस्तार से कुछ नहीं लिखा।

1857 के आंदोलन का असांप्रदायिक चरित्र भारतेन्दु-युग तक अपने स्वरूप को बनाये नहीं रख सका। अंग्रेजी राज के मातहत अपने-अपने कौमों की तरक्की के लिए स्पष्ट विभाजन सांप्रदायिक आधार पर हुआ। हिन्दी नवजागरण के साथ हिन्दी जाति की अवधारणा भी जुड़ी हुई है। यहाँ जाति 'नेशन' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और इस जातीयता 'नेशनालिटी' के मूल में हिन्दू और मुसलमान के मध्य सांप्रदायिक विभाजन भी एक ऐतिहासिक सच्चाई है। वसुधा डालमिया *(दी नेशनलाइजेशन ऑफ हिन्दू ट्रेडिसन्स: भारतेन्दु हरिश्चंद्र एंड नाइनटींथ सेंचुरी बनारस, ओ॰यू॰पी॰ 1997)*, *फ्रेंचेश्का (हिन्दी पब्लिक स्फियर: (1920-1940)*, और आलोक राय *(हिन्दी नैशनलिज्म, 2001)* में इसी सांप्रदायिक आधार पर हिन्दी नवजागरण को 'हिन्दू नवजागरण' में न्यूनीकृत करने की कोशिश है। हिन्दी साहित्य में इस मानसिकता का प्रचार प्रसार वीर भारत तलवार कर रहे हैं। इनका कहना है कि "नागरी लिपि, हिन्दी भाषा और गोरक्षा- इन्हीं तीनों में 19वीं सदी के 'हिन्दी नवजागरण' के प्राण बसते थे।"[122] इसी के समान प्रकृति (nature) के तर्क का इस्तेमाल 'हिन्दू नवजागरण' के बरक्स 'मुस्लिम नवजागरण' की छवि निर्मित करने के लिए की जा रही है। पॉल ब्रॉस (लैंग्वेज रिलीजियन एंड पॉलिटिक्स इन नार्थ इंडिया, कैम्ब्रिज यूनिसर्विटी) और

---

[121] Partha Chatterjee – Nationalist Thought and the colonial World A. Derivative discourse. Oxford University Press, 1996. Pg. no. 2

In fact, two rejections; rejection of the alien intrudder and dominator, and rejection of ancestral ways which are seen as obstacles to progress and yet also cherished as marks of identity.

[122] वीर भारत तलवार - राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' और हिन्दी नवजागरण

तद्भव-अंक-7, अप्रैल, -2002, अखिलेश (संपादक), पृ॰सं॰ 36

फ्रांसिस रॉविन्सन (इस्लाम एंड मुस्लिम हिस्ट्री इन साऊथ एशिया, 2000) ने अपनी उपर्युक्त पुस्तकों में 19वीं सदी में अलग मुस्लिम अस्मिता के निर्माण के कोशिशों और परिणामों की चर्चा की है। 'वीर भारत तलवार ने (भी) 'रस्साकशी' (2002 ई०)' में भूमिका से लेकर बीच-बीच में कई जगहों पर 'मुस्लिम नवजागरण' की बात कही है।"[123]

'हिन्दी नवजागरण' को 'हिन्दू नवजागरण' और 'मुस्लिम नवजागरण' में बांटकर देखनेवाली दृष्टि को एक ही झटके में खारिज नहीं किया जा सकता। 'हिन्दू नवजागरण' और 'मुस्लिम नवजागरण' की इन अवधारणाओं को हिन्दी नवजागरण से स्वतंत्र ओर स्वायत्त रूप में देखने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि इन दोनों को 'हिन्दी नवजागरण' की अंतर्धाराओं के रूप में देखने की जरूरत है। क्योंकि अपने 'स्वत्व', 'आत्म', 'अस्मिता', कुछ भी कह लें, के निर्माण के क्रम में यह (हिन्दू-मुस्लिम) जिस चेतना से 'लैस' हो रहे थे, यह अंततः 'हिन्दी नवजागरण' की अवधारणा की ही पुष्टि करता है। हिन्दी नवजागरण का संबंध सिर्फ हिन्दी भाषा और हिन्दी जाति से नहीं हिन्दी प्रदेश से भी है और जब उनके निवासी (चाहे हिन्दू हो या मुसलमान) नवजागरणकालीन चेतना से प्रभाव ग्रहण कर रहे होते हैं तो एक दूसरे के प्रति द्वेष की भावना रखने के साथ-साथ अपने समुदाय के उत्थान के लिए भी उसी समय प्रयत्नशील रहते हैं। सामुदायिक स्पर्धा के इस भाव में इस बात का कहाँ खंडन होता है कि उस प्रदेश का और उसमें रहनेवाली जाति का उत्थान नहीं होता है। इसलिए समुदाय और प्रदेश का विकास हिन्दी नवजागरण की अवधारणा को पुष्ट ही करता है।

इस पूरे बहस में इस बात का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है कि 'हिन्दी नवजागरण' पर बात करते हुए मुख्यतः संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) और भारतेन्दु-युग को ही केन्द्र में रखा गया है। जबकि हिन्दी भाषी प्रदेश अब 10 हैं (झारखंड, बिहार, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, हरियाणा, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश एवं राजस्थान) और हिन्दी नवजागरण की अवधारणा 'भारतेन्दु-युग' तक सीमित नहीं है, उसका प्रसार स्वयं रामविलास जी छायावाद (1936 ई०) तक मानते हैं।

रामविलास जी ने 'हिन्दी नवजागरण' की जिन समस्याओं की ओर संकेत किया था। वह उनके चिन्तन और विचारों के अंतर्विरोध का परिणाम था। इसलिए वह समस्या 'हिन्दी नवजागरण' की कम और उनके विचार पद्धति की ज्यादा थी।

---

[123] रविभूषण - रस्साकशी-इक्कीसवीं सदी में हिन्दी नवजागरण पर बहस, पहल-अंक 73, ज्ञानरंजन (संपादक), पृ०सं० 206

'भारतेन्दु और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ' नामक पुस्तक के पहले संस्करण (1953 ई०) में रामविलास जी ने कहा था कि भारतेन्दु हिन्दी की जातीय परंपरा के संस्थापक हैं।"[124] लेकिन आगे चलकर जब उनके विचारों में बदलाव आये और 12वीं सदी में वे जातीय गठन, जातीय भाषाओं का विकास और व्यापारिक पूंजीवाद को देखने लगे तो उनके सामने यह समस्या आ खड़ी हुई कि "हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल यदि भारतेन्दु से शुरू होता है तो हिन्दी जाति के निर्माण काल का आरम्भ कब से मानें? यदि हिन्दी जाति का निर्माण भारतेन्दु से पहले होता है तो उसे भी हम आधुनिक क्यों न मानें?[125] परिणाम, इस वैचारिक संशोधन के रूप में सामने आया कि "भारतेन्दु हिन्दी की जातीय परम्परा के संस्थापक हैं। यह बात साहित्य की साम्राज्य विरोधी धारा के संदर्भ में सही है किन्तु हिन्दी जाति और उसकी संस्कृति अंग्रेजी राज कायम होने के पहले यहाँ विद्यमान थी।"[126] इसलिए "भारतेन्दु युग उत्तर भारत में जनजागरण का पहला या प्रारंभिक दौर नहीं है, वह जनजागरण की पुरानी परंपरा का एक खास दौर है।"[127]

रामविलास जी का संपूर्ण लेखन अंग्रेजी राज की प्रगतिशील भूमिका स्वीकारने से अपनी तीव्र असहमति व्यक्त करता है। अंग्रेजी-राज की आलोचना करते हुए वे अक्सर इस मोटी बात की अनदेखी करते हैं कि सत्ता और व्यवस्था के मध्य निकटता और दूरी दोनों होती है। मतलब यह कि ब्रिटिश सत्ता ने जिस पूंजीवादी व्यवस्था की सृष्टि की थी उसने भारत का आर्थिक दोहन करने के साथ-साथ मुक्ति की चेतना का निर्माण और मुक्ति की मानसिकता का प्रचार भी किया था। शायद इसी कारण वीर भारत तलवार कहते हैं "डॉ० शर्मा एक मार्क्सवादी आलोचक के रूप में मशहूर हैं लेकिन वे मार्क्स के इस विचार से सहमत नहीं लगते कि भारत में ब्रिटिश शासन भले ही अपने निकृष्ट स्वार्थों से प्रेरित था लेकिन भारत में एक सामाजिक क्रांति लाने का वह एक माध्यम बन गया।"[128]

जरूरत इस बात की है कि 'हिन्दी नवजागरण' से जुड़ी हुई समस्याओं का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन हो। 'हिन्दी नवजागरण' की समस्याओं की ओर स्वयं रामविलास जी ने संकेत किया था अपनी पुस्तक *'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, (1984 ई०)* में। 'हिन्दी नवजागरण की समस्याओं पर आगे चलकर

---

[124] रामविलास शर्मा- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, 2004, पृ०सं०-7

[125] वही, पृ०सं० 8

[126] वही, पृ०सं० 7

[127] वहीं, पृ०सं० 13

[128] वीर भारत तलवार - सामना, वाणी प्रकाशन, 2005, (प्रथम संस्करण), पृ०सं० 254

नामवर सिंह, मैनेजर पाण्डेय, पुरुषोत्तम अग्रवाल, वीर भारत तलवार, कर्मेन्दु शिशिर और शंभुनाथ ने संकेत किया। इनसे जो कुछेक बातें निकलकर आयी, उस ओर शोध की संभावनाएँ बनी हुई है। कुछेक महत्वपूर्ण प्रश्न हैं - "उर्दू भाषा साहित्य से हिन्दी नवजागरण का क्या संबंध है?... बंगला और महाराष्ट्र नवजागरण की तुलना में हिन्दी नवजागरण की स्थिति कैसी है? भारतेन्दु को सामंतवाद विरोधी के रूप में प्रस्तावित करने पर सामंतवाद का स्पष्टीकरण कि यदि सामंतवाद से मतलब भू-स्वामित्व और उत्पादन की पूरी प्रणाली है तो इस प्रणाली पर भारतेन्दु के विचार क्या थे? हिन्दी-नागरी और उर्दू भाषा-लिपि का विवाद, धर्म के साथ भाषा-लिपि और देशभक्ति का संबंध, गो-हत्या की समस्या, नौकरियों में हिन्दू-मुसलमानों का अनुपात, अंग्रेजी राज में हिन्दू-मुसलमानों का बदल रहा शक्ति-संतुलन और मुगलकालीन इतिहास की स्मृतियाँ तथा उसका मूल्यांकन। इन मुद्दों पर भारतेन्दु का उनकी मंडली के और लोगों का, द्विवेदी युग के लेखकों का, क्या दृष्टिकोण था?.... हिन्दी नवजागरण की अभिव्यक्ति के क्षेत्र कौन-कौन से हैं? 'हिन्दी नवजागरण' लाने वाले लोगों का उत्पादन के साथ क्या संबंध था? उसकी नवीन चेतना का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ क्या था? किसानों, मजदूरों, अछूतों और स्त्रियों के आंदोलनों के प्रति नवजागरण के नेताओं का रवैया कैसा था? हिन्दी नवजागरण के अंदर क्या एक से अधिक धाराएँ थीं? हिन्दी नवजागरण सिर्फ शहरी शिक्षित मध्यवर्ग तक सीमित रहा या समाज के देहाती इलाकों और निम्नवर्गों तक भी पहुँचा?"[129]

इन सवालों में से कई की चर्चा हम कर चुके हैं और और बचे हुए कुछ प्रश्नों पर आगे के अध्यायों में यथावसर विचार करेंगे। यहाँ 'बंगला नवजागरण' और 'मराठी नवजागरण' के बरक्स 'हिन्दी नवजागरण' को रखकर यह देखने की कोशिश की जा रही है कि 'हिन्दी नवजागरण' की अपनी विशिष्टताएँ कौन-कौन सी थी? और 'भारतीय नवजागरण' की अवधारणा में 'हिन्दी नवजागरण' क्या कुछ जोड़ती है?

इन प्रश्नों पर दो तरीकों से विचार किया जा सकता है। पहला हम हिन्दी, मराठी, बंगला और अन्य क्षेत्रों के नवजागरण से जोड़कर बननेवाली भारतीय नवजागरण को विश्वव्यापी नवजागरण के समक्ष रखकर देखें और दूसरा 'विश्वव्यापी नवजागरण' की विशेषताओं को सामने रखकर भारतीय नवजागरण या अन्य क्षेत्रों के नवजागरण को रखकर देखें। हम दूसरे तरीके वाली पद्धति से विचार करना संगत समझते हैं।

---

[129] वीर भारत तलवार - सामना, वाणी प्रकाशन, 2005 (प्रथम संस्करण), पृ० सं० - (252-259) हिन्दी नवजागरण अध्ययन की समस्याएँ, लेख से।

"विश्वव्यापी नवजागरण में कुछ ऐसे यूरोपीय तत्व व्यापकता से शामिल रहे हैं, जिन्हें उस दौर तक की मनुष्य जाति का महानतम अनुभव कहा जाता है। उन तत्वों में कुछ हैं - सामंतवाद, मध्यकालीनतावाद और धार्मिक सत्ता के कठोर नियंत्रण से छुटकारा, वैयक्तिक्ता की पहचान, मोक्ष की धारणाओं से मुक्त होकर भौतिक दुनिया के महत्व की समझ, वैज्ञानिक जिज्ञासा, सचेत रूप से समाज सुधार के प्रयास, बुद्धिमता का धमाका, प्रशासनिक-न्यायिक सुधार, लगातार प्रगति का सिद्धांत, एक नई जीवन शैली, एक नई संस्कृति और एक नई दुनिया की ओर प्रयाण। नवजागरण के इन अभिप्रायों के संबंध में यह नहीं कहा जा सकता कि ये वैश्विक उपलब्धियाँ नहीं है, सिर्फ यूरोपीय मानवता की विरासत है।"[130] इस विश्वव्यापी नवजागरण में जिन यूरोपीय तत्वों की प्रधानता थी वे तत्व भी मूलत: ब्रिटेन और फ्रांस से ज्यादा संबद्ध थे।

हम जिस 'भारतीय नवजागरण' की बात करते हैं, उसका स्वरूप बंगला, तमिल, महाराष्ट्र हिन्दी और अन्य प्रादेशिक नवजागरण की विशिष्टताओं से मिलकर बना है। इन नवजागरणों के व्याख्याकार अपने-अपने जातीय सामाजिक जागरण को लेकर अहम्मन्यता से पीड़ित हैं और उसकी विशिष्टता से बाहर कुछ भी देखना नहीं चाहते परिणामत: इनकी आंतरिक सीमाओं का उद्घाटन भी संभव नहीं हो सका है। "पिछले 50 सालों के नवजागरण विवाद में मुख्यत: उभरकर यह आया है कि बंगला नवजागरण का केन्द्रीय सारतत्व बुद्धिवाद है (राजा राममोहन राय), जबकि हिन्दी नवजागरण का केन्द्रीय सारतत्त्व राष्ट्रवाद है (1857 का पहला स्वाधीनता संग्राम)। महाराष्ट्र नवजागरण का केन्द्रीय सारतत्त्व दलित चेतना (ज्योतिबा फूले) और सुधारवाद (रानाडे) है। तमिल नवजागरण का केन्द्रीय सारतत्त्व द्रविड़ चेतना है (नायकर -पेरियार) इसी तरह केरल नवजागरण का केन्द्रीय सारतत्त्व दलित चेतना (नारायण गुरू) है।" नवजागरण की इन परम्पराओं में राष्ट्रीय आत्मपहचान के संघर्ष को पहचानते हुए स्थानीय 'थ्रस्ट' की अनदेखी एक भूल होगी।"[131] लेकिन इस स्थानीय 'थ्रस्ट' को ही इन नवजागरणों की विशिष्टता के तौर पर प्रस्तावित (प्रोजेक्ट) करने पर इन नवजागरणों के प्रति सही समझ विकसित नहीं हो पाती। मसलन् बंगला नवजागरण की ही बात करें तो "19वीं सदी की शुरूआत में यूरोपीय नवजागरण ही बंगाल नवजागरण का मॉडल बना हुआ था और 'बंगला नवजागरण' को ही भारत में नवजागरण का असली रूप समझा जाता था। बंगला नवजागरण के

---

[130] शंभुनाथ - हिन्दी नवजागरण की अवधारण सन्देह के बावजूद, आलोचना सहस्त्राब्दी अंक-पांच अप्रैल-जून-2001 परमानंद श्रीवास्तव (संपादक), पृ०सं० -51

[131] शभुनाथ- हिन्दी नवजागरण की अवधारणा : सन्देह के बावजूद, आलोचना सहस्त्राब्दी अंक-पांच अप्रैल-जून-2001, संपादक-परमानंद श्रीवास्तव, पृ०सं० 51-52

अधिकांश व्याख्याकार भारत में अंग्रेजी राज की प्रगतिशील भूमिका देखते थे।"[132] बंगला नवजागरण के व्याख्याकारों पर औपनिवेशिक शिक्षा और प्राच्यविद्यावाद (ओरियंटलिज्म) का इतना असर था कि "1857 तक का बंगला नवजागरण भारत के एक छोटे-से हिस्से और वर्ग में सामाजिक गतिशीलता लाकर भी वस्तुत: औपनिवेशिक उद्देश्यों को ही पूरा कर रहा था।"[133] उस 'बुद्धिवाद' के भी दो रूप बंगला नवजागरण में देखने को मिलते हैं, एक जो अंग्रेजी राज की प्रगतिशीलता में विश्वास रखता था और दूसरा जो इस प्राच्यविद्यावाद (ओरियंटलिज्म) के खंडन की प्रतिदृष्टि विकसित कर रहा था। दूसरी बात यह कि "जिस रहस्यवाद (रवीन्द्रनाथ ठाकुर) को हिन्दी नवजागरण पर बंगला के प्रभाव के रूप में निरूपित किया जाता है, वह भी एक तरह से समूचे भारतीय नवजागरण का अभिन्न अंग है।"[134]

बुद्धिवाद और रहस्यवाद परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ हैं और दोनों 'बंगला नवजागरण' और 'हिन्दी नवजागरण' (छायावाद) में समान रूप से अस्तित्वमान रही हैं, तो सिर्फ इसलिए कि 'बुद्धिवाद' यूरोपीय नवजागरण की प्रमुख विशेषता है और रोल मॉडल यूरोपीय नवजागरण रहा है इसलिए 'बुद्धिवाद' को बंगला नवजागरण की प्रमुख विशेषता के तौर पर प्रस्तावित किया जा सकता है चाहे वास्तविकता कुछ भी हो!

"वास्तविकता यह है कि भावबोध और विचारबोध की दृष्टि से समूचा भारतीय नवजागरण एक संश्लिष्ट प्रक्रिया है जिसमें बौद्धिकता के साथ भावुकता है, ऐतिहासिकता के साथ आमुष्मिकता भी है और यथार्थवाद के साथ ही रहस्यवाद के भी तत्व घुले-मिले हैं। यूरोप के 'एनलाइटेनमेंट' अथवा 'ज्ञानोदय' दौर के विचारकों से प्रेरणा लेने के बावजूद भारत का उन्नीसवीं शताब्दी का नवजागरण नितांत बुद्धिवादी न हो सका, क्योंकि स्वयं यूरोपीय 'ज्ञानोदय' भी इतना इकहरा न था। अन्तर्विरोध इस नवजागरण की प्रक्रिया में भी थे और कहने की आवश्यकता नहीं कि यह अनिवार्यत: नवजागरण की दुर्बलता नहीं बल्कि एक तरह से उसकी समृद्धि का सूचक है।"[135]

---

[132] वही, पृ०सं० 59

[133] वही, पृ०सं० 61

[134] नामवर सिंह - हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, नामवर संचयिता- नंदकिशोर नवल (संपादक), राजकमल प्रकाशन, 2003, पृ०सं० 408

[135] नामवर सिंह - हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, नामवर संचयिता - नंदकिशोर नवल, संपादक), राजकमल प्रकाशन, 2003, पृ०सं०-408

हिन्दी नवजागरण पर 'बंगला नवजागरण' और 'मराठी नवजागरण' का प्रभाव स्वीकार लेने मात्र से 'हिन्दी नवजागरण' हेय नहीं हो जाता। हिन्दी नवजागरण पर बंगला और मराठी नवजागरण का प्रभाव मात्र है, यह उसका परिणाम नहीं है या अनुकरण करके विकसित नहीं हुआ है। प्रभाव ग्रहण करने की भी वजह यह है कि अंग्रेजी राज में कलकता, मुंबई और मद्रास ये तीनों ही प्रेसीडेन्सी बन चुकी थी, हिन्दी भाषी प्रदेशों में कोई बड़ा धर्म सुधारक या समाज सुधारक नहीं हुआ। जबकि बंगाल में ब्रह्म समाज (राजाराममोहन राय), प्रार्थना समाज (रानाडे) के अलावा देवेन्द्रनाथ ठाकुर, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, विवेकानन्द, केशवचंद्र सेन जैसे व्यक्ति हुए। महाराष्ट्र में तिलक तो मद्रास में थियोसेफिकल सोसाइटी की स्थापना हुई। हिन्दी क्षेत्र में धर्म सुधार और समाज सुधार का दायित्व भी हिन्दी साहित्यकार ही उठाये हुए थे। कारण क्या रहे? इसकी जड़ें जितनी प्रतिकूल राजनीतिक परिस्थिति में है उतनी ही हिन्दी प्रदेश के विलम्बित नवजागरण में।"[136]

"बंगाल और महाराष्ट्र की तुलना में हिन्दी प्रदेश में अंग्रेजी शिक्षा बाद में आई। कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में जहाँ 1857 में विश्वविद्यालय खुले, वहाँ हिन्दी प्रदेश का पहला विश्वविद्यालय -इलाहाबाद विश्वविद्यालय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के निधन के दो वर्ष बाद - 1887 में खुला।"[137]

"शिक्षा का प्रश्न हिन्दी प्रदेश के लिए बड़ा प्रश्न था। यह सभी को पता है कि पचास के दशक तक प्रायः सभी नौकरियों में बंगालियों की संख्या अधिक थी। इसका एकमात्र कारण यह था कि उन्होंने सबसे पहले शिक्षा प्राप्त की, जिससे उन्हें नौकरियाँ प्राप्त हुई।"[138] फलतः एक मध्यवर्ग भी विकसित हुआ जो आंरभिक दौर में तो अंग्रेजों की सेवा-टहल करता रहा लेकिन शीघ्र ही एक स्वतंत्र एवं स्वायत्त चेतना का विकास उनमें हुआ।

शिक्षा के कारण, "हिन्दी की तुलना में बंगला और मराठी गद्य का विकास चार-पांच दशक पहले हो गया तो इसलिए कि वहाँ नवजागरण भी पहले हुआ। बंगला को उन्नीसंवी शताब्दी के मध्य में ही ईश्वरचंद्र विद्यासागर मिल गये और उत्तरार्ध से पहले बंकिमचंद्र, फिर रवीन्द्रनाथ। मराठी एक तो मराठा राज के जमाने से ही राजकाज की भाषा थी, दूसरे 1840 तक मराठी माध्यम से शिक्षा देनेवाले सत्तावन स्कूल खुल गये थे। इसके अतिरिक्त मराठी का मानक रूप स्थिर करने में बम्बई

---

[136] वही, पृ०सं० 405

[137] रविभूषण - रस्साकशी-इक्कीसवीं सदी में हिन्दी नवजागरण पर बहस, पहल-73, संपादक-ज्ञानरंजन, पृ०सं० 213

[138] रविभूषण - रस्साकशी - इक्कीसवीं सदी में हिन्दी नवजागरण पर बहस, पहल -73, पृ०सं० - 213

सरकार ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस प्रक्रिया में कोश निर्माण का स्थान विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। 'मराठी-मराठी पंडित कोश' 1829 में, मोल्सवर्थ का 'मराठी-अंग्रेजी कोश' 1831 में सरकारी सहायता से छप चुका था। आगे चलकर मराठी को विष्णु शास्त्री चिपलूणकर, महात्मा ज्योतिबा फूले, अगरकर और लोकमान्य तिलक-जैसे प्रशस्त गद्यकार मिले।"[139]

हिन्दी प्रदेश को क्या मिला? हिन्दी-उर्दू विवाद। "हिन्दी प्रदेश के नवजागरण के सम्मुख यह बहुत गम्भीर प्रश्न है कि यहाँ का नवजागरण हिन्दू और मुस्लिम दो धाराओं में कैसे बंट गया? यह प्रश्न इसलिए भी गम्भीर है कि बंगाल और महाराष्ट्र का नवजागरण इस प्रकार विभक्त नहीं हुआ। हैरानी की बात यह है कि हिन्दी प्रदेश का नवजागरण धर्म, इतिहास, भाषा सभी स्तरों पर दो टुकड़े हो गया। स्वत्व रक्षा के प्रयास धर्म तथा सम्प्रदाय की जमीन से किये गये।"[140] जाहिर है बंगाल या मद्रास ने अंग्रेजी राज के प्रति इतनी त्वरित प्रतिक्रिया (1856 में अवध को अपने अधीन किया और 1857 में विद्रोह हो गया) व्यक्त नहीं की थी, जितनी हिन्दी प्रदेश ने। अतः परिणाम सामने था।

'हिन्दी नवजागरण' के इन विविध आयामों की पड़ताल के बाद 'हिन्दी नवजागरण' की कुछ स्वरूपगत विशेषताएँ उभर कर सामने आती हैं। अंग्रेजों के औपनिवेशिक शासन ने भारतीयों को केवल भौतिक या राजनीतिक स्तर पर पराधीन नहीं किया था, बल्कि एक मानसिक गुलामी का भी तंत्र इस तरह विकसित किया था कि भारतवर्ष के इतने वर्षों की पराधीनता का कारण भारतीयों का दुर्बल कापुरूष और निर्बल होना है।[141] उनकी "श्वेतजनों पर बोझ" (White mens burden), सभ्यता का अभियान (civilising mission) की अवधारणा, लार्ड मैकाले का कथन कि भारत का सारा ज्ञान यूरोप की एक अच्छी लाइब्रेरी के एक शेल्फ में रखी किताबों में समा जाये या फिर जेम्स मिल के इतिहास लेखन का यह उद्देश्य कि अंग्रेजी शासन ने "भारत को न सिर्फ मुसलमानों के साम्प्रदायिक शासन से मुक्ति दिलाई बल्कि शांति व धार्मिक सहिष्णुता के युग का सूत्रपात भी किया।"[142] मूल रूप

---

[139] नामवर सिंह - नवजागरण की समस्याएँ, (नामवर संचयिता- नंदकिशोर नवल (संपादक) राजकमल प्रकाशन, 2003, पृ०सं० 405

[140] वही, पृ०सं०-40

[141] "Indian lack physical strength and courage because as the Europeans always allege, the 'Hindoos' are effeminate."
Partha Chatterjee – Nationalist Thought and the colonial world, A derivative discourse, O.U.P. 1996, Pg. no. 54.

[142] मुबारक अली-इतिहासकार का मतान्तर (अनुवादक - प्रेम कपूर), राजकमल प्रकाशन, 2002 ई०, पृ०सं०-19

से यह चित्त विजय (Political hypnotism) के उस अभियान का हिस्सा था, जो भारतीयों पर मानसिक गुलामी थोपने का सुचिंतित और सचेत प्रयास कर रहा था।

भारत में होनेवाले बंगला नवजागरण, मराठी नवजागरण, हिन्दी नवजागरण और अन्य नवजागरण अपने-अपने स्तर से इस सोच का खंडन करते हुए विकसित हुए थे। यहाँ बात हिन्दी नवजागरण को केन्द्र में रखकर की जा रही है। हिन्दी नवजागरण काल में हिन्दी के लेखकों के लिए यह समस्या 'आत्म-पहचान' की समस्या बन गयी। 'आत्म पहचान' की समस्या से कला, साहित्य, संस्कृति, इतिहास, राजनीति, धर्म हर क्षेत्र में अनउपनिवेशन की प्रक्रिया आरंभ हुई। गौरतलब है कि " 13 फरवरी 1879 को दुर्गाशंकर मिश्र ने कलकत्ता से 'सार सुधा निधि' का प्रकाशन शुरू किया। उन्होंने इस मामले को उठाया, "विद्या तो अंगरेजी ही है, हम लोगों का क्या है? कुछ भी नहीं और जो कुछ भी है सो केवल पाखंड मात्र है यह भ्रम दूर करना था। इसलिए कहा गया, "सार सुधा निधि का प्रथम प्रयोजन है प्राचीन और नवीन शास्त्र तथा मतों को विचारपूर्वक मीमांसा करना। वस्तुतः 'प्राचीन और नवीन मतों की विचारपूर्वक मीमांसा' ही नवजागरण का बुनियादी तत्व है।"[143]

प्राचीन और नवीन मतों की विचारपूर्वक मीमांसा, द्वारा देश की जातीय स्मृतियों का बुद्धिसम्मत पुनर्गठन किया गया। इतिहास और परंपरा का नये सिरे से जो मूल्यांकन आरंभ हुआ उसकी गंभीर शुरूआत और बहस के केन्द्र में लाने का श्रेय अंग्रेज विद्वानों को ही जाता है। अंग्रेजों में कुछ ईमानदार और विवेकवान पुरुष भी थे, जिन्होंने तथ्यों के साथ छेड़छाड़ नहीं की। पुरातात्त्विक खोज के निष्कर्षों को उसी रूप में सामने रख दिया। विलियम जोन्स के नेतृत्व में 1784 में 'बंगाल एशियाटिक सोसायटी' की स्थापना हुई। 1804 में बम्बई एशियाटिक सोसाइटी और 1823 में ग्रेट ब्रिटेन की एशियाटिक सोसायटी की स्थापना के साथ 'इंडोलिजिकल अध्ययन' की दिशा में और विकास हुआ।

"हेस्टिंग्स के अकादमिक अनुयायियों में- विलियम जोन्स, चार्ल्स विल्किन्स, एच०टी० कोलब्रुक और जेम्स प्रिंसेप ने पंडितों से संस्कृत और अन्य कई चीजें सीख कर, भारत पर शोधरत हो गये.... विल्किन्स ने 1785 में 'भगवद्गीता' का अंग्रेजी में अनुवाद किया। यह संस्कृत की किसी भी बड़ी कृति का यूरोपियन भाषा में पहला अनुवाद था। ... 'मनुस्मृति', 'अभिज्ञानशाकुन्तलम' और अपने तीन निबंधों के प्रकाशन के बाद विलियम जोन्स भारतीय धर्म के अधिकारी व्यक्ति माने जाने

---

[143] शंभुनाथ - आधुनिक पुनर्जागरण की प्रस्तावना, समकालीन सृजन, अंक -31, 2002 ई०, पृ० सं० 5

लगे।"[144] कहने का तात्पर्य यह कि जिस इतिहास और परंपरा का नव मूल्यांकन हम कर रहे थे, उसे प्रकाश में लाने का कार्य अंग्रेजों के द्वारा हुआ। जिस 'प्राच्यविद्यावाद' के प्रतिरोध की संस्कृति विकसित हो रही थी। उसी प्राच्यविद्यावाद (Orientialism) के आर्य नस्ल के सिद्धांत को भारत के वर्चस्ववादी वर्ग का अपार समर्थन प्राप्त था।"[145] इन अंतर्विरोधों के साथ 'आधुनिकता' की चेतना विकसित हो रही थी।

हिन्दी नवजागरण और उसके साहित्य से जुड़ी विशेषताओं की बात करें तो, इतिहास और परंपरा के नये मूल्यांकन के द्वारा ऐतिहासिक दृष्टि का विकास किया गया। साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के विरोध के साथ-साथ सामंतवाद का भी विरोध किया गया। रूढ़िवाद और रीतिवाद दोनों का विरोध करते हुए खड़ी बोली हिन्दी गद्य का विकास हुआ। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष लगातार जारी रहा। ब्रिटिश शासकों ने रचनाओं को प्रतिबंधित करने में कोई कोताही नहीं बरती थी।

चूँकि रामविलास जी ने 'हिन्दी नवजागरण' की अवधारणा को 12वीं-13वीं, शताब्दी से ही निरन्तरता में देखा था, बावजूद इसके भक्तिकालीन 'लोकजागरण' और 1857 से आंरभ होने वाले नवजागरण में कुछ मूलभूत अंतर है। "भक्तिकालीन लोकजागरण" जातीय निर्माण को व्यक्त करनेवाला सांस्कृतिक आंदोलन है, जिसका मुख्य स्वर सामंतवाद विरोधी तथा मानवतावादी है। जबकि नवजागरण, राष्ट्रीय स्वाधीनता का सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आंदोलन है, जिसका मुख्य स्वर साम्राज्यवाद विरोधी तथा सामंतवादविरोधी है।"[146] भक्तिकालीन लोकजागरण में हिन्दी की जातीय भाषाओं का विकास होता है और 'हिन्दी नवजागरण' के समय जातीय भाषा के रूप में हिन्दी का विकास होता है। भक्तिकाव्य में सामंती बंधनों से मुक्ति की छटपटाहट है, हिन्दी नवजागरण 'औपनिवेशिक शासन से मुक्ति की चेतना से 'लैस' है। "भक्ति आंदोलन के द्वारा समाज को बदलने की जो कोशिश हुई, उसका व्यावहारिक खाका या ढाँचा मौजूद नहीं था। हाँ, बदलाव की कामना जरूर

---

[144] "Hastings' academic proteges- William Jones, Charles wilkins, H.T. Colebrook and James Prinsep-learnt Sanskrt and many other thing from the pandits and engaged in research on India." Wilkins rendered the Bhagvad Gita into-English in 1785. This was the first published traslation of any major Sanskrit work into a European language. Jones translated the Manusmriti and Abhijnashakuntalam into English. With the publications of his three essay, .Jones came to be regarded as an authority on Indian religion."

Braj Ranjan Mani – Debrahmanising History, Manohar Publication, Delhi, 2005, Pg no. 192.

[145] The Aryan race theory, a key construct of orientalism, found trendeous support among the dominant classes in India, Do, Pg. no. 195.

[146] मैनेजर पाण्डेय-साहित्य और इतिहास दृष्टि, अरूणोदय प्रकाशन, दिलली, 1992 ई० पृ०सं० 190

थी।"[147] जबकि 'हिन्दी नवजागरणकाल के रचनाकार यथार्थ-बोध के कारण अपने परिवेशगत विषमताओं से परिचित थे और सार्थक बदलाव के लिए 'सचेत परिवर्तनेच्छा' से लैस थे। "भक्तिकाल के भक्त कवि साधु थे, संत थे। असल में ये समाज के हाशिए पर रहते थे।.. आधुनिक काल (हिन्दी नवजागरण से आरंभ) के जो लेखक, कवि थे, वो हाशिए के लोग नहीं थे, बल्कि एक तरह से समाज को नेतृत्व करने वाले लोग थे इनके साथ जो धीरे-धीरे राजनीतिक आंदोलन एवं संगठन उठ खड़े हुए वो इनकी आकांक्षाओं एवं इच्छाओं को व्यावहारिक रूप में भी लागू करने में प्रयत्नशील रहे।.... अपनी पूरी उदात्त एवं मानवीय चेतना से मुक्त कोशिशों के बावजूद भक्ति आंदोलन उतना सफल नहीं हुआ, जितना सफल सामाजिक राजनीतिक अर्थों में 19वीं सदी का नवजागरण।"[148] भक्तिकालीन आस्था और विश्वास को नवजागरणकाल में वैचारिकता ने रिप्लेस किया।

'हिन्दी नवजागरण' की अर्थ एवं अवधारणा पर इतनी चर्चा का कारण यह था कि हिन्दी साहित्य में आधुनिकता की सैद्धांतिकी की केन्द्रीय अवधारणा (Central concept) और बीज शब्द (Key word) है, हिन्दी नवजागरण। 'नवजागरण' को लेकर हिन्दी साहित्य की समझ कितनी साफ है इसका अनुमान नामवर जी के इस सुचिंतित विचार से लगाया जा सकता है कि "मैं नवजागरण पर पहले चाहे जो राय रखता रहा था। इधर मैंने नवजागरण संबंधी अपनी सोच में परिवर्तन किया है। यूरोप का जो रेनेसाँ है, वहीं हमारे यहाँ नवजागरण है। नवजागरण जब कहे तो हमारा आशय 'एनलाइटेनमेंट' से है।"[149] 'नवजागरण' पद का जो एक कालगत संदर्भ है यहाँ उसकी समझ लड़खड़ा जाती है।

यूरोप में संयोगवश पूंजीवाद, विज्ञान और ज्ञानोदय सहवर्ती स्थितियाँ रही हैं इसलिए 'आधुनिकता' की जो चेतना विकसित हुई, उस पर इन तीनों का प्रभाव है। भारतीय संदर्भों की बात करें, (उसमें भी हिन्दी साहित्य की) तो पाते हैं कि हिन्दी नवजागरण और औपनिवेशिक काल सहवर्ती स्थितियाँ रही हैं। उपनिवेशवाद की आलोचना से हिन्दी नवजागरणकालीन हिन्दी साहित्य का सार तत्व विकसित हुआ है, यही कारण रहे कि हिन्दी नवजागरण की विशेषताएँ जब गिनायी जाती हैं तो उसमें आधुनिकता की विशेषताएँ भी समान रूप से शामिल रहती हैं। इससे नवजागरण और आधुनिकता को एक दूसरे का पर्याय नहीं समझना चाहिए।

---

147 मैनेजर पाण्डेय - हिन्दी नवजागरण हिन्दू नवजागरण नहीं है, (समकालीन जनमत, मार्च 2004, अंक 1, वर्ष-23) संपादक-सुधीर सुमन, प्रणय कृष्ण, पृ०सं०-36

148 वही, पृ०सं० 36

149 नामवर सिंह - 13वीं-14वीं शताब्दी का सूफी काव्य-युग ही नवजागरण माना जाना चाहिए। समकालीन जनमत, मार्च 2004, अंक-1, संपादक-सुधीर सुमन, प्रणय कृष्ण, पृ०सं०

औपनिवेशिक-काल में महात्मा गांधी और नेहरू की सोच की जो सामान्य छवि हमारे पास है। उसमें नेहरू गांधी जी की तुलना में ज्यादा आधुनिक लगते हैं कारण कि उन्होंने कल-कारखानों और औद्योगिक विकास को आधुनिक काल का मंदिर कहा था, जबकि गांधी जी की चर्खे कर्घे वाली धारणा को हिन्दी साहित्य में इस रूप में प्रस्तुत किया गया कि "उद्योगीकरण और आधुनिक विज्ञान का विरोध करने वाली विचारधारा का स्रोत गुजरात है"[150] और "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर महावीर प्रसाद द्विवेदी तक हिन्दी जागरण के नव सूत्रधार पुराने चर्खे-कर्घे वाले भारत का स्वप्न नहीं देखते। वे देश में आधुनिक उद्योग धंधों के विकास के पक्षपाती हैं। गांधीवादी विचारधारा से हिन्दी नवजागरण का यह भेद उल्लेखनीय है।"[151]

गांधी के लिए, राज्य पूर्णतः सबके लिए समान था, चूंकि उन्होंने भारत को एक ऐसे राष्ट्र के रूप में देखा था, सौहार्द जिसके स्वभाव में था। जिस प्रकार के सामाजिक और आर्थिक स्पर्धा को पश्चिमी उदारवाद बढ़ावा दे रहा था, वह विकास के सिद्धांत का पैमाना बन रहा था। इसका भारत में पूर्णतः अभाव था। गांधी जी ने 'हिन्द स्वराज' में लिखा कि "हमारे यहाँ ऐसी प्राणघातक स्पर्धा नहीं थी।" प्रत्येक व्यक्ति अपना वाणिज्य और व्यापार करता है और निर्धारित दर लेता है।" समाज की पारंपरिक व्यवस्था में इंसान की अंतर्निहित भलमनसाहत बनी रहती है। राष्ट्रीय आंदोलन के सामने चुनौती थी

इन मूल्यों को पुनः खोज कर उन्हें राजनीति के मौलिक सिद्धांत बनाने की।"[152] गांधी जी इस दायित्व का निर्वाह कर रह थे।

---

[150] रामविलास शर्मा - महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, 1989 (द्वितीय संसकरण), पृ०सं० 179

[151] वही, पृ०सं० 179

[152] For Gandhi, the state was entirely dispensable, since he saw India as country intrinsically at hormony with itself. The kind of social and economic competition that western libralism set much store by, which it had indeed raised to the status of the principle of progress, was completely absent in India. "We have no system of life corroding competition", wrote Gandhi in Hind Swaraj. "Each followed his own occupation or trade and charged a regulation wage." Man's inherent goodness was preserved in the traditional organisation of sociaty. The challenge for the nationalist movement was mere to rediseoven these values and make them the fundemental principles of politics.

Sukumar Muralidharan - Religion, Nationalism and the state Gandhi and India's engagement with political modernity, Social Scientist - 394-395, Numbers 3-4 March April-2006, Pg no. 7.

"मशीनें यूरोप को उजाड़ने में लगी हैं और वहाँ की हवा अब हिन्दुस्तान में चल रही है। यंत्र आज की सभ्यता की मुख्य निशानी है।... बम्बई की मिलों में जो मजदूर काम करते हैं, वे गुलाम बन गये हैं। जो औरतें उनमें काम करती हैं, उनकी हालत देखकर कोई भी काँप उठेगा। जब मिलों की वर्षा नहीं हुई थी तब वे औरतें भूखी नहीं मरती थी। मशीन की यह हवा अगर ज्यादा चली, तो हिन्दुस्तान की बुरी दशा होगी।... हिन्दुस्तान में अगर हम मैन्चेस्टर कायम करेंगे तो पैसा हिन्दुस्तान में ही रहेगा, लेकिन वह पैसा हमारा खून चूसेगा, क्योंकि वह हमारी नीति को बिल्कुल खत्म कर देगा।..... गरीब हिन्दुस्तान गुलामी से छूट सकेगा, लेकिन अनीति से पैसे वाला बना हुआ हिन्दुस्तान गुलामी से कभी नहीं छूटेगा।"।[153] गांधी जी यंत्रों के सख्त खिलाफ थे क्योंकि उनका मानना था कि "यंत्रों के उपयोग के पीछे जो प्रेरक कारण है वह श्रम की बचत नहीं है, बल्कि धन का लोभ है।"[154]

कहना न होगा कि गांधी जी यह आशंका कितनी सच साबित हुई। ऐसा कह कर मैं गांधीजी को नेहरू की तुलना में ज्यादा आधुनिक साबित करने की कोशिश नहीं कर रहा। मैं उस मूल समस्या की ओर संकेत कर रहा हूँ जिसे 'औपनिवेशिक आधुनिकता' के बरक्स गांधी 'आधुनिकता' की देशज अवधारणा का एक 'स्वदेशी मॉडल' विकसित कर रहे थे और जब हम भारतीय परिप्रेक्ष्य में या हिन्दी साहित्य के संदर्भ में 'आधुनिकता की अपनी सैद्धांतिकी' की बात करते हैं तो इस प्रश्न को अलगाया नहीं जा सकता। हिन्दी साहित्य जो स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान लिखा गया, वह गांधी जी के चिन्तन से अछूता नहीं रह सका है। महावीर प्रसाद द्विवेदी से लेकर छायावाद के रचनाकारों में यह प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

गांधीजी और नेहरू के इस आधुनिकता संबंधी 'एप्रोच' के माध्यम से जिस दूसरी बात की ओर मैं संकेत करना चाहता था वह यह कि सिर्फ कल-कारखाने, मशीनें और औद्योगिक विकास के होने का मतलब 'आधुनिकता' नहीं है। किशन पटनायक के लिए आधुनिकता का मतलब 'एक खास प्रकार की टेक्नोलॉजी के द्वारा संचालित होना है।'[155] जबकि दीपांकर गुप्ता अपने सबल तर्कों के आधार पर कहते हैं कि "तकनीक और अन्य समकालीन शिल्प की तुलना की प्रवृत्ति के कारण भारत में आधुनिकता को सही तौर पर नहीं पहचाना गया है। आधुनिक तकनीक का प्रभुत्व, हमेशा आधुनिकता का संकेत नहीं देता। आधुनिकता का संबंध दृष्टिकोण से है,

---

[153] महात्मा गांधी - हिन्द स्वराज, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 2004, पृ०सं० 76-77

[154] वही, पृ०सं० 14

[155] किशन पटनायक - विकल्पहीन नहीं है दुनिया, राजकमल प्रकाशन, 1980 ई० पृ०सं० 58

खासकर क्रियाशील सामाजिक संबंधों से। एक आधुनिक समाज में ये चार अभिलक्षण निश्चित तौर पर उपस्थित होने चाहिए।

- व्यक्ति की प्रतिष्ठा
- सार्वभौमिक आदर्शात्मक मूल्यों के प्रति संसक्ति
- विशेषाधिकारों के ऊपर वैयक्तिक उपलब्धियों की प्रतिष्ठा या जन्मजात विशेषाधिकारों की समाप्ति
- सार्वजनिक जीवन के प्रति जवाबदेही।

सामान्यत: आधुनिकीकरण के जिन चार अभिलक्षणों का ऊपर संकेत किया गया है, आधुनिकता और उपभोक्तावाद उसी के प्रतिफल हैं और वे आपस में मिलकर आधुनिकता का निर्माण नहीं कर सकते।"[156] आगे चलकर दीपांकर गुप्ता आधुनिक समाज के पाँचवें लक्षण के रूप में 'व्यक्ति की बजाय संस्थानों में विश्वास करने की प्रवृत्ति' को भी शामिल करते हैं। वही अविजीत पाठक के लिए आधुनिकता 'विवेक विज्ञान और विकास'[157] के साथ-साथ 'स्पिरिट ऑफ फ्रीडम' (स्वच्छन्द चेतना)[158] से जुड़ती है। कुल मिलाकर कहें तो भारतीय परिप्रेक्ष्य में आधुनिकता की जो समाजशास्त्रीय अवधारणा है, वह आज की तारीख में भी यह स्वीकार करने की स्थिति में नहीं है कि भारत में आधुनिकता पूरी तरह से आ गयी है। समाजशास्त्र के आधुनिकता के 'पैरामीटर (मानक) भारत में 'मिसटेकेन माडर्निटी' की ही पुष्टि करते हैं। इस संदर्भ में याद आता है ब्रूनो लातोर (फ्रेंच विचारक) की पुस्तक का शीर्षक *'वी हेव नेवर बीन माडर्न्स* (हम कभी आधुनिक हुए ही नहीं)। "लातोर का कहना है कि आधुनिकता की आत्म परिभाषा का आधार ही है - वैज्ञानिक पद्धति की केंद्रीयता। मनुष्य के आत्मबोध में प्रकृति और विरोध

---

[156] Modernity has been misrecognised in India because of the tendency to equate it with technology and with other contemporary artefacts. The passion of modern technology, however, does not always signal modernity. Modernity has to o with attitudes, especially those that come into play in social relation. A moern society is one in which at least the following characterstics must be present.

- Dignity of the Individual, - Adherence to universalitic norms, - Eleation of Individual achievement over privileges or disprivileges of birth, -accountability in public life,

Generally speakding technology and consumerism are the consequences of the four characteric of modernisation listed above and do not by themselves constitute modernity – Pg no. 2

Mistaken modernity (India between worlds) – Dipankar Gupta, Harper Collins. Publication India – 2000.

[157] Avijit Pathak – Modernity, Goloblization and Identity Towads a Reflexive Quest. Aakar Books. Delhi, 2006, Pg. No., 48

[158] Do, Pg. no. 13

का स्पष्ट रेखांकन।.... ब्रूनो लातोर का कहना है कि आधुनिकता की इस आत्म परिभाषा पर विचार किया जाए तो मानना होगा कि प्रकृति और संस्कृति, आस्था और तर्क के बीच ऐसा स्पष्ट विभाजन न तो संवेदना के स्तर पर संभव हो सका है, न स्वयं वैज्ञानिक पद्धति के धरातल पर इसीलिए मूल्यबोध और संवेदना के धरातल पर 'हम कभी आधुनिक हुए ही नहीं।"[159] ब्रूनो लातोर जब यह कह रहे हैं तो उनका संदर्भ भारत नहीं है, वैश्विक है।

अंतत: यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि "आधुनिकता का कोई एक वैश्विक मॉडल नहीं हो सकता। यह अलग बात है कि दुनिया की एक बड़ी आबादी में आधुनिकता का प्रवेश औपनिवेशिक लक्ष्यों के साथ हुआ था। आधुनिकीकरण के साथ-साथ औपनिवेशीकरण से उसके संपर्क की वजह से पश्चिमी मॉडल ही आधुनिकता का वैश्विक मॉडल बन गया।"[160] इस तरह 'उनके' (west) प्रतिमानों से -हम' (east) अपना मूल्यांकन करने लगे। मुकुंद लाठ हमारी अपनी आधुनिकता के लिए पश्चिम की निर्भरता को एक समस्या के रूप में देखते हुए कहते हैं कि ओड़ीसी नृत्य को लीजिए। हमारे देखते उसने रूप लिया है, बढ़ा है, फैला है, बिल्कुल नया नृत्य है.... फिर वह आधुनिक क्यों नहीं? इसलिए कि पश्चिम से नहीं आया है। कत्थक को लीजिए। उसे सौ-डेढ़ सौ साल से ज्यादा नहीं हुए हैं.... उस पर पश्चिम का प्रभाव नहीं है, चाहे बाहर के दूसरे प्रभाव हों। तभी वह आधुनिक भी नहीं है। यही बात संगीत के साथ भी है। खयाल नया ही है।"[161] कारण पश्चिम निर्भरता के कारण हम आधुनिकता की अपनी सैद्धांतिकी निर्मित नहीं कर सके हैं।

हमें नहीं भूलना चाहिए कि "हमारे लिए आधुनिकता का वह अर्थ नहीं है, जो यूरोपीय या अमरीकी निर्मिति है। दुनिया में तर्क, स्वातंत्र्य और बराबरी की एक दिशा नहीं हो सकती, क्योंकि दुनिया के हर देश और समाज की अपनी खासियत है। फिर भी आधुनिकता का स्वातंत्र्य और बराबरी या संस्कृति के कुछ वैश्विक मॉडल जरूर बनेंगे, लेकिन वे राष्ट्रीय आधुनिकता की सोच में कुछ घटा-बढ़ा ही सकते हैं, आधारभूत जमीन नहीं बन सकते।"[162] इसलिए जब हम 'आधुनिकता की अपनी सैद्धांतिकी की बात करते हैं तो ध्यान रखना चाहिए कि भारत में जब आधुनिकता की धारणाएँ बन रही थीं, तब पश्चिम की आधुनिकताएँ उसकी अपनी सभ्यता से, जिसे लेकर बड़ा गर्व था, छीज चुकी थीं।'[163] पश्चिमी देशों की आधुनिकता और

---

[159] पुरूषोत्तम अग्रवाल - संग्रह त्याग न बिनु पहचाने, जनसत्ता, दिल्ली, 21 अगस्त 2005 पृ०सं० 7

[160] शंभुनाथ - आधुनिक पुनर्जागरण की प्रस्तावना, समकालीन सृजन, अंक-22, 2002 पृ०सं० 5

[161] मुकुंद लाठ - हमारी आधुनिकता, पूर्वग्रह अंक-118, संपादक-मदन सोनी, पृ०सं० 26

[162] शंभुनाथ - आधुनिक पुनर्जागरण की प्रस्तावना, समकालीन सृजन, अंक-21, 2002, पृ०सं०7

[163] वही, पृ०सं० 7

भारत जैसे अनेकों देश की आधुनिकता में "सबसे बड़ा और मौलिक फर्क यह रहा कि दोनों अनुभवों में सौ साल का अंतराल है।"[164] दूसरा महत्वपूर्ण अंतर यह कि यूरोप में आधुनिकता जिस ज्ञानोदय काल (एनलाइटेनमेंट) के बाद स्थापित हो गयी थी। भारत में वैसा 'नवजागरण' औपनिवेशिक काल में हुआ था। यूरोप में पुनर्जागरण काल (15वीं -16वीं शताब्दी) के पूर्व अंधकार काल (डार्क ऐजेज) की पृष्ठभूमि थी। भारत में विशेषकर हिन्दी साहित्य के संदर्भ में ऐसे किसी अंधकार युग की परिकल्पना नहीं मिलती।

पूंजीवाद, विज्ञान, ज्ञानोदय यूरोपीय आधुनिकता के निर्माण काल की सहवर्ती स्थितियाँ है। भारत में ऐसी स्थिति नहीं रही। यूरोप में आधुनिकता अन्य ज्ञानानुशासनों से प्रभाव ग्रहण करती हुई साहित्य में प्रतिफलित हुई। भारत में विशेषकर कला-साहित्य में यह यूरोपीय प्रतिमान के रूप में ही ग्रहण कर ली गई। फिर भी हिन्दी साहित्य में आधुनिकता की अपनी विशेषताएँ हैं, जिसके आधार पर हम आधुनिकता की अपनी सैद्धांतिकी पर बात कर सकते हैं। ये प्रमुख विशेषताएँ हैं - सामंतवाद-साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का विरोध, इतिहास और साहित्य का नया मूल्यांकन करते हुए ऐतिहासिक दृष्टि की प्रतिष्ठा, परंपरा का युगानुकूल संदर्भों में उपयोग, जातीय शिक्षा पर जोर, स्वत्व गठन की गंभीर कोशिश, देशी भाषा में चिंतन की प्रवृति को बढ़ावा, हिन्दी का जातीय भाषा के रूप में विकास, आधुनिकता की मूलभूत परियोजनाओं से यथार्थ-बोध की चेतना का विकास, यथार्थ-बोध से विषमता का बोध और परिणति सचेत परिवर्तनेच्छा में, मध्ययुगीन आस्था-श्रद्धा-विश्वास के स्थान पर विवेक-बुद्धि-तर्कशीलता की स्थापना, परलोक संवारने की जगह इहलोक की चिंता, सामूहिक मुक्ति की अवधारणा, रूढ़िवाद का विरोध, स्त्री विषयक दृष्टिकोण में बदलाव, राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रवाद की भावना का उदय, मध्य वर्ग का विकास, आधुनिकता के बरक्स परंपरा को प्रतिमान के रूप में स्थापित करने का प्रयत्न, नए साहित्यिक रूपों (गद्य विधाओं) का विकास और उसके अंतर्गत शिल्पगत विकास (रूपगत विधान का विकास)।

---

[164] सुधीश पचौरी - आलोचना से आगे, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2000 ई, पृ०सं० 15

द्वितीय अध्याय

आधुनिकता के भौतिक आधार और हिन्दी साहित्य में उसके परिणाम

1. i) व्यापारिक पूंजी और व्यापारिक पूंजीवाद
   ii) मध्यवर्ग और आधुनिकता
   iii) 1857 और मध्य वर्ग
   iv) रेल डाक तार यातायात के अन्य साधन
   v) प्रेस पत्रकारिता और हिन्दी साहित्य
2. हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के भौतिक आधार: प्रभाव एवं परिणाम

द्वितीय अध्याय

आधुनिकता के भौतिक आधार और हिन्दी साहित्य में उसके परिणाम

1. i) व्यापारिक पूंजी और व्यापारिक पूंजीवाद

आधुनिकता केवल बुद्धिवाद की ही नहीं भौतिकवाद की भी प्रक्रिया है। स्पष्ट शब्दों में कहें तो बुद्धिवाद आधुनिकता का एक लक्षण मात्र है, पर्याय नहीं। आधुनिकता के प्रचार-प्रसार और स्पष्ट पहचान के लिए भौतिक आधारों का निर्माण तब तक संभव नहीं होता, जब तक कि ऐतिहासिक परिस्थितियाँ निर्मित न हो जाएं। अब सवाल उठता है कि भारत में यह परिस्थितियाँ कब निर्मित हुई जहाँ से इसकी स्पष्ट पहचान की जा सके?

1707 ई० में औरंगजेब की मृत्यु के साथ मुगल सल्तनत के विघटन की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। अंग्रेजों ने इस समय तक भारत के तटीय क्षेत्रों में अपनी व्यापारिक कोठियाँ स्थापित कर ली थीं। कुछ इतिहासकार और हिन्दी साहित्यालोचक (रामविलास शर्मा) अठारहवीं शताब्दी में भारत में व्यापार एवं वाणिज्य की बढ़ी हुई अवस्था को देखकर यह अनुमान लगाते हैं कि अंग्रेजी राज नहीं आया होता तो भारत भी इंग्लैंड की तरह विकास कर सकता था। बकौल सतीश चन्द्र "प्रचुर व्यापारिक पूंजी और वित्त व्यवस्थापकों तथा उद्यमियों के एक समूह एवं कुशल कारीगरों के बल पर भारत भी उस दिशा में (इंग्लैंड के औद्योगिक पूंजीवाद की दिशा में) तेजी से जा सकता था। यदि औपनिवेशिक हस्तक्षेप ने उसकी अर्थव्यवस्था को सर्वथा लुंज-पुंज न बना दिया होता और एशियाई संसार के अग्रणी वस्तु-निर्माता की जगह उसे पूंजीवादी दुनिया के हाशिये पर खड़े कच्चे माल के उत्पादक की स्थिति में न पहुँचा दिया होता।"[1]

क्या हुआ होता? यह अनुमान का विषय है। क्या हुआ? इसका प्रमाण उपस्थित है। अत: मूल्यांकन उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर ही करना संगत है। सतीश चन्द्र के अनुसार ही "यद्यपि दादनी प्रथा (जिसके तहत व्यापारी कारीगरों को अग्रिम पूंजी और कच्चा माल सुलभ करा देते थे, नई नहीं थी तथापि लगता है कि अठारहवीं सदी में इसकी अच्छी अभिवृद्धि हुई।.... फिर भी दादनी प्रथा अपने-आप में उत्पादन प्रणाली को बदल नहीं सकी।"[2] यह बात ध्यान देने योग्य है क्योंकि यह

---

1. सतीश चन्द्र - मध्यकालीन भारत (सल्तनत से मुगलों तक (1526-1748), पृ० सं० 434 जवाहर पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2005 द्वितीय संशोधित संस्करण
2. वहीं - पृ०सं० 432-434

व्यापारिक पूंजी और व्यापारिक पूंजीवाद के अंतर को स्पष्ट करता है। मार्क्स के अनुसार "व्यापारिक पूंजी, पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली से अधिक प्राचीन है और वास्तव में, ऐतिहासिक दृष्टि से वह पूंजी के अस्तित्व की प्राचीनतम स्वतंत्र अवस्था है।"[3] जबकि व्यापारिक पूंजीवाद का संबंध पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली (Mode of production) से है। अर्थात् "जब उजरती श्रम पर आधारित माल का उत्पादन अतिरिक्त मूल्य (surplus value) का सृजन करे, सिर्फ तभी उजरती पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली की दिशा में ले जा सकता है।"[4]

"किसी भी समाज में माल का उत्पादन और उजरती श्रम दोनों अलग-अलग मौजूद रह सकते हैं। लेकिन इतने से ही उत्पादन की पद्धति पूंजीवादी नहीं होती। पूंजीवादी उत्पादन-पद्धति के लिए जरूरी है कि उजरती श्रम, माल के उत्पादन का आधार बने। प्राचीन या मध्यकालीन समाजों (भारतीय) में ज्यादातर ये एक साथ नहीं मिलते। जहाँ मिलते भी हैं वहाँ एकाध शहरों तक सीमित मिलते हैं, उसकी दिशा व्यापक प्रसार की नहीं दिखती।"[5] इसलिए "यह बात समझनी चाहिए कि उजरती श्रम की प्रथा का विकास जिसमें पूंजीवादी उत्पादन-पद्धति बीज रूप में रहती है, तब तक नहीं हो सकता जब तक अन्य आवश्यक ऐतिहासिक परिस्थितियाँ तैयार न हो जाएँ।[6] यही कारण रहे कि भारत की आर्थिक समृद्धि के बावजूद ऐतिहासिक परिस्थितियों के निर्मित न हो सकने के कारण औद्योगिक क्रांति इंग्लैंड में हुई भारत में नहीं।

"मार्क्स ने लिखा है कि व्यापारिक पूंजी के चरम विकास के बावजूद पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली का जन्म लेना जरा भी अनिवार्य नहीं है। जो लोग व्यापारिक पूंजी के विकास से पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली के जन्म की संभावना देखते हैं, उन्हें समझाते हुए मार्क्स ने लिखा है कि "उसका (व्यापारिक पूंजी) विकास स्वयं अपने में इतनी क्षमता नहीं रखता कि एक उत्पादन-प्रणाली से दूसरी उत्पादन-प्रणाली में संक्रमण को प्रवर्तित कर सके अथवा उसकी व्याख्या कर सके।"[7]

"प्राक्-पूंजीवादी समाज में व्यापारी पूंजी दो बिन्दुओं के बीच काम करती रहती है - एक जहाँ से वह माल खरीदती है, दूसरे, जहाँ वह माल बेचती है। मार्क्स

---

3. कार्ल मार्क्स - पूंजी खण्ड-3, (अनुवादक-नरेश बेदी), प्रगति प्रकाशन, मास्को, (पी०पी०एच०) 1988 (द्वितीय संस्करण), पृ०सं० -283
4. वीर भारत तलवार-सामना, वाणी प्रकाशन, 2005, पृ०सं० 91
5. वही, पृ०सं०-90
6. वही, पृ०सं०-89
7. वही, पृ०सं०-92

ने लिखा "व्यापारी पूंजी मूलत: ऐसे चरमों के बीच जिन्हें वह नियंत्रित नहीं करती और ऐसे पूर्वाधारों के बीच, जिन्हें वह बनाती नहीं, केवल अंतर्वर्ती गति ही होती है।"[8]मतलब "बिकाऊ माल का उत्पादन किस प्रणाली से हुआ है, इससे व्यापारिक पूंजी का कोई अनिवार्य संबंध नहीं होता। उसका संबंध तो उत्पादन हो जाने के बाद अस्तित्व में आए माल से होता है। इसीलिए यह जरा भी जरूरी नहीं है कि अगर व्यापारिक पूंजी का विकास हो रहा हो तो उसके फलस्वरूप उत्पादन की प्रणाली में भी कोई विकास हो रहा हो।"[9]

व्यापारिक पूंजी और व्यापारिक पूंजीवाद के मध्य फर्क दिखलाना आवश्यक इसीलिए जान पड़ा कि हमेशा भारत की आर्थिक समृद्धि का तर्क देते हुए आधुनिकता के संदर्भ में सामाजिक-आर्थिक शक्तियों और सामाजिक-आर्थिक विकास की अनदेखी कर दी जाती है।

आधुनिकता के भौतिक आधारों की बात करते हुए व्यापारिक पूंजी, व्यापारिक पूंजीवाद के साथ मध्यवर्ग के उदय का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है।

ii) मध्यवर्ग और आधुनिकता

हरजोत ओबेरॉय (Harjot Oberoi) के अनुसार "मध्यवर्ग यूरोप के औद्योगीकरण के ऐतिहासिक अनुभव का परिणाम है।"[10] लेकिन भारतीय संदर्भों में "मध्य वर्ग आधुनिकता का उत्पाद और आधुनिकता का उत्पादक दोनों ही है।"[11] आधुनिकता के संदर्भ में मध्यवर्ग की अवधारणा पर इतना बल देने की वजह यह है कि औपनिवेशिक काल में मुक्ति की मानसिकता निर्मित करने में और औपनिवेशिक काल की राजनीति की आलोचना करने में इसकी अहम् भूमिका थी। आधुनिकता के जिन ठोस और प्रत्यक्ष आधारों (रेल, डाक-तार, प्रेस आदि) की चर्चा की जाती है, उनके प्रयोग एवं उपयोग के द्वारा आधुनिकता के विचारधारात्मक आधार का निर्माण इसी वर्ग ने किया। सवाल यह है कि मध्यवर्ग का उदय अंग्रेजी राज के आगमन के बाद हुआ या इसके चिह्न अंग्रेजी राज के पहले भी देखने को मिलते हैं? इस सवाल को रखने की वजह यह है कि क्रिस्टोफर बेली (C.A. Bayly's) ने अपने

---

8. वीर भारत तलवार-रामविलास शर्मा का 'व्यापारिक पूंजीवादी', आलोचना सहस्त्राब्दी अंक -पांच 2001, अप्रैल-जून, परमानंद श्रीवास्तव (संपादक), पृ०सं० 188

9. वही, पृ०सं० 188

10. Sanjay Joshi – Fractured Mdernity, O.U.P., 2005, Pg no. 5
Middle class is a product of Europe's historical experience of Industrialization

11. Indian middle classes as both the producers and the product of modernity. Do, pg no. 2

हाल के कार्यों में मध्यवर्गीय राजनीति की जड़ें पूर्व-औपनिवेशिक काल की, विशेषकर राष्ट्रवाद की राजनीति में तलाशने की कोशिश की है। बेली (Balyly's) के अनुभववादी पांडित्य की गहनता अत्यंत कठिन है। तथापि, उन्नीसवीं सदी के अंत और बीसवीं सदी के प्रारंभ के साक्ष्यों के आधार पर, उनके इस विवाद से सहमत हो पाना कठिन है कि पूर्व-औपनिवेशिक 'संगठन के रूप' और 'मानसिकता' वे सक्रिय ताकतें थीं, जो औपनिवेशिक काल के मध्यवर्ग का रूप गढ़ रही थीं।"[12]

बी.बी. मिश्र ने भारतीय मध्यवर्ग की अवधारणा पर विस्तार से विचार करते हुए इस ओर संकेत किया है कि "पूर्व औपनिवेशिक भारत में स्वतंत्र मध्यवर्ग के विकास की संभावनाएँ थीं लेकिन जाति व्यवस्था की स्थिरता और नौकरशाही में भाई-भतीजावाद इसके विकास में बाधक बना।"[13] शाही अदालतों और नौकरशाहों की नौकरी प्राप्त करने में रक्त संबंधों ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभायी (Lelyveld 1978; Sender 1988)। अत: किसी खास किस्म की नौकरी में निश्चित परिवार और रक्तसंबंधों पर आधारित समूह का एकाधिकार हो गया।"[14] इस तरह वर्चस्वशाली और प्रभावपूर्ण वर्ग इनका लाभ अधिकांशत: उठाते रहे। परिणाम यह हुआ कि अन्य हाशिये पर के वर्ग ऊपर उठ नहीं सके।

भाई-भतीजावाद, रक्त संबंधों के आधार पर या व्यक्तिगत संपर्कों के कारण औपनिवेशिक काल में महत्वपूर्ण पदों और अधिकारी वर्ग में शामिल होने वाले लोग कौन थे? क्या ये हमेशा से वर्चस्ववादी और प्रभावशाली रहे थे या औपनिवेशिक काल की ऐतिहासिक परिस्थितियों ने इनके निर्माण में कोई अहम भूमिका अदा की थी?

चूँकि 'हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के उदय के समाजशास्त्र' की बात की जा रही है इसलिए उपर्युक्त प्रश्नों पर विचार हिन्दी प्रदेश को केन्द्र में रखकर किया

---

12. In his latest work (C. Bayly 1998), has been to trace the pre-colonial roots of middle-class politics, in particular the politics of nationalism. The empirical depth of Bayly's scholarship is formidable. Yet, in light of the evidence from the late nineteenth and early twentieth centuries, it is difficult to accept his contention that 'Pre-colonial "Mentalities" and 'forms of organization' were the active forces in shaping the colonial Indian middle class. Sanjay Joshi – Fractured Modernity, Oxford India Paper packs, 2005, Pg. No. 2005, Do, Pg. No.25.
13. Though there were possibilities for the development of an independent middle class in pre-colonial India, 'the immedability of the caste organization and despotism of the bureaucracy precluded such a development. Do, Pg. No. 4.
14. Kin connections had played a very important part in getting jobs in the royal courts and bureaucracies (Lelyveld 1978; Sender 1988). So much so that certain families and Kin groups even come to monopolize particular kinds of jobs. Do, Pg No. 26

जा रहा है। बर्नार्ड कुहन (Bernrad Cohn) ने 1960 में बनारस प्रदेश को केन्द्र में रखकर एक गंभीर शोधपूर्ण आलेख प्रकाशित कराया था (The Initial British Impact on India : A case study of the Banaras Region)[15] यह आलेख बनारस प्रदेश (Region) में ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना का विषय-अध्ययन (Case Study) है- जो वर्तमान जिलों में बलिया, बनारस, गाजीपुर, जौनपुर और मिर्जापुर (इसके दक्षिणी भाग को छोड़कर) को अपने विषय क्षेत्र के अंदर शामिल करता है।"[16]

इस आलेख में बर्नार्ड कुहन ने उस वर्ग के उदय के बीज रूप को हमारे सामने रखा है, जो आगे चलकर मध्यवर्ग का रूप धारण करता है। "मुगल साम्राज्य के विघटन के साथ अठारहवीं शताब्दी में तीन राजनीतिक तंत्रों का उद्‌भव होता है: मुगल (राष्ट्रीय), प्रादेशिक और स्थानीय।"[17] मुगल काल में काजी, कोतवाल, अमील, सरिस्तादार आदि के जो पद थे। वे मुगल साम्राज्य के विघटन के बाद भी बने रहे और प्रादेशिक तथा स्थानीय शासनों में अपनी भूमिका निभाते रहे और "ऐसा प्रतीत होता है कि अठारहवीं शती के अंत में यह स्थितियाँ (पद) परिवार के भीतर ही वंशानुगत हो गईं।" "अठारहवीं शती के अंत में, जब उनके (काजी) न्यायिक अधिकार सीमित कर दिये गये, तब काजी दस्तावेजों का अभिप्रमाणन और विवाहों को पंजीकृत करने का काम शुल्क लेकर करने लगे। उन्नीसवीं शती के आरंभिक अभिलेखों के अनुसार जिसका संबंध काजियों से है, पद की वंशानुगत प्रकृति को ब्रिटिश ने स्वीकार कर लिया और किसी सम्पति के विषय के अधिकार पत्र तथा विवाह के पंजीयन और साज-संभाल का जिम्मा काजियों को मिला।"[18]

---

15. This essay was first published in the Journal of Asian Studies Vol. XIX No. 4, August-1960.
16. This paper is a case study of the establishment of British administration in the Banaras region1 – an area which compasses the present districts of Ballia, Banaras, Ghazipur, Jaunpur and Mirzapur minus its southern portion. The Bernard Cohn Omnibus – Oxford University Press 2004, Pg no. 320.
17. With the break-up of the Mughal empire in the eighteenth century three political system emerged : the Mughal (national), the regional and the local, Do, Pg No. 321.
18. By the latter part of the eighteenth century the position appears to have become hereditary within families, ... in the late eighteenth century, when some of their judicial functions had been curtailed, Kazis were paid by fees for attesting documents and registering marriages according to early nineteenth century.....
....records concerning kazis the British accepted the herediatry nature of the post and it was maintained to register deeds and marriages. The Bernard Cohn Omnibus-Oxford University Press, 2004, pg no. 322

मुगलों के पतन से राष्ट्रीय राजनीतिक तंत्र पर अंग्रजों ने अपना अधिकार कर लिया था। लेकिन प्रादेशिक और स्थानीय निकायों में समाज की ऊँची जातियों का अधिकार बना हुआ था। मुगल काल में प्रादेशिक और स्थानीय निकाय भू-राजस्व की वसूली करके जमा कर देते थे। कार्ल मार्क्स के अनुसार "हिन्दुस्तान की संस्थाओं के गहरे अध्ययन के आधार पर यह राय बनी है कि मूल हिन्दुस्तानी संस्थाओं के अंतर्गत भूमि का स्वामित्व ग्राम पंचायतों के हाथ में होता था। खेती के लिए व्यक्तिगत लोगों के हाथों में उसे वितरित करने का अधिकार इन्हीं ग्राम पंचायतों को होता था और जमींदार तथा तालुक्केदार का अस्तित्व पहले केवल सरकारी अफसरों के रूप में होता था। वे नियुक्त इसलिए होते थे कि गाँव से प्राप्त होने वाले लगान की निगरानी करे, उसे वसूलें और उसे राजा को दे दें।"[19]

"राजस्व की वसूली की पुरानी प्रणाली यह थी कि पैदावार का एक निश्चित हिस्सा ही राजस्व घोषित कर दिया जाता था; किन्तु, जब विविध कारणों से पैदावार कम होती थी, तो उसी मात्रा में राजस्व भी कम हो जाता था। किन्तु, अंग्रेजों की हुकूमत में कर रूपये-पैसों में निश्चित किया गया, भले ही पैदावार की मात्रा कुछ भी क्यों न हो। वे किसान, जो कर की अदायगी के लिए आवश्यक धन इकट्ठा नहीं कर पाते थे, अपनी जमीन को या तो गिरवी रखने या बेच देने पर बाध्य होते थे।"[20]

"ब्रिटिशों के आगमन से पहले, भूमि कभी भी पूर्णतया निजी सम्पत्ति के तौर पर अधिकार में नहीं रही। उत्पादन के लाभांश के पारंपरिक हिस्से पर राज्य का अधिकार होता था, जिसे भू-राजस्व के नाम से जाना जाता था।"[21]

भारतीय शासन अपना अधिकांश राजस्व पारंपरिक तौर पर भूमि से प्राप्त करता था। जब ब्रिटिश सत्ता में आये तो, राजस्व वसूली के क्रम में, उन्हें समाज के विभिन्न वर्गों के भूमि संबंधी अधिकारों का अभिलेख (Record) और परिभाषित करने की आवश्यकता महसूस हुई। इस दायित्व ने ब्रिटिश को भारतीय समाज की संरचना को आकार-प्रदान करने की महान शक्ति साधन के रूप में दे दी। एक वर्ग या दूसरे के अधिकारों और विशेषाधिकारों का प्रतिपादन उनकी अपनी इच्छा पर था,

---

19. कार्ल मार्क्स फ्रेडरिक एंगेल्स : भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (1857-59) पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1963 (पहला हिन्दी संस्करण), रमेश सिन्हा (अनुवादक), पृ०सं० 158
20. के० दामोदरन, भारतीय चिन्तन परम्परा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2001, पृ०सं० 343
21. Before the British arrived, land was never held in out right ownership as private property. The state possessed a traditional claim of a share of the produce, known as the land revenue.
Thomas R. Metcalf- Forging the Raj: essay on the British India in the Heday of Empire. Oxford University Press, 2005 (First published), Pg No. 41

ऐसा करते हुए वे (ब्रिटिश) किसी वर्ग के वर्चस्व की स्थापना सुनिश्चित कर रहे थे। कहना न होगा कि भूमि नीति (Land policy) ने भारतीय समाज के भीतर शक्ति के वितरण को इस तरह प्रभावित किया कि संभवत; वास्तव में यह सामाजिक परिवर्तन के अत्यंत प्रभावशाली घटक के रूप में सामने आया जिसके दरवाजे ब्रिटिश ने 19वीं शताब्दी में खोल दिये थे।"[22]

इस प्रकार अंग्रेजों की भूमि-नीति (Land policy) सामाजिक परिवर्तन की प्रधान कारक (Key factor) साबित हुई। चूँकि अब तक भारतीय शासन में राजस्व का अधिकांश हिस्सा भू-राजस्व से आता था। अत: अंग्रेज इसकी अनदेखी नहीं कर सकते थे लेकिन राजस्व वसूलने के लिए जिस मूलभूत संरचना की आवश्यकता थी वह रातों-रात खड़ी नहीं की जा सकती थी। परिणामत: परंपरा से चली आती प्रणाली को स्वीकृति प्रदान करनी पड़ी। इसके लिए "ब्रिटिश जिला अधिकारियों के सामने बड़ी संख्या में लिपिक, चपरासी और 'स्क्राइब्स' की तत्काल नियुक्ति का कार्य सामने आन पड़ा। कुछ जवाबदेही वाले पदों पर उनको कुछ भारतीयों की भी नियुक्ति करनी पड़ी जैसे अमील या तहसीलदार (स्थानीय कर संग्रहकर्ता), सरिस्तादार (अभिलेख रखनेवाला और प्रधान लिपिक) और कानून अधिकारी।"[23] अत: अंग्रेजों की यह मूलभूत संरचना (Basic infrastructure) परंपरा से चली आती आधार भूमि पर निर्मित हुई। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि अंग्रेजों ने राजस्व वसूली के लिए पारंपरिक आधारभूत संरचना को ग्रहण किया लेकिन भूमि-नीति (Land policy) में व्यापक फेरबदल किये, उसे यथावत् स्वीकार नहीं किया। यद्यपि यह परिवर्तन अधिकाधिक राजस्व उगाही और ब्रिटिश सत्ता के प्रभाव विस्तार के हित को ध्यान में रखकर किया गया था, फिर भी उसके कुछ सार्थक परिणाम भारतीय पक्ष में रहे।

---

22. The Government of India traditionally derived most of its revenue from the land. when the British came to power, in order to collect the revenue they had of necessity to record and define the rights in land of the various classes of society. This responsibility gave to the British an instrument of great power in shaping the structure of Indian society; for, as they bestowed the rights and privileges at their disposal on one class or another, they could virtually ensure the dominance of that class. Indeed Land policy, through its influence on the distribution of power within Indian society, was perhaps the one really effective organ of social change open to the British in the nineteenth century. Thomas R. Metcalf-Forging the Raj, O.U.P 2005, Pg no. (25-26)

23. British district officials were faced with the immediate task of recruiting a large number of clerks, scribes and peons. They also had to employ some Indians in responsible positions as amils or tahsildars (locals tax collectors), sarristadars (record keepers and head clerks) and law officers. The Bernard Cohn Omnibus – O.U.P., 2004, Pg. no. 329.

अंग्रेजों ने 1793 में इस्तमरारी बन्दोबस्त कानून लागू किया। इस कानून के अनुसार "सार्वजनिक भूमि उन जमींदारों या कर वसूलने वालों के हाथ में पहुँच गयी, जो वसूली का एक निश्चित हिस्सा सरकार को देने की शर्त मानने को तैयार थे।"[24] 1795 में भू-राजस्व कर स्थानीय बंदोबस्ती के द्वारा अंग्रेजों ने उन्हें सौंपा, जिन्हें वे जमींदार मानते थे। कर अदा न कर पाने और वंश परंपरा के अंतर्गत जो जमींदार माने जाते थे, उनके मध्य भूमि अधिकारों की बंदोबस्ती न कर पाने की स्थिति में अंग्रेजों ने भूमि को बेचना आरंभ किया।"[25] भूमि जब विक्रय की वस्तु हो गई तो भारतीय सामाजिक संरचना में कई बदलाव देखने को मिले। कई जगहों पर पुराने जमींदार वर्ग निष्प्रभावी होते चले गये और नये जमींदार वर्ग का अभ्युदय हुआ। भूमि जब खरीद-फरोख्त की वस्तु हो गयी तो भूमि की माप (अमीन) और निबंधन (Registry) से जुड़े लोगों की आवश्यकता बढ़ी। मुगल काल में फारसी राजभाषा थी। अत: राज-काज से जुड़े काम इसी भाषा में होते थे। राज-काज और रोजगार की भाषा होने के कारण इसका ज्ञान गैर-मुस्लिम कायस्थों और कश्मीरी पंडितों ने भी प्राप्त किया। इसका प्रभाव उन्नीसवीं शती के अंत में उत्तर भारत में देखने को मिला। "उत्तर भारत में सबसे पहले जातीय संगठन के उदय और निर्माण का नेतृत्व कायस्थों (1873/ 1887) और कश्मीरी पंडितों (1887) के समुदायों की ओर से देखने को मिला, यह उन समय घटित हो रहे एक प्रकार के सामाजिक परिवर्तन का प्रत्यक्ष परिणाम था।[26]

बहरहाल, जहाँ पुराने जमींदार अपदस्थ हुए थे और नया जमींदार वर्ग उभरा था, वहाँ ये जानना जरूरी हो जाता है कि इस नये जमींदार वर्ग में कौन शामिल थे? इतिहासकार सतीश चंद्र ने अठारहवीं सदी में भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रवृति का विश्लेषण करते हुए एक महत्वपूर्ण संकेत दिया है; "स्रोतों से मालूम होता है कि अवध में यह रिवाज हो गया था कि जब भू-राजस्व बाकी पड़ जाता था तो उसका भुगतान परिवार का साहूकार करता था। अगर जमींदार या ताल्लुकेदार (यह ऐसे लोगों का एक नया वर्ग था जो बहुत से जमींदारों द्वारा भू-राजस्व वसूली के अनुबंध

---

24. के०दामोदरन - भारतीय चिंतन परम्परा, पी.पी.एच, नई दिल्ली, 2001, पृ.सं. 343-344

25. The British created a market in land by making land revenue settlement permanent in 1795, by giving title to land to those whom the British considered Zamindars by using land sales to realize deliquent tax payments; and by failing to settle land rights within linages which were recognized as Zamindars. The Bernard Cohn Omnibus- O.U.P., 2004, Pg No. 335.

26. The emergence of caste associations with leaders from communites like the Kayasthas (1873/1887) and Kashmiri pandit's (1887) among the first to form such associations in northern India, were a direct result of the sort of social changes happening at the time. Sanjay Joshi - Fractured Modernity, O.U.P. 2005, Pg No. 29

पर लिए गए किसी इलाके या तालुक्के के भू-राजस्व की अदायगी का जिम्मा अपने हाथों में लेता था भू-राजस्व की अदायगी के लिए पर्याप्त राशि नहीं दे पाता था तो साहूकार पैसे से भुगतान कर देता था और जब जमींदार या ताल्लुकेदार के पास पैसा आ जाता था तब वह अपना हिसाब माहवारी एक प्रतिशत से लेकर कभी-कभी तीन प्रतिशत तक के ब्याज के साथ पूरा कर लेता था।... यह स्पष्ट नहीं है कि पैसेवाले लोगों ने जमींदारों की खरीदारी में दिलचस्पी लेना शुरू किया था या नहीं। इस काल में जमींदारियों की अपेक्षाकृत अधिक बिक्री के प्रमाण मिलते हैं, लेकिन ये जमींदारियाँ आम तौर पर छोटी-छोटी होती थी। जमींदारियों का विक्रय मूल्य उससे प्राप्त सालाना राजस्व का लगभग केवल ढाई गुना हुआ करता था। इससे लगता है कि इन जमींदारियों से होनेवाली आमदनी बड़े-बड़े साहूकारों को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए पर्याप्त नहीं थी। इसका एक मात्र उल्लिखित अपवाद पंजाब के एक खत्री व्यापारी द्वारा वर्धवान राज की खरीदारी था।"[27] उपर्युक्त बातें दर्शाती हैं कि "एक वस्तुनिष्ठ कारक जो औपनिवेशिक भारत में मध्यवर्ग पद के अंतर्गत आनेवाले अधिकांश लोगों के मध्य अंतर को दिखलाता है कि वे समाज के ऊँचे स्तर से आते थे, न कि उच्चतम से।"[28]

जैसा कि ऊपर की बातों से स्पष्ट होता है कि साहूकार जमींदारियाँ खरीदने की बजाय सूद पर पैसे लगाकर और व्यापार के माध्यम से मुनाफा कमाना चाहते थे तो सवाल उठता है कि इन जमींदारियों को खरीद कौन रहा था? इसका जवाब बर्नार्ड कुहन ने अभिलेखों और ऐतिहासिक दस्तावेजों के हवाले से विस्तार से दिया है।

"इस समय भारतीयों के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण पदों के रूप में राजस्व-सेवा के द्वार खुले थे। 1805 ई० तक तहसीलदार के रूप में भारतीयों का पूर्ण नियंत्रण प्रशासन और राजस्व उगाही के क्षेत्र में था। यहाँ तक कि बनारस की प्रशासनिक व्यवस्था अंग्रेजों के द्वारा हस्तगत कर लिये जाने के बावजूद स्थानीय स्तर पर कर-संग्रह का कार्य पुराने अमीलों के हाथ में ही रहा, जो अब तहसीलदार के नाम से जाने जाते थे। तहसीलदारों का कार्य था कि राजस्व-दाताओं से कर-संग्रह कर उसे जिलाधीश के कोषागार की ओर बढ़ा दें। उन्हें वेतन नहीं दिया जाता था, लेकिन जमा की गयी राशि का 11½प्रतिशत कमीशन के तौर पर प्राप्त होता था। उन्हें पुलिस बल भी मुहैया कराया गया और वे जिले में न्याय-व्यवस्था बनाये रखने को कटिबद्ध थे।... 1797-1805 के दौरान अपने अधिकारिक पद का लाभ उठाते

---

27. सतीश चन्द्र - मध्यकालीन भारत, जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2005, पृ०सं० 431

28. The one ojective factor that distinuighsed most people who come to be termed middle class in colonial India, was the fact that they belonged to the upper starta of society, but not at the apex. Sanjay Joshi - Fractured Modernity, O.U.P., 2005, Pg no.7

हुए इन्होंने भारी मुनाफा कमाया क्योंकि, पहली बात तो यह कि, पुलिस के बल पर और लूट-खसोट के आधार पर वे 11½% से ज्यादा लाभ अर्जित कर पाने में सक्षम थे और आगे चलकर जो बात ज्यादा महत्वपूर्ण साबित हुई, वह यह कि गैरकानूनी तरीके से बलपूर्वक बकाया राजस्व के नाम पर अपने मातहतों को जमीन बेचने को बाध्य करने की स्थिति में थे, साथ ही लाभदायी भू-सम्पत्तियों को छद्म नामों से खरीदने में भी सक्षम थे। चूँकि तहसीलदारों को नियंत्रण भूमि के 'रिकार्ड' और राजस्व से जुड़े आंकड़ों पर होता था, वे इस बात से अच्छी तरह परिचित थे कि कौन सी भू-सम्पत्ति का मालिकाना हक उनके लिए लाभदायी होगा। चूँकि वे उसके कर-निर्धारण के साथ ही साथ सारे कानूनी दाँव-पेंच से परिचित थे और गैर-कानूनी अधिकारों से लैस भी इसलिए बेहद कम समय में व्यापक भू-सम्पत्ति अर्जित कर पाने में वे सफल रहे।"[29]

आगे चलकर ईस्ट इंडिया कंपनी की भूमि संबंधी नीतियों के फलस्वरूप इस वर्ग के लिए और अनुकूल परिस्थितियाँ निर्मित होती चली गयीं। जिससे 1840 ई० तक एक नया भूस्वामी वर्ग विकसित हो गया। 1840 के पहले जहाँ फारसी राजकाज की भाषा होने के कारण रोजगार प्राप्त करने का प्रमुख माध्यम थी वहीं "1840 के बाद, प्रशासन में अंग्रेजी के उपयोग पर लगातार बल दिया जाने लगा।"[30] "शिक्षा सर्वाधिक महत्वपूर्ण और बिकाऊ कौशल हो गयी.... कम से कम उत्तर भारत में, उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में इन परिवारों (जिनकी पारिवारिक परंपरा शैक्षणिक उपलब्धियों से जुड़ी थी) के लड़के अंग्रेजों द्वारा भारत में स्थापित स्कूलों, कॉलेजों

---

29. The most important posts open to Indians at this time were in the revenue service. As tehsildars in the period until 1805, Indians had almost complete power over the police and the collection of revenue. Evern after the British took over the direct administration of the Banaras province tax collection at the local level was left in the hands of the old amils. Who were now called tahsildar. It was the duty of the tahsildar to collect the taxes from the revenue payers and to pass it on to the collector's treasury. They were not paid a salary, but an 11½ percent commission on what they collected. They also had police powers and were responsible for the maintenance of law and order in the district. During the period 1797-1805 they made huge profits out of their official positions because in the first place, they were able to get more than their 11½% profit through extortion and the use of their police powers, and, more important in the long run, they were able through illegal means to force lands to be sold for the arrears of revenue and were able to purchase very profitable estates under fictious names. Since the tahsildar controlled the land records and the revenue recong and knew well which estates were profitable to their owners because they were under-assessed and since they knew all the legal manoeuvers and also had great illegal powers, they were able to acquire large estates in a very short time. The Bernard Omnibus – Oxford University Press, 2004, Pg No. 331.
30. After 1840, with a growing emphasis on the use of English in the administration. The Bernard Cohn Omnibus- O.U.P., 2004, Pg no. 338.

की ओर आकर्षित हुए और उनमें से कुछ तो ऊँची डिग्री प्राप्त करने के लिए इंग्लैंड चले गये।"[31] अंग्रेजी पढ़ी-लिखी पीढ़ी के सामने फारसी भाषा वालों की अपेक्षा अब (1850 के बाद) कहीं बेहतर रोजगार के अवसर उपलब्ध थे। "अंग्रेजी कानूनी पेशा अपनाने के लिए भी पारपत्र (पासपोर्ट) थी, जो पारंपरिक कर्मचारी समुदाय में शामिल युवाओं को आशापूर्ण संभावनाओं का प्रस्ताव दे रही थी। पहले वकालत में ब्रिटिश विधिवक्ता का वर्चस्व था लेकिन जल्द ही दूसरी पंक्ति के भारतीय विधिवक्ताओं का उदय हुआ, जिन्हें अधिवक्ता या वकील कहा जाता था। इनमें से कई ने प्रिवी कौंसिल घोषणापत्र की न्यायिक जटिलता पर स्वामित्व प्राप्त कर रुपया-प्रतिष्ठा दोनों कमाया।"[32]

भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद की सर्वाधिक चिरस्थायी और दर्शनीय उपलब्धि 'नेटिव्स एलीट' का अपनी विशेषताओं के साथ निर्माण है। 1835 के आस-पास लार्ड मैकाले ने बिना किसी दुविधा के ऐसा करने की मंशा जाहिर की। लार्ड मैकाले ने भारतीय शिक्षा के प्रारूप पर कहा 'हमलोग वर्तमान में अपना श्रेष्ठ एक ऐसे वर्ग के निर्माण में लगाए, जो हमारे और उन लाखों लोगों के बीच दुभाषिये का काम करे। ऐसे व्यक्तियों का वर्ग जो रक्त और वर्ण से भारतीय हो लेकिन व्यवहार-कौशल में अंग्रेज।'[33] मैकाले की शिक्षा नीति और गिलक्राइस्ट के प्रयत्नों से 'भारतीय मध्य वर्ग' का विकास हुआ। इस प्रक्रिया में तेजी और समाज के अन्य तबकों में इसका विकास चार्ल्सवुड की शिक्षा नीति से हुआ। "सर चार्ल्स वुड का 1854 ई० का 'डिस्पैच' जिसने पहली बार निजी एवं मिशनरी सहायता से जन शिक्षा की आवश्यकता को पहचाना और चयनित शिक्षा की नीति को छोड़ दिया, जिसे

---

31. Education was the most important and marketable skill, with family traditions stressing educational achievements. In north India at least, in the second half of the nineteenth century sons of these families gravitated towards the schools and colleges set up by the British in India, and some even went to England to pursue higher degrees." Sanjay Joshi – Fractured Modernity, O.U.P., 2005, Pg No. 7
32. English was also a passport to enter the legal profession which offered promising opportunities to young men in the traditional service communities. Earlier the judiciary was dominated by British barristers; but soon a second tier of Indian lawyers, called Pleaders or vakils, emerged, many of whom found both money and recognition by mastering the judicial intricacies of Privy Council pronouncements. Pawan K Verma – The Great Indian Middle Class, Penguin Books, 1999, Pg. No. 4
33. Lord Macaulay as far back as 1835. In his minute on Indian Education, Macaulay said : We must at present do our best to form a class who may be interpreters between us and the millions we govern a class of persons, Indian in blood and colour, but English in taste. Pawan K Verma – The great Indian Middle class, Penguin Books, 1999, Pg. No. 2.

'छनन सिद्धांत' (Filtration theory) कहते हैं।"[34] इससे शिक्षा पर ऊँचे वर्ग का एकाधिकार टूटा और शिक्षा जन (Mass)के लिए सुलभ हुई।

मध्यवर्ग के उदय, विकास एवं आकार ग्रहण करने की प्रक्रिया का एक कच्चा खाका इस तरह हमारे सामने आता है। यह रेखांकन मध्यवर्ग की अवधारणा को पूरी तरह से स्पष्ट नहीं करता क्योंकि आधुनिकता की तरह 'मध्यवर्ग' की अवधारणा भी लगातार गतिशील रही है जैसे आधुनिकता के कुछ लक्षणों के आधार पर आधुनिकता की उपस्थिति भारतीय समाज में पूर्व औपनिवेशिक-काल में दिखलायी गयी है, उसी तरह मध्यवर्ग की अपनी-अपनी समझ के आधार पर उसके उदय या उपस्थिति को पूर्व औपनिवेशिक काल में दिखलाने का प्रयत्न किया गया है। मसलन् बकौल सतीश चन्द्र "अगर मध्य वर्ग का मतलब ऐसे लोगों का वर्ग है जो सामंती संपत्ति में कोई हिस्सा नहीं पाते थे, बल्कि जिन्हें अपनी पेशागत सेवाओं के लिए पारिश्रमिक मिलता था तो शहरों में हमें पेशेवर और सेवा प्रदान करनेवाले समूहों का एक विशाल वर्ग देखने को मिलता है।"[35] यह बात वे औरंगजेब के शासन काल (1707 ई०) के संदर्भ में कर रहे हैं। सतीश चंद्र जिस मध्यवर्ग की बात कर रहे हैं, उसे 'मध्य वित्त वर्ग' कहना ज्यादा सुविधाजनक होगा। यह पद (Term) भी उन्हीं का है, जिसका प्रयोग वे मुगलकाल के संदर्भ में करते रहे हैं।

मध्यवर्ग की अवधारणा में 'आधुनिक' विशेषण छिपा हुआ है। मध्यवर्ग का जो सामान्य बोध (common sense) विकसित हुआ है, वह 'आधुनिक मध्यवर्ग' की विशेषताओं को दर्शाता है। इसकी विशेषताएँ क्या रहीं? यह किन सामाजिक घटकों के मेल से बना ओर इसकी भूमिका क्या रही? इन सारे सवालों और इनसे जुड़े अन्य पहलुओं की व्यवस्थित चर्चा संजय जोशी ने अपनी पुस्तक 'Fractured Modernity : Making of a middle class in colonial North India' (2001)' में की है। संजय जोशी का यह शोध कार्य लखनऊ प्रदेश की 'केस स्टडी' (विषय अध्ययन) है लेकिन मध्यवर्ग की जिस अवधारणा का उल्लेख यहाँ है, वह अन्य हिन्दी प्रदेशों के संदर्भ में भी लागू होता है। मध्यवर्ग के स्वरूप और संरचना पर प्रकाश डालते हुए इस पुस्तक में मध्यवर्ग से जुड़ी जो प्रमुख बातें उभर कर आती हैं वह यह कि -

औपनिवेशिक काल में जिस मध्यवर्ग का निर्माण हुआ उसमें ऊँची जाति के हिन्दू और मुसलमान (अशरफ) शामिल थे न कि उच्चतम श्रेणी के लोग। "ये ऊँची जाति के हिन्दू और मुसलमान ज्यादातर देशी शासकों के दरबारों या बड़े जमींदारों के

---

34. योगेन्द्र सिंह - भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर, 2006, पृ०सं० 179

35. सतीश चन्द्र - मध्यकालीन भारत, जवाहर पब्लिसर्श एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2005, पृ०सं० 433

यहाँ पारंपरिक कर्मचारी समुदाय के रूप में थे। इसका यह मतलब नहीं है कि इनके पास प्रचुर आर्थिक संसाधन थे बल्कि औपनिवेशिक काल में सार्वजनिक बहसों में भाग लेने के लिए इन्होंने पर्याप्त शैक्षणिक कौशल भी अर्जित किया था।"[36]...

....औपनिवेशिक लोकवृत्त (colonial public sphere) में सक्रिय अधिकांश लोग कुछ सामान्य आर्थिक पृष्ठभूमि का साझा करते थे क्योंकि उनमें से ज्यादातर ऐसे परिवारों से थे, जिनकी आर्थिक स्थिति ठीक-ठाक थी, लेकिन इतनी भी नहीं कि घर बैठे खा सकें। जैसा कि बड़े जमींदारों को आनुवांशिक तौर पर और देशी कुलीनों को विरासत में प्राप्त थे।.....

.....औपनिवेशिक भारत में मध्यवर्ग को अलगानेवाला एक वस्तुनिष्ठ संकेतक इस वर्ग का पाश्चात्य शैली की शिक्षा से संपर्क था। लेकिन महज अंग्रेजी का ज्ञान, पारिवारिक पृष्ठभूमि की समानता, या पश्चिमी शिक्षा के द्वार का उनके लिए उद्घाटन इन अशरफों, कायस्थों, बाह्मणों, क्षत्रियों और बनियों को उत्तर भारत में मध्य वर्ग में रूपांतरित नहीं कर सका। इसकी प्राप्ति सांस्कृतिक - ठेकेदार बन कर ही की जा सकी।"

बहरहाल, मध्यवर्ग के लक्षण के तौर पर उनके आय-व्यवसाय और आर्थिक स्थिति की गणना की जा सकती है लेकिन औपनिवेशिक भारत में मध्यवर्ग के भेदक लक्षणों के तौर पर सांस्कृतिक ठेकेदारी (Cultural entreprenurs) और स्वयं को लोकाचार के अनुरूप ढालने (Self fashioning) की प्रवृत्ति को संजय जोशी सामने रखते हैं। इनके अनुसार औपनिवेशिक काल में मध्यवर्ग एक सामाजिक शक्ति के रूप में सामने आता है जिसका निर्माण जमींदार, उद्योगपति (व्यापारी), पेशेवर

---

36. Most of them were upper-caste Hindus or Ashraf (high-born) Muslims, and many come from the so-called 'service communities,' that is, from families and social groups who had traditionally served in the courts of indigenous rulers and large landlords. Not only did this mean that such men had sufficient educational training to shape and participate in public debates during the colonial era...

    '..Many of the men active in the colonial public sphere did share some similarities in economic background, because for most part they came from families which were financially comfortable, but not rich enough to not need to earn a living-quite unlike the large hereditary landlords or the remnants of an Indigenous axistocracy.

    ...Thus, another objective indicator, distinguishing the middle class in colonial India was its exposure to western-style education. But merely the knowledge of English, similarily of famnily background, or even exposure to western education did not transform Ashrafs, Kayastha,s Brahmins, Khatris or Banias of north India into a middle class. This was achieved through cultural entrepreneuriship. Sanjay Joshi - Fractured Modernity, Oxford University Press, 2005, Pg No. 7.

(वकील), नौकरशाह, शिक्षक, कवि और उपन्यासकार के योग से हुआ था। "मध्यवर्ग का प्रभुत्व सापेक्षिक रूप से एक लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम था, जिसने नयी प्रकार की राजनीति का निर्देश दिया था, सामाजिक आचरण के मर्यादाओं की पुनर्संरचना की, नये मूल्यों को सार्वजनिक, और निजी जीवन के लिए निर्देशित किया। इन सभी रूपांतरणों का प्रभाव, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों से जुड़े संदर्भों में देखने को मिला साथ ही मध्यवर्ग के अंतर्निहित अंतर्विरोध भी सामने आये।"[37]

मध्यवर्ग और 'आधुनिकता' की अवधारणाओं में कुछ बेहद दिलचस्प समानतायें देखने को मिलती हैं। पहली तो यह कि दोनों यूरोपीय अवधारणायें हैं, दूसरी दोनों गतिशील अवधारणायें हैं इसलिए इनकी निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकी है, तीसरी दोनों का उदय औपनिवेशिक काल में देखने को मिलता है, चौथी आधुनिकता और मध्यवर्ग दोनों का उदय अस्तित्वमान आधारों और नयी संभावनाओं के मेल से हुआ है, पांचवीं दोनों का स्वरूप हर दौर में बदलता रहा है और छठी दोनों के अपने-अपने अंतर्विरोध हैं।

"केवल भारत में ही नहीं विश्व के दूसरे अधिकांश भागों में मध्यवर्ग ने आधुनिक को परिभाषित करने में निर्णायक भूमिका निभायी है।"[38] अतः आधुनिकता को समझने के लिए मध्यवर्ग को समझना अनिवार्य है। मध्यवर्ग आधुनिकता का जनक और प्रतिफल दोनों है। पूरे विश्व में मध्यवर्ग और आधुनिकता के निर्माण की प्रक्रिया एक-सी रही है अर्थात् पारंपरिक अस्तित्वमान आधारों और नये अवसरों पर सामाजिक और राजनीतिक आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को ढालकर। लेकिन इनका स्वरूपगत और संरचनागत विकास इनकी परिस्थितियों पर निर्भर रहा है। इस प्रसंग में भारतीय मध्यवर्ग और पश्चिमी मध्यवर्ग की तुलना से भी उपयोगी निष्कर्ष निकल सकते हैं। पश्चिमी मध्यवर्ग का उदय औद्योगिक परिवर्तन और विदेशी व्यापार की चुनौतियों से टकराता हुआ, जोखिम उठाकर ही हुआ जबकि भारतीय मध्यवर्ग अधिकांशतः सरकारी नौकरियों से ही उभरा है। बकौल बी.बी. मिश्र "ब्रिटिश राज्य के परवर्ती काल में जो मध्यवर्ग संवर्द्धित हुआ, वह उद्योग के विकास की देन न

---

37. This middle class ascendancy was a product of a relatively long historical process, and was predicated on the creation of new forms of polities, the restructuring of norms of social conduct, and the construction of new values guiding domestic as well as public life. All these transformation, whether political or social, or cultural, reflected the concerns of, and indeed the contradictions constitute of, the middle class. Sanjay Joshi – Fractured Modernity – O.U.P., 2005, Pg. No. 1.

38. Not only in India, but in the most other parts of the world, the middle classes played a crucial role in defining what it meant to be 'modern'. Do, Pg. No. 1.

होकर माध्यमिक तथा उच्चतर शिक्षा की वृद्धि की उपज था। अत: मध्यवर्ग का अधिकांश बुद्धिकर्मी वर्ग सिविल नौकर, अन्य वेतन भोगी कर्मचारी तथा विद्यानुरागी पेशों के सदस्यों से निर्मित हआ। वह चाहे अफसर वर्ग हो या अध्यापक - प्राध्यापक वर्ग, वकील हो या डॉक्टर अभी भी अधिकांश मध्यवर्ग नौकरी-अभिमुख और साहब ग्रंथि का शिकार है और मानसिक रूप से गुलाम है। इसीलिए इस वर्ग के बुद्धिजीवी और लेखक ही नहीं, व्यापारी और नेता भी सुख, सुविधा और सुरक्षा तथा प्रतिष्ठा और व्यवस्था अभिमुख हैं। वह 'इनीशिएटिव' ओर 'इंटरप्रेन्योरशिप' उसमें लगभग गायब है जो आधुनिकीकरण के लिए जरूरी कहे गये हैं और इसके परिणाम आधुनिकता ही नहीं, आधुनिकीरण के प्रति उसके रूख में भी देखे जा सकते हैं।"[39]

क्या मानसिक गुलामी, 'इनीशिएटिव' ओर इंटरप्रेन्योरशिप' का अभाव केवल औपनिवेशकालीन मध्यवर्ग की विशेषता है? "भारतीय राष्ट्रवाद के संशोधनवादी व्याख्या पर काम करते हुए कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के इतिहासकारों ने शिक्षित भारतीयों को 1970 के दौर में अन्य शक्तिशाली लोगों के 'ग्राहकों' (Clients) के तौर पर देखा है और किसी स्वतंत्र राजनीतिक कार्यसूची (agenda) का उनके पास सर्वथा अभाव है। (Gallaghier et al. 1973; Seal 1973)।"[40] हाल के भारतीय मध्यवर्ग पर मिशेलगुगलिएल्मो टोरी (Michelguglielmo-Torri) तर्क देते हैं कि "अगर आधुनिक और राजनीतिक रूप से वर्चस्वशाली मध्यवर्ग का अस्तित्व था (भारत में) तो सामाजिक सुधारों का क्रियान्वयन हो गया होता (इसके).... सांस्कृतिक वर्चस्व के अभिव्यक्ति के तौर पर"[41] हरजोत ओबेरॉय मध्यवर्ग को एक ऐसी 'कैटेगरी' के तौर पर देखते हैं जो यूरोप में औद्योगीकरण के ऐतिहासिक अनुभव का परिणाम है और "दूसरी तरफ भारत में छोटे नौकरशाह और शहरी पेशेवर अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में केवल औद्योगीकरण का ख्वाब देख सकते हैं इसलिए यह अनुत्पादक वर्ग बिल्कुल भी मध्यवर्ग के लिए सटीक नहीं है।"[42]

---

39. धनंजय वर्मा - आधुनिकीकरण और आधुनिकता, समकालीन सृजन, अंक - 21, 2002, संपादक - शंभुनाथ, पृ०सं० 82

40. Working on revisionist interpretations of Indian Nationalism, historians from Cambridge University in the 1970s saw educated Indians acting as 'clients' of other powerful people and completely without an independent political agenda. (Gallayher et al. 1973; Seal 1973), Sanjay Joshi- Fractured Modernity, O.U.P, 2005, (Pg. No. 4-5).

41. Michelguglielmo torri argues that if a 'modern and politically dominant middele class had existed [in India], the social reforms could have been implemented as an expression of .....[its] cultural hegemony." Sanjay Joshi – Fractured Modernity, O.U.P, 2005, Pg. No. 5.

42. Harjot Oberoi rejects the applicability of the term middle class to Indian history becuase he sees this category as a product of Europe's historical

सामाजिक विज्ञानों में आधुनिकता के वर्तमान मानकों पर भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थिति खरी नहीं उतरती है। इसलिए चाहे वह इतिहासकार संजय जोशी (फ्रेक्चर्ड माडर्निटी) हों या समाजशास्त्री दीपांकर गुप्ता (मिसटेकेन माडर्निटी), इनके विचारों में अब तक आधुनिकता सही और सच्चे अर्थों में भारत में नहीं आई है। इनके चिंतन की इस परिणति का एक कारण भारतीय आधुनिकता को यूरोपीय प्रतिमानों के आधार पर मूल्यांकित करने का प्रयत्न तो है ही और दूसरी, स्वयं भारतीय आधुनिकता की अपनी सीमायें भी हैं।

औपनिवेशिक भारत में जिनका जिक्र करते हुए बी.बी. मिश्र ने 'इनीशिएटिव' और 'इंटरप्रेन्योरशिप' का अभाव और साहब ग्रंथि का शिकार बताया क्या वे ही मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे? और क्या पूरे औपनिवेशिक काल में मध्यवर्ग इस मानसिक गुलामी का जुआ धारण किये रहता है, या उसे उतार भी फेंकता है? औपनिवेशिक भारत में शुरूआती दौर के 'कर्मचारी समुदाय' इस साहब ग्रंथि से जरूर पीड़ित थे। लेकिन गुजरते समय के साथ इस मध्यवर्ग की कई धड़ें नजर आने लगीं। 1820-25 के आसपास जहाँ सरकारी नौकरी पेशा वाला तबका सुख-सुविधा -प्रतिष्ठा-सुरक्षा के कारण व्यवस्था अभिमुख था, वहीं दूसरी ओर बंगाल में स्थायी बंदोबस्ती वाले जमींदारों की लगान मुक्त जमीनें छीनने की कोशिश के कुछ दूसरे परिणाम सामने आ रहे थे- "गौरतलब है कि भारत का प्रथम आधुनिक-राजनीतिक संगठन-लैंडलार्ड्स सोसाइटी-स्थापित किया गया। इस वर्ग के जमीदारों में से अधिक संस्कारवान लोगों ने काफी हद तक पश्चिम की राजनीतिक संस्कृति को ग्रहण किया था। इसलिए इस वर्ग ने अपनी सोसाइटी के अंदर एक ऐसी मंडली बना ली जो ब्रिटिश भारतीय सरकार पर दबाव डालने के लिए संगठन के आधुनिक सिद्धांतों का सहारा लेती थी। इस सोसायटी की स्थापना के पूर्व ही अपेक्षाकृत अधिक शिक्षित और सुसंस्कृत जमींदार ऐसे अनेक क्षेत्रों में सक्रिय हो चुके थे, जिन्हें राजनीति शब्द के व्यापकतर अर्थों में राजनीतिक कहा जा सकता है।"[43] यह वही भू-स्वामी वर्ग था जिसे अंग्रेजों ने अपने और बहुसंख्यक किसान जनता के बीच खड़ा कर रखा था "ताकि किसानों के क्रोध का निशाना जमींदार बनें अंग्रेज नहीं और जमींदारों को

---

experience of industrialization. In Indian on the other hand petty bureaucrats and urban professionals could at best only dream of industrialization; thus this non-productive class could not appropriately be named middle class. Do, Pg. No. 5

43. रविंदर कुमार - आधुनिक भारत का साामजिक इतिहास, (अनुवाद-आदित्यनारायण सिंह) ग्रंथ शिल्पी, (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, पृ.सं. 11

किसानों के हमले से बचाने के लिए अंग्रेजी फौज तैयार रहती थी।"[44] लेकिन जब जमींदारों के अधिकार छीने जाने लगे तो असंतोष की भावना इनके भीतर भी पनपी।

19वीं सदी के अंत में ब्रिटेन में लोक-वृत्त (Public sphere) जैसी कोई चीज रूप ग्रहण कर रही थी। "पश्चिमी शिक्षा प्राप्त भारतीयों ने इस प्रकल्प (मॉडल) को अपनी परिस्थितियों के अनुकूल पाकर अपनाने में पूरी तत्परता दिखलायी और स्वयं को, सामंती और क्षयिष्णु देशी अभिजनों से अलगाते हुए सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक कार्यसूची (agenda) के साथ, मध्यवर्ग के रूप में प्रस्तुत किया। साथ ही साथ निम्न वर्गों में उत्थान और अनुशासन की जरूरत को भी रेखांकित किया।"[45] मध्यवर्ग का एक धड़ा वह भी था जो कहीं दबे-छिपे तो कहीं खुले रूप में अंग्रेजी राज की आलोचना कर रहा था। मध्यवर्ग की भूमिका और अंग्रेजों की नीतियों में 1857 के आंदोलन के बाद कितना परिवर्तन आया? यह शोध का विषय है, लेकिन परिवर्तन आया इसके कुछेक संकेत यहाँ दिये जा रहे हैं।

iii) 1857 और मध्य वर्ग

1857 का स्वाधीनता संग्राम केवल चर्बी लगे कारतूसों के कारण नहीं हुआ था, बल्कि उसके मूल में कई कारण थे। यथा-डलहौजी की हड़प नीति (Doctrine of laps), अवध साम्राज्य का अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना, भारतीय उद्योग-धंधों का विनाश, ईसाई धर्म का प्रचार, भारतीय सैनिकों के साथ भेदभाव की नीति और रियासती सेना की समाप्ति।

"सेना में अवध के प्रत्येक कृषक परिवार का कोई न कोई प्रतिनिधित्व करता था, अवध के 75,000 हजार सैनिक सेना में थे।"[46] नयी भूमि नीति से इनका प्रभावित होना स्वाभाविक था। इस आंदोलन में हिन्दू-मुस्लिम जनता विभाजित नहीं थी। आने वाले समय में अंग्रेजी राज के लिए यह सांप्रदायिक एकता सुखद साबित नहीं होने नहीं जा रही थी। परिणामतः अंग्रेजी सरकार ने 'फूट डालो और शासन करो' की नीति अपनायी। सांप्रदायिकता की विषबेल बोयी गयी। बकौल नेहरू

---

44. वीर भारत तलवार - राष्ट्रीय नवजागरण और साहित्य कुछ प्रसंगः कुछ प्रवृत्तियाँ, हिमाचल पुस्तक भंडार, दिल्ली, 1993, पृ०सं० 30

45. Western-Educated Indians were quick to adopt this model to suit their own circumstances and represent themselves as middle class with a social, cultural and political agenda distinct from a 'feudal' or 'decadent' indigenous elite, as well as lower classes in need of disciplining or improvement. Sanjay Joshi – Fractured Modernity, O.U.P, 2005, Pg. No. 8.

46. "Almost every agricultural family in Oudh had a representative in the army; there were 75,000 men from Oudh; Bipan, Chandra – India's Struggle for Independence, Penguin Books, 1989, Pg. No. 35.

"1857 के बाद अंग्रेजी ने हिन्दुओं से ज्यादा मुसलमानों को अपने दमन चक्र का निशाना बनाया। वे मुसलमानों को ज्यादा आक्रामक और जुझारू मानते थे, जिनके पास भारत में अपने विगत शासन की स्मृतियाँ थीं, अत: वे ज्यादा खरतनाक थे।"[47]

औपनिवेशिक काल के इतिहास लेखन में लगातार अंग्रेजों ने यह धारणा बनाने का प्रयत्न किया कि उन्होंने हिन्दुओं को आतंककारी मुसलमानों के शासन से मुक्ति दिलायी (जेम्स मिल)। आज नॉयपाल इस मानसिकता का विस्तार मुगल शासन को भारत के संदर्भ में 'वूंडेड सिविलाइजेशन' कहकर कर रहे हैं।

1857 के आंदोलन के बाद से अंग्रेजों ने हिन्दू और मुसलमानों की समस्याओं को अलग-अलग देखने के लिए प्रतिनिधि चुन लिये। सर सैय्यद अहमद मुसलमानों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। नौकरी में अधिक से अधिक अपने समुदाय की सहभागिता, न्यायालय में फारसी की जगह देवनागरी लिपि को लेकर आंदोलन, हिन्दी-उर्दू विवाद, खड़ी बोली का आंदोलन, नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना आदि ये सभी समस्याओं एवं घटनाओं का यही 1857 के बाद का सांप्रदायिक विभाजन ही रहा।

जहाँ एक ओर 1857 के बाद अवध क्षेत्र और बनारस हिन्दी साहित्य के प्रचार-प्रसार का केन्द्र बनकर उभरा। वहीं दूसरी ओर "नवाबी सरंक्षण प्राप्त लखनऊ ने उर्दू के अच्छे लेखकों को आकर्षित किया।"[48] उर्दू की साहित्यिक और राजनीतिक गतिविधियों के विकास के कारण "लखनऊ शीघ्र ही 'मुस्लिम-राजनीति' कही जाने वाली जैसी चीज का केन्द्र बन गया।"[49] "मुंशी नवल किशोर, जो देश के सबसे प्रसिद्ध प्रकाशक बन चुके थे, उन्होंने लखनऊ से 1858 के आसपास 'अवध अखबार' नाम से एक उर्दू अखबार निकाला। इसे सरकार का भी अच्छा संरक्षण प्राप्त था।"[50]

---

47. After 1857 the heavy hand of the British Fell more on the Muslims than on the Hindus. they considered the Muslims more aggressive and militant. Posessing memories of recent rule in India, and therefore more dangerous. Jawaharlal Nehru – an Autobiography, Allied Publishers private limited. 1962, Pg No. 460.
48. Nawabi patronage had attracted some of the best Urdu writers to Lucknow. Sanjay Joshi – Fractured Modernity, O.U.P., 2005, Pg No. 13.
49. Lucknow now beame an important centre of what came to be known as 'Muslim politics'. Do, Pg. No. 14.
50. Munshi Newal Kishore, who was to become one of the mast famous publishers of the country, began an Urdu newspaper in Lucknow, the Oudh Akhabar, as early as 1858. This too was well patronized by the government. Do, Pg. No. 30.

1857 का वर्ष कई अर्थों में न सिर्फ भारतीय इतिहास में बल्कि हिन्दी साहित्य में भी (जबकि 1857 के आंदोलन का प्रत्यक्ष विवरण और संबंध हिन्दी में बेहद कम देखने को मिलता है) अत्यंत महत्वपूर्ण है। हिन्दी साहित्य में 'जातीय स्मृतियों का बुद्धिसम्मत पुनर्गठन', आत्म को परिभाषित करने और गढ़ने का प्रयत्न (स्वत्व निज भारत गहै), उपनिवेशवाद का विरोध, ऐतिहासिक दृष्टि की प्रतिष्ठा, राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रवाद की भावना का उदय, आधुनिकता के समानांतर भारतीय परंपरा को प्रतिमान के रूप में प्रस्तावित करने का उपक्रम आरंभ होता है। इतना ही नहीं प्रेमचंद ने 1936 में जो 'प्रलेस' के अध्यक्ष पद से कहा था कि "अब साहित्य केवल मन-बहलाव की चीज नहीं है, मनोरंजन के सिवा उसका कुछ और भी उद्देश्य है।"[51] यह कथन 1857 के बाद के हिन्दी साहित्य पर लागू होता है। 1850 के पहले तक रीतिकाल में क्या था? साहित्य 'मन-बहलाव' का ही कार्य कर रही थी। 1857 के बाद साहित्य के क्षेत्र में भी एक 'राजनीतिक सजगता' आती है। "औपनिवेशिक काल में लोक परिचर्चा और बहसों की प्रकृति में गुणात्मक और परिमाणात्मक परिवर्तन होता है और इस परिवर्तन के प्रति इस बहस में भाग लेने वाले पूरी तरह सजग हैं।"[52]

1857 के स्वाधीनता आंदोलन के सामान्यत: कई परिणाम सामने आये, उनमें से दो का उल्लेख इस संदर्भ में आवश्यक है-पहला अंग्रेजों ने भूमि-नीति (Land policy) में परिवर्तन किया, दूसरा भारत से ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन की समाप्ति हुई और सीधे विक्टोरिया-शासन के अधीन भारत आ गया। परिणाम यह हुआ कि इस दौर में मध्यवर्ग के कई रूप अपने अंतर्विरोधों के साथ सामने आये। पहला विक्टोरिया शासन के प्रति विश्वास एवं आस्था रखने के कारण गुणगान में व्यस्त था, दूसरा तटस्थ भाव से अंग्रेजी सरकार के मातहत अपने जीविकोपार्जन में लगा था। इसी में एक महत्वाकांक्षी खेमा भी था, जो अंग्रेजी राज की हर नीति का समर्थन करता था (निज उन्नति के लिए)। कुछ अवसरवादी तत्व भी थे जो सामुदायिक विकास के नाम पर अपनी माँगों को मनवाने में लगे थे जो लगातार राष्ट्रीय एकता में बाधक सिद्ध हो रहे थे। "समुदाय के नाम पर रखी गई मांगें जो किसी भी सामुदायिक समूह के द्वारा रखी गई हों, निष्कर्षत: नौकरियों की माँगें होती थी और ये नौकरियाँ केवल उच्च मध्यवर्ग के मुठ्ठी भर लोगों के लिए थी .... ये संकीर्ण राजनीतिक माँगें अक्सर राष्ट्रीय एकता और विकास के मार्ग में अवरोधक का

---

51. प्रेमचंद - कुछ विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2003, पृ०सं० 9

52. There was a qualitative as well as quantitiative change in the nature of 'public' debates in discussion in the colonial era, and it was a change of which participants in these debates were all aware. Sanjay Joshi – Fractured Modernity O.U.P., 2005, Pg. No. 25.

काम करती थीं, जो इस चतुराई के साथ रखी जाती थीं कि ऐसा प्रतीत हो कि ये विशेष धार्मिक जनसमूह की मांगें हैं।"[53]

ऐसी कोशिशें हिन्दू-मुसलमान दोनों वर्गों की ओर से समान और लगातार रूप से की गई। अंग्रेजों ने जिस 'फूट डालो और राज करो' (Divide and rule policy) की नीति का कुशलतापूर्वक क्रियान्वयन किया था इसको तत्काल उस दौर के मध्यवर्ग के बुद्धिजीवी, साहित्यकार पढ़ पाने में असमर्थ रहे। इसलिए बहुलता ऐसे बुद्धिजीवियों और साहित्यकारों की रही जो अंग्रेजी राज के प्रति, अपने सामुदायिक उन्नति को लेकर आश्वस्त रहने के कारण, आस्था रखते हुए उसकी यथासंभव आलोचना करता था। इनकी मूल चेतना सुधारवाद की थी और सुधारवाद के दायरे के भीतर रहकर ही अंग्रेजी राज की आलोचना ये कर रहे थे।

औपनिवेशिक काल के मध्यवर्ग के अपने अंतर्विरोध रहे हैं, जिनको समझे बिना और जिनकी अनदेखी कर के आधुनिकता की सही समझ विकसित नहीं हो सकती। क्योंकि भारतीय मध्यवर्ग जहाँ एक ओर आधुनिकता का जनक है। वहीं दूसरी ओर मध्यवर्ग के निर्माण में आधुनिकता की कोई कमतर भूमिका हो ऐसी बात नहीं है। औपनिवेशिक आधुनिकता और मध्यवर्ग के अंतर्विरोधों का जितना गहरा अंतर्संबंध है उतना ही गहरा अंतर्संबंध स्वयं औपनिवेशिक काल के उस दौर के अंतर्विरोधों और अंग्रेज सरकार की नीतियों में समयानुसार आनेवाले परिवर्तनों से है। इसलिए किसी प्रवृति की स्पष्ट उपस्थिति को देखकर उसको अंतर्विरोधों को नजरंदाज करने से औपनिवेशिक आधुनिकता की विसंगतियों की सही समझ विकसित नहीं हो सकती है। "इसका एक रोचक उदाहरण इतिहासकार सुधीरचंद्र के काम से मिलता है, जिन्होंने 1981 में उन्नीसवीं सदी के हिन्दी साहित्य में सांप्रदायिक चेतना को रेखांकित किया, लेकिन 1992 में स्वीकार किया कि इस पद्धति से उन्नीसवीं सदी के 'अंतर्विरोधों, अस्पष्टताओं और अनसुलझे तनावों को समझना असंभव है।'[54]

मध्यवर्ग के बदलते स्वरूप और संरचना पर अंग्रेजी राज की नीतियों का प्रभाव देखने को मिलता है। अंग्रेजों के आगमन के पूर्व भारतीय शासन में राजस्व का अधिकांश हिस्सा भू-राजस्व से आता था। अंग्रेजों ने स्वयं अपने शासन का आधार

---

53. Every one of the communal group is, in the final analysis, a demand for jobs, and these jobs could only go to a handful of the upper middle class... These narrow political demands, benefitting at the most a small number of the upper middle classes, and often creating barriers in the way of national unity and progress, were cleverly, made to appear the demands of the masses of that particular religious group. Pavan K. Verma – the Great Indian Middle Class, Penguin Books, Pg. No. 17.

54. पुरुषोत्तम अग्रवाल – विचार का अनंत, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2000 ई० पृ०सं० 22

इसी भू-राजस्व को बनाया। कृषि जितने बड़े पैमाने पर होती भू-राजस्व उतना ज्यादा वसूला जा सकता था। इस बात को ध्यान में रखकर अंग्रेजों ने यहाँ के उद्योगों को सुनियोजित तरीके से नष्ट किया। "विलियम तृतीय के शासन काल में 10वें अध्याय के 11वें और 12वें कानूनों द्वारा यह तय कर दिया गया कि हिन्दुस्तान, ईरान और चीन की कृत्रिम सिल्कों तथा छपी या रंगी छीटों को पहनने पर रोक लगा दी जाय और उन तमाम लोगों पर जो इन चीजों को रखते या बेचते हैं, 200 पौंड का जुर्माना किया जाय।"[55] इतना ही नहीं 1835-40 के पहले तक अंग्रेजी शिक्षा नीति भी एक अलग भूमिका निभा रही थी। "भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना के पूर्व हिन्दू और मुस्लिम शिक्षण संस्थाओं का जो जाल था, वह ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन ने नष्ट कर दिया। 1823 ई० तक कम्पनी शासन के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया। 1822-33 ई० के मध्य शिक्षा के क्षेत्र में कुछ विकास हुआ, पर प्राथमिक शिक्षा या जनशिक्षा की बिल्कुल ही उपेक्षा होती रही।... सरकार की तुलना में ईसाई मिशनरियों ने इस अवधि में जन-शिक्षा के विकास की दशा में अधिक प्रयत्न किये पर उनका कार्यक्षेत्र मुख्य रूप से अहिन्दीभाषी क्षेत्र था। फिर भी आगरा (1813), मेरठ (1815), बनारस (1817) आजमगढ़ और जौनपुर (1831) में ईसाई मिशनरियों ने अपने प्रचार केन्द्र स्थापित किये और इन स्थानों पर इन्होंने स्कूल खोले।"[56] हिन्दी साहित्य के आरंभिक गद्य लेखकों में से कुछ इन स्थानों से ताल्लुक रखते थे। मसलन भारतेंदु हरिश्चंद्र (बनारस), कार्तिक प्रसाद खत्री और लल्लूलालजी आगरा के थे।

1840 के बाद अंग्रेजों की भारत संबंधी सोच में व्यापक परिवर्तन आता है। 1853 को उस वर्ष के तौर पर देखा जा सकता है जहाँ से अंग्रेजों के द्वारा भारत में आधुनिकता के भौतिक आधारों के निर्माण की प्रक्रिया में तेजी आती है। "1853 में रेल लाइन बिछाई गई (बंबई से थाणे तक कुछ महीनों बाद कलकत्ता से हुगली तक) और इसी साल कलकत्ता से आगरा के लिए टेलीग्राफ लाइन भी बिछाई गई। 1854 में बंबई के पारसी सज्जन ने सूती कपड़ा मिल तैयार किया और इसी साल चार्ल्स वुड की 'डिस्पैच' नीति लागू की गई। 1856 में रिसड़ा में अंग्रजों का पहला जूट मिल खुला। 1857 में प्रथम स्वाधीनता संग्राम का बिगुल बजा और इसी वर्ष कलकत्ता, बंबई और मद्रास में विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। साथ ही ईस्ट इंडिया

---

55. By the Act 11 and 12 William III. Cap. 10 it was enacted that the wearing of wrought silks and of printed or dyed claicoes from India, Persia, and China should be prohibited, and a penatly of £ 200 imposed on all person having or selling the same. Marx Engels – The First Indian War of Indepenence 1857-59. Progress publishers, Moscow, 1988, Pg. No. 22.

56. गोपाल राय - हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल पेपरबैक्स, नयी दिल्ली, 2005 ई. पृ०सं० 16

कम्पनी के शासन की समाप्ति के साथ भारत सीधे विक्टोरिया के शासनाधीन हो गया। 1860 में भारत का पहला बजट बना और 1862 ई० में पहली बार रूपया प्रचलन में आया।"[57] आधुनिकता के इन भौतिक आधारों के निर्माण की आवश्यकता क्यों महसूस हुई? क्या अंग्रेजी राज वास्तव में भारत में प्रगतिशील भूमिका निभाने जा रही थी या इसके कुछ और उद्देश्य थे? समाज और साहित्य (विशेषकर हिन्दी साहित्य) पर इसका क्या प्रभाव पड़ा?

जिस अंग्रेजी राज का आधार भू राजस्व था आगे चलकर उसने अपनी नीतियाँ बदली क्योंकि उन्हें अनुभव हो गया कि "औद्योगिक स्वार्थ भारत के बाजार के ऊपर जितने निर्भर होते गये, अंग्रेज उतनी ही अधिक इस बात की आवश्यकता अनुभव करते गये कि उसके राष्ट्रीय उद्योगों को तबाह कर चुकने के बाद अब उन्हें भारत में नयी उत्पादक शक्तियों की सृष्टि करनी चाहिए।"[58] उन्होंने इस पुनर्रचना का कार्यक्रम कई स्तरों पर एकसाथ आरंभ कर दिया। "उन्नीसवीं सदी में अंग्रेजों ने धीरे-धीरे भूमि का सर्वेक्षण करके, राजस्व निर्धारित किया, आधुनिक अधिकारी तंत्र, सेना और पुलिस की स्थापना की, अदालतें स्थापित करके कानून की संहिताएँ बनाई, संचार साधनों यथा रेल, डाक और तार, सड़कों और नहरों का विकास किया, स्कूलों और कॉलेजों की स्थापना की और इन सबके द्वारा एक आधुनिक राज्य की नींव डाली।"[59] "इनके साथ-साथ हर जगह स्थानीय युद्धों की समाप्ति, ठगी का अंत, दासप्रथा का नाश, भूमि के पट्टे संबंधी सुधारों का समावेश, चाय, कॉफी, कपास, तम्बाकू और नील जैसी फसलों के लिए बागानों का प्रारंभ और कस्बों तथा नगरों का विकास इस सब ने अंततः देश के आर्थिक विकास के लिए एक आधार तैयार किया। आधुनिक शिक्षा देने के लिए स्कूल कॉलेजों तथा अदालतों की स्थापना का कार्य जो सिद्धांततः जाति और धर्म के भेदभाव के बिना सबके लिए थे।"[60] निश्चित तौर पर इन सारे कारकों ने मिलकर जो वातावरण तैयार किया वह औपनिवेशिक काल के पहले अनुपलब्ध था।

भारत में राजनीतिक एकता और अपना प्रभुत्व कायम रखने के इस पूरे उपक्रम पर कार्ल मार्क्स की यह टिप्पणी अत्यंत महत्वपूर्ण है कि "पुनर्रचना की पहली शर्त यह थी कि भारत में राजनीतिक एकता स्थापित हो और वह महान मुगलों

---

57. सव्यसाची भट्टाचार्य- आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास राजकमल पेपर बैक्स 2004, सातवीं आवृति, पृ०सं०-14-15

58. कार्ल मार्क्स फ्रेडरिक एंगेल्स: भारत का प्रथम स्वतंत्रत संग्राम (1857-59), पी०पी०एच० नई दिल्ली, 1963 (पहला हिन्दी संस्करण) अनुवादक रमेश सिन्हा, पृ०सं०-158

59. एम०एन०श्रीनिवास- आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल पेपरबैक्स 2005 ई०, पृ०सं०53

60. वहीं पृ०सं०-85

के शासन में स्थापित एकता से अधिक मजबूत और अधिक व्यापक हो। इस एकता को ब्रिटिश तलवार ने स्थापित कर दिया है और अब बिजली का तार उसे और मजबूत बनायेगा तथा स्थायित्व प्रदान करेगा। भारत अपनी मुक्ति प्राप्त कर सके और हर विदेशी आक्रमणकारी का शिकार होने से वह बच सके, इसके लिए आवश्यक था कि उसकी एक अपनी देशी सेना हो; अंग्रेज ड्रिल सार्जेण्ट ने ऐसी ही एक सेना संगठित और शिक्षित करके तैयार कर दी है। एशियाई समाज में पहली बार स्वतंत्र अखबार कायम हो गये हैं। इन्हें मुख्यतया भारतीयों और यूरोपियनों की मिली जुली संताने चलाती हैं; और वे पुनर्निर्माण के एक नये और शक्तिशाली साधन के रूप में काम कर रहे हैं।... भारतीयों के अंदर से, जिन्हें अंग्रेजों की देखरेख में कलकत्ते में अनिच्छापूर्वक और कम से कम संख्या में शिक्षित किया जा रहा है, एक नया वर्ग पैदा हो रहा है, जिसे सरकार चलाने के लिए आवश्यक ज्ञान और यूरोपीय विज्ञान की जानकारी प्राप्त हो गयी है। भाप ने योरप के साथ भारत का नियमित और तेज संबंध कायम कर दिया है, उसने उसके बंदरगाहों को पूरे दक्षिण-पूर्वी महासागर के बंदरगाहों से जोड़ दिया है और उसकी उस अलगाव की स्थिति को खत्म कर दिया है, जो उसके प्रगति नहीं करने का मुख्य कारण थी।

मिलशाहों के वर्ग को पता लग गया है कि भारत को एक उत्पादन करनेवाले देश में बदलना उनके अपने हित के लिए अत्यंत आवश्यक हो गया है इस काम के लिए, सबसे पहले इस बात की आवश्यकता है कि वहाँ पर सिंचाई के साधनों ओर आवाजाही के अंदरूनी साधनों की व्यवस्था की जाय। अब वे भारतीय रेल का जाल बिछा देना चाहते हैं और वे बिछा देंगे। इसका परिणाम क्या होगा, इसका उन्हें कोई अनुमान नहीं है।"[61]

ये परिवर्तन न तो अंग्रेजी राज की प्रगतिशीलता का प्रमाण था और न ही अंग्रेजों के द्वारा भारतीयों के हित में की गयी 'सचेत परिवर्तनशीलता' का ही परिचायक था। इन भौतिक आधारों के निर्माण के द्वारा भारत में पहली बार राजनीतिक एकता कायम करने की कोशिश की गई, जिससे आर्थिक दोहन का एक राष्ट्रीय तंत्र विकसित हो सके। इन भौतिक आधारों के माध्यम से उस विचारधारा का निर्माण किया गया, जो अंग्रेजी राज की प्रगतिशीलता को प्रचारित -प्रसारित करती थी। इन भौतिक आधारों के निर्माण के मूल में निहित स्वार्थ की पड़ताल आवश्यक है क्योंकि हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु मंडल जिस उपनिवेशवाद की आलोचना और विरोध कर रहा था उसके अनिवार्य संदर्भों में से एक यह भी है।

---

61. कार्ल मार्क्स फ्रेडरिक एंगेल्स - भारत का प्रथम स्वत्रंता संग्राम (1857-59) पी०पी०एच० नई दिल्ली, 1963 (पहला हिंदी संस्करण) अनुवादक- रमेश सिन्हा, पृ०सं०-28

iv) रेल, डाक, तार और यातायात के अन्य साधन

सामाजिक संरचना, आर्थिक स्थिति, राजनीतिक प्रक्रिया और सांस्कृतिक परिवेश परस्पर अंतर्संबद्ध होते हैं। अब आधुनिकता के इन भौतिक आधारों का सिलसिलेवार विश्लेषण करें तो इस बात को समझने में सहूलियत होगी। शुरूआत रेल के परिचालन की ऐतिहासिक घटना से करते हैं। "1853 में लार्ड डलहौजी ने इस मत का प्रतिपादन किया कि राजनीतिक और सामरिक कारणों से रेलमार्ग का निर्माण सरकार के लिए सुविधाजनक होगा। इसके पीछे अंग्रेज पूंजीपतियों का दबाव भी था। डैनियल थार्नर, मैक्फर्सन आदि ने दिखाया था कि मूलतः उनका उद्देश्य था (क) भारत में रेल कंपनियों में ब्रिटिश पूंजी का विनियोग(ख) रेलमार्ग को विकास प्रणाली के रूप में इस्तेमाल करके भारत का कच्चा माल, खासकर रूई का इंग्लैंड के कारखानों को निर्यात, (ग) इंग्लैंड के रेल इंजनों, इस्पात की रेलों और मशीनरी को भारत में बेचना और (घ) रेल मार्ग द्वारा भारत के अंदरूनी बाजारों में ब्रिटिश कारखानों के मालों, विशेषकर सूती कपड़ों की बिक्री करना। इन सब लाभों का लोभ ही असली बात थी। इस देश की अर्थनीति का आधुनिकीकरण इसमें जरा भी न था। इसके अलावा निश्चिय ही सामरिक स्वार्थ के कारण सीमांत के निकटवर्ती स्थानों पर, जहाँ लाभ की संभावना न थी, वहाँ ब्रिटिश रेल कपंनियाँ भी नहीं थीं। वहाँ सरकार ने अपने खर्च पर रेलमार्ग बनाना शुरू किया और 19वीं शताब्दी के अंतिम दशकों में करदाताओं के पैसे से कुछ सरकारी रेलमार्ग बनने शुरू हुए। यह काम ब्रिटिश पूंजीवाली रेल कंपनी के काम के साथ-साथ शुरू हुआ।"[62]

"रेलमार्गों का भौगोलिक विन्यास और माल ढोने का किराया, जिस दर पर लिया जाता था। ये दोनों ही देश के भीतर के सुदूर अंचलों से कच्चा माल ढोकर लाने और वहाँ औद्योगिक पदार्थों को ढोकर पहुँचाने के अनुकूल थे। उपरोक्त भौगोलिक विन्यास इस प्रकार से किया गया था, जिससे कि भीतरी क्षेत्रों से कच्चा माल बंबई, कलकत्ता आदि बड़े बंदरगाह-शहरों तक पहुँचने का निकटतम रास्ता मिल सके। दूसरी ओर यही रेलमार्ग मैनचेस्टर से सूती कपड़े और बरमिंघम से लोहा-इस्पात आदि औद्योगिक पदार्थ सुदूर भीतरी अंचलों के बाजारों तक पहुँचा सके। आंतरिक वाणिज्य अथवा औद्योगिक संभावनाओं की ओर देखकर रेलमार्गों का निर्माण नहीं किया गया था और माल के ऊपर किराये का निर्धारण भी इसी नीति से प्रेरित था। कच्चा माल तथा दूसरे कृषि पदार्थ,जैसे पूर्वी बंगाल का चावल, मध्य प्रदेश और पंजाब का गेहूँ, दक्षिणी भारत की रूई कम किराए पर बंदरगाह-शहरों तक लाए जाते थे। इन सब औद्योगिक पदार्थों पर वापसी में रेल किराया ज्यादा था। दूसरी ओर जो

---

62. सव्यसाची भट्टाचार्य - आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, राजकमल पेपरबैक्स 2004 ई० पृ० सं०-155

तैयार औद्योगिक माल बंदरगाह-शहरों से देश के भीतरी हिस्सों में जाता था उसके ऊपर, भीतर से बाहर की ओर जानेवाले औद्योगिक पदार्थों की तुलना में किराया कम था। पानंदीकर, जॉन हार्ड और दूसरे अनेक अर्थशास्त्रियों ने इस तरह के आँकडे रखे हैं। संक्षेप में, रेलमार्गों का विन्यास अर्थात् रेलमार्ग किस दिशा में जाएँगे और किस माल पर क्या किराया होगा, ये दोनों नीतियाँ कच्चे माल के निर्यात और औद्योगिक पदार्थों के आयात के पक्ष में थी। इसी कारण भारत के औद्योगिक विकास में इन नीतियों से बाधा पड़ी थी।"[63] दूसरी ओर भारत में 1855 से 1920 तक रेलमार्ग, 1940 तक रेल इंजन तथा मशीनरी, 1865 तक कोयला भी इंग्लैंड से मँगाए जाते थे, अर्थात इस पारस्परिक श्रृंखला का लाभ इंग्लैंड के लोहा, इस्पात, इंजीनियरिंग, खनिज उद्योगों को मिल रहा था। इसलिए रेलमार्ग के उद्‌भव के फलस्वरूप दूसरे भारी उद्योगों का जो स्वाभाविक विकास होता है भारत में वह नहीं हुआ।[64]

सखाराम गणेश देउस्कर ने 'देशेर कथा' (1904 ई०) में रेलवे के विस्तार में हुए खर्च का आँकड़ा दिया है, उस विवरण से भी कई बातें स्पष्ट होती है। यथा रेल फैलने के साथ-साथ देश में वाणिज्य की वृद्धि हुई है, पर उससे फायदा हुआ है केवल विदेशी बनियों को यह बात अच्छी तरह समझने के लिए रेल विस्तार और वाणिज्य विस्तार विषयक आँकड़ो पर एक बार नजर डालनी होगी।[65] 'रेल का विकट खेल' को समझते हुए महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सवाल उठाये थे "अच्छा तो रेलों का खर्च क्यों बढ़ना चाहिए। रेलें कम होने से देश पर कौन बड़ी भारी आफत आ सकती है। जिस शिक्षा के बदौलत मनुष्य में मनुष्यत्व आता है। जिस शिक्षा की बदौलत देश की धन सम्पत्ति बढ़ सकती है, जिस शिक्षा की बदौलत मनुष्य भूखों मरने से बच सकता है, क्या रेलें बनाना उस शिक्षा से अधिक जरूरी काम है?"[66] महावीर प्रसाद द्विवेदी ने फिर इस बात को रेखांकित किया है कि जितने रूपये रेल पर खर्च किये जा रहे हैं, उतने रूपयों में देश की निरक्षरता दूर की जा सकती है।

भारतीय संदर्भों में मार्क्स ने रेल के परिचालन आंरभ होने से होनेवाले संभावित परिवर्तनों को लेकर भविष्यवाणी की थी, वह भी इस संदर्भ में ध्यातव्य है। "मैं जानता हूँ कि अंग्रेज मिल मालिक हिन्दुस्तान में सिर्फ इसलिए रेलें चलाना चाहते हैं कि वे अपनी मिलों के लिए कम से कम खर्च में कच्चा माल भेज सकें। लेकिन किसी भी देश के यातायात के साधनों में अगर मशीन से काम लेना शुरू हो जाए,

---

63. सव्यसाची भट्टाचार्य - आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, राजकमल पेपरबैक्स 2004 ई० पृ० सं०-156
64. वहीं, पृ०सं०- 157
65. अध्याय के अंत में तालिका देखें।
66. महावीर प्रसाद द्विवेदी -प्रतिनिधि संकलन, प्रधान संपादक - नामवर सिंह, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 1996 ई०। पृ०सं०138, 'रेलों का खर्च और शिक्षा प्रचार' से।

तो फिर उसकी शाखाएँ फूटने से कोई नहीं रोक सकता। खास तौर से यदि उस देश में लोहा और कोयला भी हो, तब तो और भी नहीं। एक विशाल देश में रेलों का जाल बिछाकर उन्हें उस वक्त तक चालू नहीं रखा जा सकता जब तक कि इन यंत्रों को आए दिन खुराक पहुँचाने के लिए और आवश्यक प्रबंध भी न किया जाए। उद्योग धंधो में भी मशीनें चालू होंगी, इसी वजह से इनका अभी रेलों से कोई संबंध नहीं है। इसलिए हिन्दुस्तान में रेलों के चालू होने से आधुनिक उद्योग धंधों की नींव पड़ गई है।... रेलों से जो नए उद्योग धंधे चालू होंगे, उनसे प्राचीन श्रम विभाजन नष्ट हो जाएगा। इस विभाजन पर हिन्दुस्तान की जातियाँ टिकी हैं, जो हिन्दुस्तान की ताकत और उसकी प्रगति में जबर्दस्त बाधक रही हैं।"[67]

"1854 ई० में बंबई में एक पारसी सज्जन के उद्यम से पहला सूती कपड़ा मिल तैयार हुआ। 1856 ई० में रिसड़ा में अंग्रेजों द्वारा पहला जूट मिल खोला गया। 1862 ई० के आसपास विदेशी वाणिज्य, खासकर रूई का निर्यात काफी तेजी से बढ़ा। इन दिनों संयुक्त राज्य अमेरिका में अश्वेत लोगों को दास प्रथा से मुक्त करने के सवाल को लेकर गृहयुद्ध छिड़ा था, जिस कारण अमेरिका से रूई का निर्यात इंग्लैंड के लिए बंद हो गया था। फलस्वरूप इंग्लैंड में रूई के दाम बढ़ गये थे और भारत में रूई का निर्यात बढ़ा था। इसका एक लाभ यह था कि बंबई बंदरगाह और बंबई के व्यापारियों की खूब उन्नति हुई।"[68] प्रसंगवश यहाँ यह बता देना उचित होगा कि "रूई का बाजार जब गर्म था तब निर्यात व्यापार से जो लाभ देशी बनियों के हाथ में पहुँचा था, उससे संभवतः बंबई में स्वदेशी सूती मिलों के लिए प्राथमिक पूंजी का काम लिया गया था।"[69]

अंग्रेजी राज में विदेशी पूंजी की प्रकृति और उसके निवेश के क्षेत्र को जानकर[70] यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अंग्रेजी पूंजी का काम ही था उपनिवेश को

---

67. रजनी पाम दत्त-आज का भारत (रामविलास शर्मा-अनुवादक), ग्रंथ शिल्पी इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2004 ई०, पृ० सं०-106

68. सव्यसाची भट्टाचार्य - आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, राजकमल पेपरबैक्स, 2004 ई० पृ०सं-60-61

69. वहीं पृ० सं० 60-61

70. हमने देखा कि भारत में विदेशी पूंजी का ढाँचा अभी भी औपनिवेशिक था, जो पूर्वी एशिया, पूर्वी अफ्रीका अथवा दक्षिण अमेरिका के अन्य उपनिवेशों में देखा जाता है: (1) रेल कंपनियों की तरह के राष्ट्रीय परिवहन विनियोग, जिनसे देश के बाजार में औद्योगिक पदार्थों का आयात और विदेश में कच्चे माल का निर्यात हो सके, (2) प्राकृतिक दान, जैसे खनिज और खासकर बगीचों के उत्पादन जैसे चाय, काफी, रबड़ आदि को देश से निर्यात करना; (3) व्यापारिक करोबार जैसे बैंक, बीमा कंपनियाँ आदि जो विदेशोन्मुख व्यापार को चालू रखने के लिए जरूरी है; (4) सरकारी व अर्द्ध-सरकारी संस्थानों को ऋण देना; (5) और सबसे अंत में कुछ हल्के उद्योगों में पूंजी लगाना जो ज्यादातर निर्यात योग्य होते हैं, सव्यसाची

अपने देश के हित में इस्तेमाल करना। जो लोग अंग्रेजों को औद्योगीकरण का श्रेय देते हैं, उन्हें इन दो प्रश्नों पर सोचना चाहिए कि "और विदेशी पूंजी यहाँ क्यों नहीं आई और जो आई थी वह बंबई अथवा अहमदाबाद के सूती मिलों अथवा जमशेदपुर के इस्पात कारखाने में क्यों नहीं गई?

दूसरे प्रश्न का उत्तर अमर्त्य सेन ने इस प्रकार दिया है: शायद शुरू में लाभ का हिसाब करके अंग्रेजों ने चाय कॉफी, कोयला अथवा पटसन में पैसा लगाया था, किन्तु अगर लाभ का हिसाब ही मूल कारण होता तो जब देशी पूंजी भारतीय सूती मिलों अथवा इस्पात कारखानों में जा रही थी तब अंग्रेजों की पूंजी के वहाँ जाने का भी यथेष्ट कारण था, किंतु ऐसा नहीं हुआ। क्योंकि केवल लाभ के लोभ से नहीं समग्र रूप से अंग्रेज पूंजीपतियों के आकांक्षित उद्देश्यों में यह भी निहित था कि उनका अपना उद्योग मार न खाय और अंततः उनके अपने देश के उद्योगों के साथ उनकी पूंजी प्रतियोगिता में न उतरे। भारत में सूती मिलें निर्मित करने के काम में अंग्रेजी पूंजी नहीं लगी क्योंकि मैनचेस्टर में इसी बीच बहुत बड़ा वस्त्र उद्योग तैयार हो रहा था। इसी प्रकार भारत में इस्पात के कारखाने लगाने के लिए अंग्रेज अपनी पूंजी क्यों लगाता? हाँ, एक क्षेत्र है जहाँ यह प्रतियोगिता हुई थी-डैंडी में ब्रिटेन के जूट मिलों का केन्द्र था और कलकत्ते के पास ही ब्रिटिश पूंजी से तैयार जूट मिलें देखी जाती हैं, पर शायद इसका कारण यह है कि जूट उद्योग इन दोनों स्थानों पर प्रायः एक ही समय में विकसित हुआ। जिस समय स्कॉटलैंड के अंग्रेज हुगली के किनारे जूट मिलों के निर्माण में लगे हुए थे, उस समय तक डैंडी में जूट उद्योग बहुत विकसित नहीं हुआ था। अतएव कहा जा सकता है कि अपने देश के उद्योग अथवा पूंजी के साथ प्रतियोगिता से बचना अंग्रेजी पूंजी विनियोग संस्थानों का एक मूलभूत कौशल था।"[71]

ईस्ट इंडिया कंपनी जब शुरूआती दौर में अपने पाँव भारत में पसार रही थी तब कंपनी के डाइरेक्टरों ने 17 मार्च सन् 1769 में एक आज्ञा जारी की थी, जिसके अनुसार बंगाल के अधिकांश कारीगर स्वतंत्रतापूर्वक कपड़े बुनने के अधिकार से वंचित हुए। [72] इस प्रकार अनुचित उपाय से हिन्दुस्तानी शिल्प की जड़ काटी गयी और उसकी जगह हिन्दुस्तान में विलायती माल लाया गया। इसका फल यह हुआ कि

भट्टाचार्य - आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास (1850-1947) राजकमल पेपरबैक्स, 2004 ई० पृ० सं० 107

71. सव्यसाची भट्टाचार्य - आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, राजकमल पेपरबैक्स 2004 ई०, पृ०सं० - 107

72. सखाराम गणेश देउस्कर - देश की बात, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया- 2005 ई० पहला संस्करण पृ० सं० 152

सन् 1794 ई० में जिस भारत में 156 पौंड से अधिक विलायती सूती कपड़ा नहीं आया था वहीं सन् 1809 में 1,18,4000 सौ पौंड से भी अधिक मूल्य का विलायती कपड़ा घुसाया गया।[73] बंगाल के कपड़ा उद्योग की स्थिति बिगड़ने से कई समस्याएँ उत्पन्न हो गई "एक ओर जुलाहों की ध्वनि और दूसरी ओर बंगाली विधवाओं की हाहाकार सुनाई दी। सूत कातने के व्यवसाय से वर्जित होकर बंगाली विधवाएँ सचमुच ही आश्रयहीन हुई और स्वजनों के गले पड़ीं।" [74]

रजनी पामदत्त (आज का भारत), रामविलास शर्मा (भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद), सखाराम गणेश देउस्कर (देश की बात), सव्यसाची भट्टाचार्य (आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास), सूची काफी लंबी हो सकती है। सूची देना आवश्यक नहीं है, जो बात इन पुस्तकों के माध्यम से सामने आती है, वह है, औपनिवेशिक भारत में रूके हुए आर्थिक विकास के कारणों और प्रक्रिया का उद्‌घाटन।

सत्ता और व्यवस्था में हमेशा एक संबंध और दूरी होती है। अगर बात ब्रिटिश सत्ता और उसकी पूंजीवादी व्यवस्था को लेकर ही की जाए। हमने देखा कि किस प्रकार ब्रिटिश सत्ता की पूंजीवादी व्यवस्था ने भारत का आर्थिक दोहन किया लेकिन इसके समानांतर (इस दोहन की प्रक्रिया के समानांतर) सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक चेतना का विस्तार भी हुआ। पूंजीवादी व्यवस्था ने मुक्ति की चेतना और मानसिकता भी निर्मित की। स्पष्ट ही अंग्रेजों का यह अभीष्ट नहीं था, पर बावजूद इसके पूंजीवाद ने आंदोलन की मानसिकता बनाई, उसकी चेतना का प्रसार किया और आंदोलन भी हुए।

सत्ता व्यवस्था का उपयोग अपने हितों की पूर्ति के लिए कर सकता है किन्तु व्यवस्था के द्वारा उत्पन्न होने वाले अन्य प्रभावों एवं परिणामों को नियंत्रित नहीं कर सकता। जैसे अंग्रेजों ने यातायात के साधनों का विकास किया। कच्चे माल के निर्यात और इंग्लैंड में बने औद्योगिक माल के आयात के लिए, साथ ही देश के किसी हिस्से में होनेवाले उपद्रवों या लड़ाइयों के दमन के लिए, जिससे दूसरे हिस्सों से फौज तत्काल वहां भेजी जा सके। लेकिन यातायात के उपकरणों के विकास ने एक राज्य से दूसरे राज्य में जाने की सहूलियतें विकसित की। नये सामाजिक संबंध बने। इस मेल-मिलाप ने राष्ट्रीय आंदोलन को विकसित करने में सहायता की। "संचार साधनों के विकास और आंतरिक चुंगी के हटने से देश के विभिन्न प्रदेशों की

---

73. वहीं पृ०सं०-156

74. सखाराम गणेश देअस्कर - देश की बात, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2005 ई० (पहला संस्करण) पृ०स०-160

अर्थव्यवस्था एक हो गई। भाप से चलने वाले जहाजों के चलन और स्वेज नहर (1869 ई०) के बनने से ब्रिटेन को न केवल भारत और अपने पूर्वी साम्राज्य के अन्य भागों में नियंत्रण बढ़ाने में, बल्कि भारतीय अर्थव्यवस्था को बाहरी दुनिया के साथ जोड़ने में भी, सहायता मिली।" [75] परिणाम यह हुआ कि "तटवर्ती क्षेत्र में कलकत्ता, बंबई और मद्रास जैसे बड़े नगरों का उदय हुआ। ... ये नगर व्यापारिक विनिमय केंद्रो के साथ ही औद्योगिक उत्पादन के भी केन्द्र थे।" [76] यूरोपीय बाजार में नील, पटसन, कपास, तम्बाकू, चाय और कॉफी की मांग को देखकर यूरोपीय बागान मालिकों ने भारत में इसकी खेती शुरू की। "इसी के फलस्वरूप खेती का आंचलिक विशेषीकरण संभव हुआ। यानी विशेष अंचल की भौगोलिक विशेषता का लाभ उठाकर विशेष प्रकार की फसलें उगाने की प्रवृति बढ़ी।"[77] इससे दो परिवर्तन जो समाज में हुए वे यह कि किसान 'नगदी फसलें'उगाकर उन्हें बेचकर खाद्य पदार्थ खरीदने लगा। किसान विक्रेता के साथ खरीदार भी बना। दूसरे चाय बागानों के लिए मजदूरों का पलायन बढ़ा और कारखानों - बंदरगाहों में काम करनेवाले लोगों की मांग और उनकी कमी को दूर करने के लिए दास प्रथा को समाप्त (1843 ई०) किया गया। परिणामत: 'सामूहिक गतिशीलता' एक राज्य से दूसरे राज्य में देखी गयी।

"स्टीन का विचार है कि मध्ययुगीन भारत में 'अकेले परिवार की गतिशीलता' के लिए अवसर 'बहुत थे।' साथ ही तब निगमीय गतिशीलता की आवश्यकता भी कम थी। छापेखाने जैसी सुविधाएँ, जो आधुनिक "निगमीय गतिशीलता" के लिए आवश्यक जान पड़ती है; तथा उसकी राजनीतिक आवश्यकता अभी हाल ही में पैदा हुई। संभवत: स्टीन ने तो 'निगमीय' शब्द 'सामूहिक' के अर्थ में व्यवहार किया है और अगर मेरा ऐसा सोचना ठीक है तो यह निश्चित ही सही है कि सामूहिक गतिशीलता आधुनिक युग की विशेषता है, जबकि 'अकेले परिवार की गतिशीलता' मध्य युग की विशेषता थी।"[78] लेकिन मध्ययुग में जहाँ 'संयुक्त परिवार टूटकर एकल परिवार' में परिणत होने लगे। संयुक्त परिवार के विघटन की इस प्रक्रिया का स्वागत युगानुकूल संदर्भ में बालकृष्ण भट्ट ने किया।[79]

---

75. एम०एन०श्रीनिवास- आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल पेपरबैक्स, 2005 ई० पृ०सं०-64
76. रविंदर कुमार - आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, 1997 ई०, पृ०सं०-7
77. सव्यसाची भट्टाचार्य - आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, राजकमल पेपरबैक्स, 2004 ई० पृ०सं०-59
78. एम० एन० श्रीनिवास- आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन राजकमल पेपरबैक्स, 2005, पृ० सं०-50
79. "पांच वर्ष से पहले तक बालक को 'नारी कवच' होकर रहना पड़ता है। अनपढ़ी माँ और मूर्ख स्त्रियों के बीच रहकर जैसे-जैसे बोलचाल और जैसी-जैसी आदतें सीखा करता है कि उसकी प्रशंसा ही नहीं करते बनता। उपरान्त स्कूल में भेजना और तालीम की फिकर बाप माँ को पीछे होती है, ब्याह पहले ही कर दिया

आधुनिकता के भौतिक आधारों में केवल रेल, डाक तार या यातायात के अन्य साधन ही नहीं आते बल्कि 'प्रेस' भी महत्वपूर्ण भौतिक आधार के रूप में हमारे सामने आता है। "साहित्य में आधुनिकता का वाहन प्रेस है और उसके प्रचार के सहायक हैं; यातायात के समुन्नत साधन।"[80] तो प्रेस और यातायात के समुन्नत साधनों के माध्यम से आधुनिकता किस प्रकार साहित्य और समाज में प्रतिबिंबित हुई? इस प्रक्रिया एवं इसके प्रभावों पर एक दृष्टि डाल लेना आवश्यक है।

v) प्रेस पत्रकारिता और हिन्दी साहित्य

प्रेस (मुद्रण यंत्र) आधुनिकता का अत्यंत महत्वपूर्ण भौतिक आधार है। साहित्य (यहाँ हमारा सरोकार हिन्दी साहित्य से है) में 'आधुनिकता' के प्रचार-प्रसार में और साहित्य के माध्यम से समाज में 'आधुनिकता' की चेतना निर्मित करने में इसकी क्रांतिकारी भूमिका रही है। इसकी क्रांतिकारी भूमिका से जुड़े अन्य कारकों की अनदेखी करने के कारण, "हिन्दी साहित्य में आधुनिक युग का आरंभ दिखलाते समय यह चूक प्रायः होती है। लोग सोचते हैं जिस दिन से भारत में प्रेस की मशीन आयी, साहित्य का नया ढाँचा भी शुरू हो गया। पर हम जानते हें कि ऐसा नहीं हुआ।" "भारत में 'सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में छापेखाने को पुर्तगाली लाए और इसके लिए प्रोत्साहन ईसाई मिशनरियों ने दिया। इलाके में पहला छापाखाना बंबई में 1674 में भीमजी पारेख नामक भारतीय की पहल पर स्थापित हुआ परंतु वह कभी प्रभावशाली रूप से काम कर सका, इसमें संदेह है। अठारवीं शताब्दी के प्रारंभ में दक्षिण भारत (त्रांकेबर (Tranquebar)) में डेनमार्क के लूथरवादी मिशन 'डेनिश लूथर मिशन) ने एक छापाखाना स्थापित किया। 'अखबार' नामक लिखित समाचार पत्र मुगल काल में प्रचलित होने के बारे में जानकारी है, परंतु छपे हुए समाचार पत्र पश्चिमी संपर्क के बाद ही अस्तित्व में आए। इस दिशा में 18वीं शती के अंतिम चतुर्थांश में एक शुरूआत हुई।"[81] लेकिन इन सबके बावजूद, मतलब," प्रेस के आगमन और नागरी टाइपों के ढलाव (1787 ई०) के बहुत दिनों बाद हिन्दी में आधुनिकता आयी। ऐतिहासिक भौतिकवाद यहाँ स्पष्ट कहता है कि 'प्रेस' मूलतः पुनरूत्पादक (री-प्रोडक्टिव) शक्ति है, उत्पादक शक्ति नहीं। इसलिए यंत्र प्रणाली उत्पादन के समूचे ढाँचे के सजीव संबंध से ही साहित्य का इतिहास बदलने में कारगर होती है, अकेली नहीं। उदाहरणस्वरूप चीन में अत्यंत प्राचीन युग से प्रेस था,

---

जाता है दूसरे 'ज्वाइण्ट फेमिली' कुल कुटम्ब का एक ही घराने, में रहकर एकत्र भोजन ऐसी भारी विपत्ति है, जिसे हम बाल्य विवाह से किसी अंश में कम न कहेंगे।"

बालकृष्ण भट्ट: प्रतिनिधि संकलन, सत्य प्रकाश मिश्र (संपादक) नेशनल बुक ट्रस्ट, 2005 ई० पृ०सं० 68

80. हजारी प्रसाद द्विवेदी- 'परंपरा बनाम आधुनिकता' लेख से।

81. योगेन्द्र सिंह - भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर, 2006 ई० पृ० सं० 192

फिर भी चीनी साहित्य में आधुनिकता यूरोप में प्रेस आविष्कृत होने के बहुत बाद आयी। जब चीन में यूरोपीय तथा आधुनिक ढंग की यंत्र प्रणाली का आगमन हुआ, तब नयी साहित्यिक प्रवृत्ति उगी।"[82]

'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास' में श्रीकृष्ण लाल ने माना है कि हिन्दी साहित्य में "आधुनिक काल का आरंभ 1837 ई० से होता है जब दिल्ली में एक लिथोग्राफिक प्रेस (Lithographic Press) की स्थापना हुई। इससे पहले भी कोलकाता के फोर्ट विलियम कॉलेज से कुछ हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित हुई, परंतु वे संख्या में कम थीं और उनका महत्व भी विशेष न था। 1837 से हिन्दी पुस्तकों का प्रकाशन अबाध गति से चलता है।"[83] लेकिन श्री कृष्णलाल ने हिन्दी पुस्तकों की मूल प्रवृति का परिचय देना जरूरी नहीं समझा कि उन पुस्तकों के माध्यम से किस चेतना का निर्माण हो रहा था, उन पुस्तकों की विषयवस्तु क्या थी? किन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उन पुस्तकों की रचना और प्रकाशन हुए थे?

यह प्रश्न इसलिए महत्वपूर्ण है कि प्रेस 'आधुनिकता' के प्रचार-प्रसार में जितना सक्षम है, मध्यकालीनता के प्रचार प्रसार में भी उतना ही। उदाहरण के लिए, छपाई के प्रारंभ होने से न केवल आधुनिक ज्ञान का, बल्कि पारंपरिक महाकाव्यों, पुराणों, संतों की जीवनियों और अन्य धार्मिक साहित्य का भी प्रसारण संभव हो गया। शांति टांगरी ने लिखा है कि "1877 तक 3064 पुस्तकें देशी भाषाओं में, 729 प्राचीन भाषाओं में और 544 अंग्रेजी में प्रकाशित हुई थीं, इनमें से 2451 मौलिक थी, 2003 पुनः प्रकाशित थीं और 436 अनूदित थी और यद्यपि इस सामान्य साहित्य का बड़ा अंश निम्नकोटि का था और परम्परागत कट्टरपंथी दृष्टिकोण से पुराण या धर्म से संबंधित था, फिर भी संप्रेषण की क्रांति का श्रीगणेश हो चुका था।"[84]

संप्रेषण की क्रांति का श्रीगणेश होने का संबंध तकनीक (टेक्नोलॉजी) से है जबकि संप्रेषण की अंतर्वस्तु, (वह मध्यकालीनता का प्रचार प्रसार कर रही है या आधुनिकता का?), का संबंध उससे जुड़ी विचारधारा (आईडियोलॉजी) से है। तकनीक विज्ञान की देन है। विज्ञान मतलब ऐसी पद्धति या ऐसी व्यवस्था जिसके मध्य कार्य-कारण संबंध हो, जिसके परिणाम सार्वभौमिक हो, बिना किसी भेदभाव के। तकनीक विज्ञान की देन होने के साथ-साथ स्वयं एक अर्थ में विज्ञान है।

---

82. नामवर सिंह - इतिहास और आलोचना, राजकमल प्रकाशन, 2002 ई, पृ०सं० 150

83. श्रीकृष्ण लाल - आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, हिन्दी परिषद् प्रकाशन विश्वविद्यालय प्रयाग, संशोधित तथा परिवर्धित चतुर्थ संस्करण, 1965, पृ०सं० 14

84. शांति टांग्री- 'उन्नीसवीं शताब्दी के भारत में बुद्धिजीवी और समाज "समाज और इतिहास का तुलनात्मक अध्ययन" में खण्ड 3, अंक-4, जुलाई 1961, पृ०सं० 376

तार्किकता, वैचारिकता और आत्मप्रश्नेयता जो विज्ञान के गुण माने जाते हैं, समान रूप से तकनीक (टेक्नॉलौजी) पर भी लागू होते हैं। जिस प्रकार विज्ञान अपनी भूमिका का निर्धारण स्वयं नहीं करता और उसकी अपनी कोई चेतना नहीं होती। ठीक यही बात तकनीक (टेक्नोलॉजी) के संदर्भ में भी लागू होती है।

तकनीक (टेक्नॉलॉजी) अपनी विचारधारा (आइडियॉलॉजी) का निर्माण स्वयं करती है। तकनीक का नियंत्रण जिस व्यक्ति, सत्ता या संगठन के हाथ में होता है, उसी की इच्छा पर तकनीक के इस्तेमाल द्वारा वांछित विचारधारा का निर्माण किया जा सकता है। जैसे जिस तकनीक की सहायता से औपनिवेशिक काल में प्राच्यविद्याविदों ने एक प्रकार की मानसिक गुलामी भारतीयों पर थोपने की कोशिश की और भारतीयों के संदर्भ में यह सामान्य बोध (कॉमन सेंस) विकसित किया कि भारतीय अध्यात्मवादी, परंपरा प्रेमी और लोकतंत्र के लायक नहीं है। उस वर्चस्ववादी विचारधारा के प्रतिरोध में जिस सांस्कृतिक श्रेष्ठता को प्रस्तावित किया गया उसके प्रत्युत्तर का माध्यम भी वही तकनीक रहा। तो तकनीक के द्वारा विचाराधारा के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों को उभारा जा सकता है। यह बात केवल प्रेस तक नहीं, आधुनिकता के अन्य भौतिक आधारों पर भी समान रूप से लागू होती है कि "वे आधुनिकीकरण के विपरीत कामों में भी इस्तेमाल किये जाते हें। मैसूर नरसिंहाचार श्रीनिवास ने बहुत पक्की बात कही है कि रेल-डाक छापाखाना से सांप्रदायिक समिति और राजनीति को मदद पहुँचती है। ये सब यंत्र-परिवहन, संचार व्यवस्था की तरह एकता की धारणा को बहुत से लोगों तक पहुँचा देने में सक्षम है। साथ ही सांप्रदायिक तथा जाति-पाँति तथा धार्मिक मनोवृतियों को भी लोगों के मन में संचारित कर सकती है; उसे एक राजनीतिक स्वरूप प्रदान कर सकती है। मैककारमेक ने प्रमाणित किया है कि किस तरह वैष्णव धर्म के अनुयायियों की सामाजिक ऐक्यबद्धता, पारंपरिक तीर्थ-यात्रा, कथा-पाठ, मेला आदि के अलावा भी आधुनिक संचार-व्यवस्था द्वारा तेज की जा सकती है। शहरों के छापेखाने, सांप्रदायिक संस्थाएँ, रेल के द्वारा होनेवाले पारस्परिक मेल-मिलाप से, आधुनिक युग से पहले की मानसिकता को जोरदार कर सकते हैं।"[85]

आचार्य शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में गद्य की परंपरा एक साथ चलानेवाले जिन 'लेखक चतुष्टय' का उल्लेख किया है- उनकी रचनाओं की अंतर्वस्तु पारंपरिक और भाषा आधुनिक है। मुंशी सदासुखलाल 'नियाज' कृत 'सुखसागर', इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी, लल्लूलालजी का

---

85. सव्यसाची भट्टाचार्य - आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, राजकमल पेपरबैक्स, 2004 ई० पृ०सं० 147

'प्रेमसागर' जिसमें भागवत दशमस्कंध की कथा वर्णन की गयी है।"[86] तथा सदल मिश्र की 'नासिकेतोपाख्यान इनकी विषयवस्तु औपनिवेशिक काल की स्थितियों के प्रति न तो असंतोष का भाव व्यक्त करती है न इनमें 'सचेत परिवर्तनेच्छा' की कोशिश नजर आती है। केवल इनकी भाषा में (विशेषकर मुंशी सदासुखलाल और सदल मिश्र की) "आधुनिक हिन्दी का पूरा-पूरा आभास मिलता है।"[87] अंतर्वस्तु के स्तर पर जो "हिन्दी साहित्य अपने पुराने रास्ते पर ही पड़ा था। भारतेन्दु ने उस साहित्य को दूसरी ओर मोड़कर जीवन के साथ फिर से लगा दिया[88] था।" लेकिन भारतेन्दुजी जी की कुछ सीमायें भी थीं। "भारतेन्दुजी ने हिन्दी काव्य को केवल नए-नए विषयों की ओर ही उन्मुख किया, उसके भीतर किसी नवीन विधान या प्रणाली का सूत्रपात नहीं किया। दूसरी... वे केवल 'नरप्रकृति' के कवि थे, बाह्यप्रकृति की अनेकरूपता के साथ उनके हृदय का सामंजस्य नहीं पाया जाता।... गद्य को जिस परिमाण में भारतेन्दु ने नए-नए विषयों और मार्गों की ओर लगाया उस परिमाण में पद्य को नहीं। उनकी कविताओं के विस्तृत संग्रह के भीतर आधुनिकता कम ही मिलेगी।"[89] मतलब यह कि चेतना के स्तर पर 'आधुनिकता' को साहित्य में हम जिस रूप एवं अर्थ में स्वीकार करते हैं। भारतेन्दु उसका संगत तौर पर प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं। भारतेन्दु के यहाँ 'आधुनिकता' निर्माण की प्रक्रिया में है।

भारतेन्दु मण्डल के रचनाओं की इस चेतना का गहरा संबंध उस दौर की हिन्दी पत्रकारिता से है। "हिन्दी में पत्र-पत्रिकाओं की कोई जीवित परम्परा न थी, परन्तु एकाएक उत्तर भारत में न जाने कितने नगरों से पत्रों की एक बाढ़ सी आ गई। इसमें बहुत से कुछ महीने या कुछ वर्ष चलकर ठप हो गये; कुछ दीर्घकाल तक हिन्दी की सेवा करते रहे लाहौर, बम्बई और कलकत्ता को यदि तीन सीधी रेखाओं से मिला दिया जाय तो जो त्रिकोण बनेगा, उसके भीतर देश का वह भाग आ जायगा जहाँ से इस प्रकार के पत्र निकले थे। बम्बई की अपेक्षा कलकत्ते से बड़ी संख्या में और बहुत अच्छे पत्र निकले। बनारस तो पत्रिकाओं का केन्द्र था।"[90] भारतेन्दु इसी सक्रिय केन्द्र के नाभिक बने हुए थे।

भारतेन्दु मण्डल के प्राय: सभी रचनाकार हिन्दी पत्रकारिता से सम्बद्ध थे। भारतेन्दु युग के बाद भी यह परम्परा जारी रही। बालकृष्ण भट्ट, महावीर प्रसाद

---

86. रामचंद्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, 1990 ई० तेईसवाँ संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण, पृ०सं० 230
87. वही, पृ०सं० 232
88. वही, पृ०सं० 246
89. वही, पृ०सं० 320
90. रामविलास शर्मा- भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परंपरा, राजकमल प्रकाशन, 1995 पृ०सं० 41

द्विवेदी, निराला और प्रेमचंद इसी परम्परा के अगले पड़ाव थे। कहना न होगा कि पत्रकारिता के पेशे से जुड़े रहने के कारण ये अंग्रेजी राज की प्रगतिशीलता के आवरण में छिपे, भारत के स्थिर विकास और आर्थिक दोहन के मध्य अटूट संबंध को समझने में सफल हो सके थे। इनके लेखन में इनकी चिन्ताएँ लगातार उजागर होती रहती थीं, जिसकी चर्चा आगे करेंगे।

2. हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के भौतिक आधार: प्रभाव एवं परिणाम

केन्द्रीय सत्ता के विघटन के साथ छोटी-छोटी सत्ताओं का अभ्युदय होता है। ये छोटी-छोटी सत्तायें अपने विकास के लिए आपसी संघर्ष में लिप्त रहकर विकास की कामना करती है और आपसी संघर्ष के कारण राष्ट्र के विकास की अवधारणा अवरूद्ध हो जाती है। यह मध्यकाल में होता है। आधुनिक काल मे केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था कायम हो जाती है। रामशरण शर्मा के शब्दों में आधुनिक-काल में 'देश धर्म की भावना का विकास होता है। केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था और 'देश-धर्म' की भावना का विकास अंग्रेजों के आगमन के बाद ही हुआ।

"लूट-खसोट की किस्म के वाणिज्य-व्यापार के जरिये तथा रक्त-शोषक भूमि-कर के माध्यम से अपने उपनिवेश से नजराना वसूल करने के उद्देश्य से अंग्रेजों ने पहले के किसी भी काल की अपेक्षा अधिक केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था कायम की।"[91] इसके लिए अंग्रेजों ने जिन भौतिक आधारों को निर्मित किया, उससे भारतीय व्यवस्था एवं साहित्य (हिन्दी साहित्य के संदर्भ में हम देख रहे हैं) दोनों प्रभावित हुए और इसके कुछ सकारात्मक परिणाम सामने आये और नकारात्मक भी।

"अंग्रेज-पूर्व भारत में सामाजिक गतिशीलता का एक शक्तिशाली स्रोत राजनीतिक व्यवस्था की अस्थिरता में था। यह अस्थिरता भारत के किसी एक भाग तक सीमित न थी, बल्कि हर जगह व्यवस्था की विशेषता थी। वह सामाजिक गतिशीलता का एकमात्र तो नहीं पर एक महत्वपूर्ण राह अवश्य थी।.... अंग्रेजी राज में कोई पारस्परिक युद्ध न होने देने के कारण राजनीतिक व्यवस्था स्थिर हो गई और गतिशीलता का यह मार्ग अवरूद्ध हो गया। अन्ततः अंग्रेजी शासन के कारण गतिशलता के अन्य मार्ग खुले।"[92]

आधुनिकता के इन भौतिक आधारों ने जातीय गठन और एकता की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया। "संपूर्ण भारत में सड़क निर्माण, रेल, डाक, तार, सस्ता कागज तथा छपाई का प्रारंभ .... विशेषतः क्षेत्रीय भाषा में ... ने जातियों को इस प्रकार संगठित

---

91. एम०सन० श्रीनिवास - आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल पेपरबैक्स 2005, पृ०सं० 41

92. एम०एन० श्रीनिवास - आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल पेपरबैक्स, 2005, पृ०सं० 41

होन योग्य बनाया, जिस तरह से पहले वे कभी संगठित नहीं हुई थी। एक पोस्टकार्ड जाति की बैठक का समाचार ले जाता था, दूरदराज के गाँवों में बिखरे हुए सदस्यों को आवश्यकता पड़ने पर एकत्रित होने में रेल ने सहायता दी, जबकि जाति की पत्रिकाओं को स्थापित करने में सस्ते अखबारी कागज के कारण सहूलियत हुई, इन पत्रिकाओं का उद्देश्य अपनी-अपनी जातियों के हितों का संवर्धन था। यह बताना एक आम बात है कि रेलों तथा फैक्ट्रियों ने खाने पीने तथा संपर्क के अन्य स्वरूपों के बारे में अशुद्धि (Pollution) के नियमों का ढीला किया है, परन्तु यह कहानी का केवल एक पक्ष है। सस्ते कागज की उपलब्धता ने जातिगत झगड़ों को आलेखित करने की सहूलियत दी और इसने नियमों तथा पूर्व के उदाहरणों को स्थायी स्वरूप दिया जो कि तब तक बुजुर्गों की अविश्वासनीय अतः चुनौती देने योग्य, याददाश्त पर निर्भर थे। मुझे पता चला है कि गुजरात में अनेक जातियों ने अपने संविधान छपवा लिये हैं।"[93]

प्रेस के बिना स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय असंभव थे। आधुनिक शिक्षा असंभव थी। ऐसा नहीं कि अंग्रेजों के आने से पहले भारत में विद्यालय मौजूद नहीं थे, "यद्यपि विद्यालय भारत में अंग्रेजों के आने से बहुत पहले से मौजूद थे पर वे अंग्रेजों द्वारा स्थापित स्कूलों से भिन्न थे। केवल दो ही महत्वपूर्ण भिन्नताओं का जिक्र करें तो पुराने विद्यालय उच्च जातियों के बच्चों तक सीमित थे और अधिकतर पारंपरिक ज्ञान का ही प्रसार करते थे।"[94]समाचार पत्र असंभव थे। हिन्दी का पहला समाचार पत्र 'उदंत मार्तंड' सन् 1826 ई० में निकला। प्रेस ने गद्य की उपयोगिता बढ़ा दी। उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना जैसे नये गद्य रूपों का जन्म हुआ। प्रेस ने पुस्तकों को अपूर्व प्रचार-प्रसार और असंख्य पाठक दिये।

आधुनिक शिक्षण संस्थानों और न्यायालयों की स्थापना से पारंपरिक सामाजिक सोपान बदल गये। जाति व्यवस्था के बंधन कुछ ढीले हुए। शिक्षा के अवसर अब हर आयु, वर्ग के लोगों के लिए समान रूप से उपलब्ध थे। शिक्षा पर अब किसी का पुश्तैनी अधिकार नहीं रह गया था। "स्कूल की सबसे बड़ी उपलब्धि थी, लड़कियों के अंदर अपने व्यक्तित्व होने की, अपनी पहचान की, भावना पैदा कर देना।"[95] क्योंकि "जहाँ लिखने के लिए एक अनाम हिन्दू महिला, बंग महिला, मिश्र महिला, कुमायूं महिला बनना पड़ता हो, वह इस बात का प्रमाण है कि पढ़ना-लिखना एक निषिद्ध कर्म है, सिर्फ छिप कर किया जा सकता है, वहाँ अपनी दुर्दशा को कह पाने

---

93. योगेन्द्र सिंह - भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर, 2006, पृ०सं० 286

94. एम०एन० श्रीनिवास - आधुनिक भारत में सामाजिक परितर्वन, राजकमल पेपरबैक्स 2005, पृ०सं० 53

95. वीर भारत तलवार - सारांश प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002, पृ०सं०52

की हिम्मत भी एक तरह की क्रांति समझी जानी चाहिए।"[96] शिक्षा की दूसरी महत्वपूर्ण उपलब्धि निम्न वर्ग के लोगों के सामाजिक-आर्थिक अवस्था में सुधार से जुड़ा है।

"आधुनिक शिक्षा की वजह से "पहली बार हिन्दी में इतिहास, भूगोल और प्राकृतिक विज्ञानों जैसे आधुनिक विषयों की स्कूली पाठ्यपुस्तकें तैयार करने का काम राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' ने किया। यह काम अकेले आदमी का न था, सामूहिक प्रयास की जरूरत थी। लिहाजा अपने नेतृत्व में उन्होंने कई अच्छे लेखकों का दल तैयार किया, जिसने सरल हिन्दी में गणित तथा दूसरे विषयों की पाठ्यपुस्तकें बनाने की जिम्मेदारी संभाली।[97]

हिन्दी-उर्दू-विवाद में हिन्दी का पक्ष रखने और आगे चलकर हिन्दी भाषा में कोश, व्याकरण और इतिहास ग्रंथों के निर्माण में प्रेस की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही।

शिक्षा संस्थानों के साथ-साथ न्यायालयों के गठन और नये स्वरूप ने भी भारतीय समाज व्यवस्था को प्रभावित किया। वारेन हेस्टिंग्स की नई न्याय व्यवस्था के दो परिणामों पर गौर किया जा सकता है। "समानता के नियम की स्थापना तथा सकारात्मक अधिकारों की चेतना का निर्माण। अंतिम बात निम्न वर्गों के अत्यधिक दब्बूपन के कारण धीरे विकसित हुई, जिसने उन्हें समान कानूनों की व्यवस्था का लाभ लेने और कानूनी कार्यवाही द्वारा अपने अधिकारों को सही साबित करने से रोका। किन्तु शनैः शनैः एक परिवर्तन हुआ। उदाहरण के लिए, 1841 में यह देखा गया कि चमार, जो कि उत्तर भारत के अछूत थे, अपने जमींदारों के खिलाफ मुकदमा दायर करने से नहीं डरते थे।"[98] जमींदार तो नहीं लेकिन प्रेमचंद ने 'गोदान में सीलिया चमारिन के प्रसंग में मातादीन-दातादीन (ब्राह्मण) के विरुद्ध इस अधिकार चेतना के सक्रिय होने का परिचय दिया है।

ब्रिटिश सत्ता ने भारत के आर्थिक दोहन के लिए जिस केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था की स्थापना की। उसके उपादानों और उससे उत्पन्न होनेवाले संभावित परिणामों पर उसका नियंत्रण नहीं रह सका। दीपक कुमार ने अपनी पुस्तक 'साइंस एंड दि राज' में ब्रिटिश शासन और विज्ञान के संदर्भ में जो बात कही है वह समान

---

96. अर्चना वर्मा-अस्मिता विमर्श का स्त्री स्वर, समकालीन सृजन, शंभुनाथ (संपादक) अंक-21, 2002 ई, पृ०सं०-207

97. वीर भारत तलवार - राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' और हिन्दी नवजागरण
तद्भव, अप्रैल-2002, अंक-7, सपांदक (अखिलेश), पृ०सं० 39

98. योगेन्द्र सिंह - भारतीय परंपरा का आधुनिकीरण, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर, 2006 ई० पृ०सं० 176-177

रूप से ब्रिटिश सत्ता के आधुनिकीकरण के अन्य उपादानों पर भी लागू होती है। "दीपक कुमार ने उपनिवेश और उसकी राजधानी में रहनेवालों के विज्ञान में स्पष्ट और असंदिग्ध अंतर को उसके संरक्षक और प्रयोक्ता के लक्ष्य, अंतर्वस्तु और मानसिकता के आधार पर अलगाया है। वह कहते है कि औपनिवेशिक प्रभाव के बावजूद वैज्ञानिक विचारों का निर्माण, संक्रमण और ग्रहण क्रमशः अपनी एक स्वायत्त सत्ता और गति धारण कर लेता है।"[99] जैसे अंग्रेजों ने देशी सेना का गठन राजस्व वसूली और आंतरिक उपद्रवों के दमन की दृष्टि से मूलतः की थी, लेकिन "साथ ही साथ भारतीय जनता के प्रतिरोध के एक आम केन्द्र को भी संगठित कर दिया था।"[100] विलियम कैरे ने बाईबिल का अनुवाद कर ईसाई धर्म का प्रचार प्रसार करना चाहा। भारतीय धर्मग्रंथों के अन्य भाषाओं में अनुवाद और प्रचार-प्रसार का रास्ता खुल गया। 'प्राच्यविद्याविदों ने अपनी श्रेष्ठता की बातें की तो पुरातात्त्विक अभिलेखों, पुराणों और धर्म ग्रंथों से ढूंढकर जवाब सामने रख दिये गये। वर्चस्व की संस्कृति का प्रत्युत्तर प्रतिरोध की संस्कृति को विकसित कर के दिया गया।

अंग्रेजों ने जिस भारतीय लघु एवं कुटीर उद्योगों का संपूर्ण नाश कर दिया था, उसके परिणामों की चर्चा करते हुए कार्ल मार्क्स ने कहा था कि "अंग्रेजी भाप और विज्ञान ने सारे हिन्दुस्तान में खेती और उद्योग की एकता को नष्ट कर दिया।"[101] "... हिन्दुस्तानी सूत कातनेवाले और बुनकर दोनों का सफाया करके ... उनके आर्थिक आधार को नष्ट करके इन छोटी-छोटी अर्द्ध बर्बर अर्द्ध सभ्य बस्तियों को छिन्न-विच्छिन कर दिया है और इस तरह उसने एशिया की महानतम् और सच कहा जाय तो एकमात्र सामाजिक क्रांति कर डाली है।"[102]

अपनी ओर से अंग्रेजों ने भारत के आर्थिक दोहन और विकास को अवरुद्ध करने में कोई कोर-कसर नहीं रख छोड़ी थी। अंग्रेजों की इस नीति को समझकर ही संभवतः इकबाल ने 'तराना-ए-हिन्दी' नज़्म में ये पंक्तियाँ लिखी थीं -

---

99. Deepak Kumar makes implicit and explicit distinctions between colonial and Metropolotian science in terms of their aims, contents and the mentalities of their patrons and practitioners. He argues that despite colonial influence the generation, transmission and reception of scientific ideas gradually acquired an autonomy and momentum of their own. Deepak Kumar – Science and the Raj, Oxford University Press, 2006, Pg. No. from flap.

100. कार्ल मार्क्स फ्रेडरिक एंगेल्स - भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (1857-59), पी०पी०एच०, 1963, पृ०सं० 4

101. वही, पृ०सं० 12

102. ...Sweeping away both Hindu spinner and weaver, dissolved these small semi-barbarian, semi civilized communities, by blowing up their economical basis, and thus produced the greatest, and, to speak the truth, the only social revolution ever heard of in Asia." Marx Engels – the First Indian War of independence 1857-1859 Progress Publishers Moscow, 1988, Pg. No. 16.

यूनान मिस्त्र रोमां सब मिट गये जहाँ से। / अब तक मगर है बाकी नामो-निशां हमारा।। / कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी। / सदियों रहा है दुश्मन दौरे-जमाँ हमारा।।

ये जो 'कुछ बात हैं, उसके स्वरूप और संरचना की वह स्पष्ट नहीं है। सभी लेखक, कवि, नेता, देशभक्त, समाजसुधारक, धर्मसुधारक, क्रांतिकारी अपने-अपने स्तर से इसे तलाशने और परिभाषित करने में लगे थे। नये-नये मार्ग सामने आ रहे थे और इसी से भारत का 'स्वत्व' निर्मित हो रहा था। कोई अकेला कारक इस 'स्वत्व' की निर्मिति के लिए पूर्ण रूप से उत्तरदायी नहीं था। अनेक धारायें मिलकर इस 'स्वत्व' को 'गह' रही थीं।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबंध 'अशोक के फूल' में लिखा है कि "संघर्षों से मनुष्य ने नई शक्ति पाई है। हमारे सामने समाज का आज जो रूप है वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रुप है। देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बाद की बात है। सबकुछ में मिलावट है, सब कुछ अविशुद्ध है। शुद्ध है केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा"[103] क्या नहीं लगता कि 'दुर्दम जिजीविषा' ही 'वह कुछ बात है' (इकबाल की) जो हमारी हस्ती को मिटने से बचाये हुए है।

अपनी इस 'दुर्दम जिजीविषा' के बावजूद भारत पर अंग्रेजी नीतियों के दुष्प्रभाव भी पड़े। निरंतर आर्थिक दोहन की प्रक्रिया से "1813 तक जो भारत मुख्यतया निर्यात करनेवाला देश था, पर अब वह आयात करनेवाला देश बन गया।"[104] भारत के व्यापारिक पूँजीवाद का स्वाभाविक विकास अंग्रेजों के द्वारा बाधित किया जा चुका था। फूट डालो और राज करो (Divide and rule) की नीति सफल हो गयी थी। हिन्दू-मुस्लिम की आपसी एकता खंडित हो चुकी थी। नौकरी में वरीयता, मार्ले मिण्टो सुधार, अदालती भाषा के प्रयोग, हिन्दी-उर्दू विवाद, गोहत्या, आदि कुछ ऐसे मामले थे, जिसने हिन्दू-मुस्लिम के मध्य भेद को और गहरा करने का कार्य किया। अतः आधुनिकता, मध्यवर्ग के साथ-साथ सांप्रदायिकता भी अंग्रेजी राज का ही परिणाम है।

पारंपरिक कृषि और भारतीय उद्योग धंधो का नाश कर अंग्रेजों ने इससे जुड़ी संयुक्त परिवार की परंपरा के विघटन को भी बढ़ावा दे दिया था। हिन्दी साहित्य में 'संयुक्त परिवार' के विघटन को लेकर दो प्रतिक्रियाएँ देखने को मिलीं। बालकृष्ण भट्ट जहाँ 'संयुक्त परिवार' को राष्ट्र के विकास में बाधक मानते थे वहीं प्रेमचंद

---

103. हजारी प्रसाद द्विवेदी - अशोक के फूल, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, 1999 ई०, पृ०सं० 16

104. Marx Engels - The first India war of Independence (1857-59). Progress Publishers Mascow, 1988, Till 1813 India had been chiefly an exporting country, while it now became an importing on Pg. No. 23.

का संपूर्ण कथा साहित्य इस 'अलग्योझा' के खिलाफ है। राष्ट्र के विकास की अपनी-अपनी धारणायें थीं। इसकी चर्चा आगे करेंगे।

आधुनिक शिक्षा ने पश्चिमीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया था। पश्चिमीकरण से तात्पर्य "उन समस्त सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और व्यापक रूप से मानव मूल्यों, प्रतिमानों तथा उसी प्रकार की संस्थाओं और विधाओं को अपना लेना है, जिनसे पश्चिम और यूरोप गुजरा है।"[105] इससे स्पष्ट है कि यूरोप में इनके जो परिणाम सामने आये थे, उसी प्रक्रिया के अनुसरण से उसी से मिलते-जुलते लेकिन (कई अर्थों में भिन्न) परिणाम यहाँ भी देखने को मिले।

"राजनीतिक जीवन में लोक (Public) के उदय को एक 'कैटेगरी' के तौर पर इतिहासबद्ध करनेवाले आरंभिक विद्वानों में जार्गुन हैबरमास आते हैं। पश्चिमी यूरोप के इतिहास में लोकवृत्त (Public sphere) के उद्‌गम के स्त्रोत तलाशते हुए - जहाँ 'प्राइवेट सिटिजन्स' (ऐसे नागरिक जो सरकारी पदों पर न हो) सार्वजनिक जीवन पर तर्कपूर्ण बहस और अपनी राय व्यक्त करते हों। हैबरमास ने दिखलाया कि कैसे यूरोपीयन उच्च मध्य युग में होने वाले आर्थिक और सामाजिक विकास ने 18वीं शती के बुर्जुआ लोक वृत्त (bourgeois public sphere) के निर्माण में योगदान दिया। यह इतिहास है। हैबरमास कहते हैं, जो एक उदार लोकवृत्त के उदय की (और बाद में रूपांतरण तथा क्षय) अनुमति देता है। शिक्षित जनसमुदाय लोकहित के विषयों पर बहस एवं राय व्यक्त कर सकते हैं। इस लोकवृत्त का वर्णन इस रूप में किया गया है कि - 'एक ऐसा वृत्त (sphere) जो समाज और राज्य के बीच मध्यस्थ रहे, जिसमें जनता स्वयं को ऐसे संगठित करे कि वह लोकधारणा (Public opinion) की धारक हो।'[106]

---

105. धनंजय वर्मा - आधुनिकीकरण और आधुनिकता, समकालीन सृजन - शंभुनाथ (संपादक) अंक - 21, 2002 ई० पृ०सं० 75

106. .....Jurgen Habermas was one of the first scholars to historicize the emergance of the 'public' as a category in political life (habermas 1989). Tracing the origins of this public sphere-where groups of private citizens can rationally disease and comment upon public life-to developments in the history of western Europe., Habermas argues, which allows for the emergence (and the later transformation and degeneration) of a liberal public sphwere where educated people could discuss and comment upon matters of general interst, and represent these as public opinion. This public sphere has been described as a sphere which mediates between society and state, in which the public organires itself as the bearer of public opinion.

Sanjay Joshi - Fractured Modernity, Oxford University Press, 2005] Pg. No. 31

औपनिवेशिक काल में ऐसा ही लोक-वृत्त (Public sphere) भारतेन्दु-मण्डल के रूप में हमें देखने को मिलता है। 'सांड्रिया फ्रेटाग (Sandria Freitag) का मानना है कि लोकवृत्त, एक साम्राज्यवादी व्यवस्था की तुलना में एक राष्ट्र जो स्वयं शासित हो, में अलग होगी।'[107] औपनिवेशिक शासन और उसके प्रेस एक्ट के कारण भारतेन्दु युग में अंग्रेजी राज की सीधी आलोचना व्यंग्य, नाटकों लोक साहित्य के प्रचलित रूपों, मौखिक परंपरा वाले लोकगीतों आदि में देखने को मिलती है। फिर भी पत्र-पत्रिकाओं और सभा एवं व्याख्यानों में यथावसर भारतीय जनता की इच्छाएँ इन साहित्यकारों-पत्रकारों के माध्यम से प्रकट होती रहती थीं। इनकी सांस्कृतिक चिंताएँ, सामाजिक सरोकार और राष्ट्र के प्रति कटिबद्धता इनके लेखन में झलकती है।

"भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है? पहली बार यह व्याख्यान 3 दिसम्बर 1884 ई० की 'नवोदिता हरिश्चंद्र चंद्रिका पत्रिका में प्रकाशित हुआ था।"[108] 1905 ई० में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा कि 'भारत को क्या करना चाहिए? (what has India to do?), महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 1908 ई० में 'सम्पत्तिशास्त्र' की रचना की। प्रेमचंद ने 1936 ई० में 'साहित्य का उद्देश्य' में साहित्य को राजनीति के आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सचाई कहा और अपने समग्र लेखन में राष्ट्र के निर्माणकारी भूमिका में साहित्य को देखा। औपनिवेशिक काल का साहित्य सृजन राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भों में हुआ। औपनिवेशक हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद की जो अवधारणा विकसित हुई उसका अनिवार्य संबंध इन संदर्भों से है।

मार्क्स ने कहीं लिखा है कि आलोचना का आरंभ धर्म की आलोचना से होता है। "19वीं सदी का भारतीय समाज धार्मिक था, जिसमें बड़ा से बड़ा बौद्धिक समाजसुधारक भी धार्मिक हुआ।[109] हिन्दी के साहित्यकारों ने धर्मसुधार और समाज-सुधार के प्रति कौन-सा रूख अपनाया? अपने दौर के इन आंदोलनों से उनका लेखन किस तरह और कितना प्रभावित हुआ? औपनिवेशिक आधुनिकता की विसंगतियों को समझते हुए भारतीय परंपरा के किन पक्षों का पुनर्पाठ तैयार किया

---

107. Sandria Freitag presumes that the public sphere would necessarily be different in an imperial setting, compared to a nation that rules itself. Do, Pg. No. 31.

108. नामवर सिंह - भारतेन्दु और भारत की उन्नति, आलोचना, सहस्त्राब्दी अंक-चार, 2001, जनवरी मार्च संपादक-परमानंद श्रीवास्तव, पृ०सं-7

109. वीर भारत तलवार - हिन्दू नवजागरण की विचारधारा -सत्यार्थ प्रकाश' समालोचना का एक प्रयास, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान शिमला - 2001 ई० पृ०सं० 52

गया? आधुनिकता और परंपरा के मध्य संबंध क्या रहे? इन प्रश्नों के आलोक में हिन्दी साहित्यकारों की भूमिका का रेखांकन अगले अध्याय में है।

तालिका / साक्ष्यः-

रेलपथ मील में

सन् 1973	5,697
सन् 1880	8996
सन् 1885	12386
सन् 1890	16984
सन् 1895	19671
सन् 1899	23755
सन् 1906	29000

एक बार आगम और निर्गम के आंकड़े देखिए -

	आमद (रूपयों में)	**रफ्त (रूपयों में)**
सन् 1854-55	147709289	201942580
सन् 1859-60	406221030	288892100
सन् 1864-65	495142750	694716060
सन् 1869-70	468823270	535137287
सन् 1874-75	443631596	579845495
सन् 1879-80	528213980	692474106
सन् 1884-85	695912696	852259221
सन् 1879-90	866569899	1053667208
सन् 1894-95	861101999	1171398499
सन् 1903-04	1311183795	1685610410
सन् 1905-06	1437463449	1774130816

सखाराम गणेश देउस्कर - देश की बात, अनुवादक-बाबूराव विष्णु पराड़कर नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (2005 ई०) पृ०सं० 118

तृतीय अध्याय

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता और परंपरा का द्वन्द्व

i) आधुनिकता: समाज-सुधार और धर्म-सुधार आंदोलनों के परिप्रेक्ष्य में

ii) आधुनिकता: राष्ट्रीय आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता और परंपरा का द्वन्द्व

i) आधुनिकता: समाज-सुधार और धर्म-सुधार आंदोलनों के परिप्रेक्ष्य में

आधुनिकता और परंपरा, दोनों एक दूसरे के लिए अनिवार्य संदर्भ है। अगर आधुनिकता ने परंपरा को प्रभावित किया है तो परंपरा ने भी आधुनिकता को प्रभावित किया है। फिर क्या कारण रहे कि आधुनिकता का जो एक सहजबोध विकसित हुआ वह परंपरा के निषेध को ही ज्यादातर दर्शानेवाला हुआ? इसके कारणों की पड़ताल के लिए ऐतिहासिक परिस्थितियों का विश्लेषण आवश्यक है।

पहली बात तो यह कि परंपरा के मायने क्या हैं? हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने एक व्याख्यान में कहा था कि "परंपरा का शब्दार्थ है एक का दूसरे को, दूसरे का तीसरे को दिया जाने वाला क्रम। वह अतीत का समानार्थक नहीं है। परंपरा से हमें समूचा अतीत प्राप्त नहीं होता। उसका निरंतर निखरता, छंटता, बदलता हुआ रूप प्राप्त होता है। सम्प्रदाय उसे कहा जाता है जब प्रयत्न पूर्वक किसी आचार या विचार को पीढ़ियों तक सुरक्षित रखने का प्रयत्न होता है। सम्प्रदाय स्थिति संरक्षक है, इसलिए वह परम्परा के विरूद्ध है और इतिहास के भी, साथ ही आधुनिकता के भी।"[1]

जब कभी भी सम्प्रदाय और रूढ़ि को परंपरा से अलग कर पाने में चूक होती है, तब परंपरा की गलत समझ बनती है। चूँकि भारतीय परिप्रेक्ष्य में परंपरा आधुनिकता को समझने के अनिवार्य संदर्भों में से एक है, इसलिए संदर्भ की गलत समझ गलत निष्कर्षों तक पहुँचा देती है।

"मनुष्य, उसकी सभ्यता, उसका ज्ञान-विज्ञान-एक अर्थ में समूचा जीवन और जगत निरंतर विकास का ही परिणाम है। यह विकास कोई एक दिन या चंद दिनों का प्रतिफल नहीं है और न ही यह कहा जा सकता है कि इस विकास के मार्ग में कभी-कोई अवरोध या ह्रास की प्रवृतियाँ न रही होंगी। वस्तुतः कार्य-कारण संबंधों पर अवलंबित इन दो विरोधी प्रवृत्तियों के नैरन्तर्य को ही हम 'परंपरा' नाम दे सकते हैं - चाहे वह परंपरा इतिहास की हो या साहित्य और संस्कृति की। ज्यादा से ज्यादा यही कहा जा सकता है कि इस चली आ रही क्रमबद्धश्रृंखला में अपनी प्रासंगिकता बनाये रखने वाले तत्व किसी भी परंपरा के जीवंत तत्व होते हैं और काल की गति के साथ अप्रासंगिक होते जाने वाले तत्व जड़ होते हैं। ये जड़ तत्व ही किसी परंपरा

---

[1] नामवर सिंह - इतिहास की शव-साधना, परंपरा की आधुनिकता: हजारी प्रसाद द्विवेदी संपादक - अशोक वाजपेयी, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997 ई०, पृ०सं०-155

के विकास में अवरोध बनते हैं।"[2] इससे स्पष्ट है कि निरंतर निखरते जाने और प्रासंगिकता की दृष्टि से परिष्कार की प्रक्रिया में गतिशील परंपरा जिन अग्राह्य और मृत तत्वों को छोड़ती चलती है, वे ही रूढ़ियाँ हैं।"[3]

"'हिन्दी शब्दसागर' के अनुसार परंपरा का अर्थ है : एक के पीछे दूसरा, ऐसी अटूटश्रृंखला या क्रम (विशेषत: काल या घटनाओं आदि का), अनुक्रम, पूर्वापर क्रम और बराबर चली आती हुई रीति या प्रथा। इसी तरह परंपरा शब्द के अंग्रेजी समानार्थी 'ट्रेडिशन' का यह अर्थ माना जाता है कि एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को विश्वास और रीति-रिवाजों का निरंतर दिया जाना तथा अतीत द्वारा दिये गये विश्वास, मान्यताएँ और रीति-रिवाज।"[4] "परंपरा का कुछ अंश ऐसा भी होता है जो सहज साध्य नहीं है। उसे सायास अर्जित करना पड़ता है, साधा जाता है। परंपरा के सांस्कृतिक पक्ष को श्रमपूर्वक साधना पड़ता है"[5] चयन, अर्जन या साधना उन्हीं तत्वों का किया जाता है, जो युगीन संदर्भों में प्रासंगिक होते हैं। तो परंपरा का अर्थ है "बदलती हुई परिस्थितियों की चुनौती के सम्मुख एक सनातन जीवन दृष्टि के अनभिव्यक्त रूपों का उद्‌घाटन।"[6] और "अगर परंपरा स्वाभाविक रूप से विकसित होती रहे तो वह सामान्य अर्थ में निरंतर अपना आधुनिकीकरण करती रहती है।"[7]

आधुनिकता और परंपरा के मध्य संबंधों को लेकर दो धारणाएँ प्रचलित है। पहली आधुनिकता परंपरा का निषेध है तथा दूसरी आधुनिकता परंपरा के प्रगतिशील तत्वों का ग्रहण भी है। पहली धारणा, जिसमें आधुनिकता और परंपरा दो विपरीत छोर पर है, का विकास आधुनिकता की अवधारणा के विकास के साथ हुआ। इसके मूल में अंग्रेजों की साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी नीति थी। पिछले अध्याय में दिखलाया गया कि भारत में आधुनिकता के भौतिक आधारों के निर्माण और विकास के मूल में आर्थिक दोहन की विचारधारा कार्य कर रही थी। उसी प्रकार आधुनिकता के विचाराधारात्मक आधार के निर्माण में लगातार भारतीयों को मानसिक गुलाम बनाये रखने की योजना कार्य कर रही थी।

---

[2] गीता शर्मा- डॉ० रामविलास शर्मा और परंपरा का मूल्यांकन, वाणी प्रकाशन, 1999 ई०, पृ०सं०-13

[3] वही पृ० सं०-15

[4] वही पृ० सं०-13

[5] बच्चन सिंह - हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, वाणी प्रकाशन, 2001 ई०, पृ० सं० 61

[6] नंद किशोर आचार्य-सनातनता की साधना, परंपरा की आधुनिकता: हजारी प्रसाद द्विवेदी संपादक-अशोक वाजपेयी, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली-1997 ई० पृ० सं०80

[7] सत्येंद्र रंजन - गुलामी की परंपरा: आधुनिकता की आजादी - स्त्री परंपरा और आधुनिकता - राजकिशोर (संपादन), वाणी प्रकाशन, 2004 ई०, पृ० सं०-40

हमें नहीं भूलना चाहिए कि "साम्राज्यवाद जब किसी देश पर कब्जा करता है तब वह उसके भूगोल और इतिहास को ही नहीं, वहाँ के लोगों के दिलो-दिमाग को भी अपना उपनिवेश बनाता है। यह काम 18वीं - 19वीं सदियों के साम्राज्यवाद ने किया था। पश्चिम का उपनिवेशवाद अपने सारे पाखंड और बर्बरता के साथ दुनिया को गुलाम बनाने का जो अभियान चला रहा था, उसे वह असभ्यों को सभ्य बनाने का अभियान कहता था। दिसंबर, 1859 में जॉन स्टुअर्ट मिल ने लिखा था कि जो राष्ट्र अब भी बर्बरता की अवस्था में है उनके लाभ के लिए यह जरूरी है कि उन्हें पराजित किया जाए और वे दूसरों की अधीनता में रहें। ऐसे राष्ट्रों के लिए स्वाधीनता और राष्ट्रीयता आम तौर पर उपयोगी नहीं है। मिल ने भारत के प्रसंग में यह भी कहा था कि भारतीय सांस्कृतिक रूप से लोकतंत्र के योग्य नहीं है।"[8] हमें सभ्य बनाने के नाम पर, लोकतंत्र के योग्य बनाने के नाम पर जो कुछ किया गया उससे आधुनिकता की सैद्धांतिकी निर्मित हुई। सखाराम गणेश देउस्कर ने अंग्रेजों द्वारा भारतीय जनता के दिलो-दिमाग पर कब्जे की कोशिश को 'बुद्धि का युद्ध' की संज्ञा देते हुए लिखा है कि "यद्यपि अंग्रेज हमें सभ्य बनाने का दावा कर रहे हैं, लेकिन यह एक प्रकार से भारतीय लोगों के चित्त पर विजय का अभियान है, जिसके माध्यम से वे भारतीय समाज और संस्कृति को अपने उद्देश्यों के अनुरूप ढालना चाहते हैं।"[9]

लार्ड मैकाले की शिक्षा का दो मूल उद्देश्य था पहला कि अपने सेक्रेटेरियट के लिए क्लर्क पैदा करना और दूसरा "नई शिक्षा-प्रणाली चलाकर देशवासियों का विचार स्रोत नई राह से बहाना और पाश्चात्य सभ्यता की सहायता से लोगों की बुद्धि को मोहित कर उनमें आत्माभिमान और आत्मशक्ति पर अविश्वास उत्पन्न कराना।"[10] 1853 में पार्लियामेंट के सामने सर चार्ल्स ट्रेवीलियन ने स्वीकार किया था कि "हम लोग (अंग्रेज अधिकारी) जो कुछ कर रहे हैं, उसका उद्देश्य प्राचीन हिन्दू संस्था के उन्नायकों के साथ अनुचित उत्तेजनापूर्ण संघर्ष में प्रवेश करना नहीं है, वरन् इस देश के निवासियों को एक अत्यंत ज्ञान-मंदिर का द्वार उद्घाटित करने वाली बिल्कुल नई कुंजी देना है। इस नई प्रणाली के बीजारोपण का प्रथम प्रयोजन भारतवासियों के मस्तिष्क से उनके प्राचीन प्रणाली के प्रभाव को पूर्णत: उन्मूलित करना है। अधिकतर वे इस प्रणाली से परिचित भी नहीं होते। यह एक महान सत्य है कि किसी देश की

---

[8] मैनेजर पाण्डेय - एक आंदोलनकारी किताब की कहानी, (देश की बात की भूमिका) नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2005 ई०, पृ० सं०-22-23

[9] मैनेजर पाण्डेय - एक आंदोलनकारी किताब की कहानी, (देश की बात की भूमिका) नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2005 ई०, पृ० सं०-23

[10] वही, पृ० सं०-261

उदीयमान संतान कुछ ही वर्षों में संपूर्ण राष्ट्र बन जाती है और यदि हम जनता के चरित्र में कोई प्रभावशाली परिवर्तन करना चाहते हैं तो हमें चाहिए कि उन्हें बचपन से ही ऐसी शिक्षा दें कि वे आगे चलकर हमारी इच्छानुसार चलें, तब हमारा समस्त धन व्यय सार्थक हो जायेगा, हमें अपने मार्ग में परंपरागत रूढ़ियों से संघर्ष न करना होगा; (इस शिक्षा से) हमें कुछ ऐसे मस्तिष्क वाले मनुष्य मिल सकेंगे, जिनसे हम अपना काम निकाल सकेंगे और हम प्रभावशाली और बुद्धिमान युवकों के ऐसे वर्ग का निर्माण कर सकेंगे जो आगे चलकर हमारी सहायता के बीच ही हमारी प्रणाली के सक्रिय प्रचारक बने रहेंगे।"[11] लेकिन अंग्रेज अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल न हो सके। शिक्षित युवाओं में से एक ऐसा वर्ग भी निकला जो अंग्रेजों के दावों-प्रतिदावों की आलोचना अपने विवेक से करने लगा। अंग्रेजों ने हमे सभ्य और आधुनिक बनाने के लिए जिन साधनों का प्रयोग किया, इस शिक्षित पीढ़ी ने अपने इतिहास, सभ्यता एवं परंपरा में उनका प्रत्युत्तर तलाशने की कोशिश की।

"जेम्स मिल ने भारत का इतिहास लिखते हुए पहली बार साम्प्रदायिक आधार पर इसका विभाजन किया, जैसे - हिन्दू-काल, मुस्लिम-काल तथा ब्रिटिश-काल। पूरे का पूरा मध्ययुगीन काल मुस्लिम शासनकाल कहलाता है, जो भारत पर विदेशी जाति के प्रभुत्व को रेखांकित करता है। अंग्रेजों ने साम्प्रदायिक आधार पर इतिहास का विभाजन करते हुए अपने शासन को धर्मनिरपेक्ष तथा ज्ञानोदय का शासन बताते हुए उसे ईसाई शासन की जगह ब्रिटिश शासन कहा तथा यह जताने का प्रयास किया कि उन्होंने भारत को न सिर्फ मुसलमानों के साम्प्रदायिक शासन से मुक्ति दिलाई बल्कि शांति व धार्मिक सहिष्णुता के युग का सूत्रपात भी किया।"[12] इस धारणा या जेम्स मिल के इस प्रयास को चित्त विजय (Political Hypnotism) के अभियान का ही हिस्सा माना जाना चाहिए।

---

[11] डॉ॰ श्री कृष्ण लाल- आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, हिन्दी परिषद प्रकाशन, विश्वविद्यालय, प्रयाग, संशोधित तथा परिवर्धित (चतुर्थ) संस्करण -1965 ई॰

What are we doing is not enter to an unseemly and irritating conflict with the upholds of this ancient systems (Hindunism), but to give an entirely new key to the natives opening to them a very superior knowledge. The first effect is this introduction to a new system is to destroy entirely the influence of ancient system upon their minds in most instances they are never initiated in it. It is a great truth that the rising generation becomes the whole nation in the course of a few years, and that if we desire to make any effectual change in the character of the people, we must take them when they are young and train them in the way we would have them go, all of our money them will be laidout, all shall have no prejudices to contend with; we shall have supplied minds to deal with and we shall raise up a class of influential intelligent youth who will in course of a few years become the active propagator of our system with little or no assistance from us. Pg No. 19-20

[12] मुबारक अली - इतिहासकार का मतान्तर (अनुवाद प्रेम कपूर), राजकमल प्रकाशन दिल्ली, 2002 ई॰, पृ॰सं॰-19

दलितों और निम्न वर्ग के लोगों की स्थिति चाहे मुगलों का शासन हो या किसी हिन्दू शासक का, कभी बदली नहीं थी। 'कोउ नृप होऊ हमहि का हानि।' "उनके लिए स्वजातीय राजा और परजातीय राजा एक समान है। चाहे स्वजातीय हो या परजातीय, सुशासन करने पर दोनों एक बराबर है। स्वजातीय राजा सुशासन करेगा और परजातीय सुशासन नहीं करेगा, इसका क्या ठिकाना; और अगर इसका ठिकाना नहीं है तो फिर स्वजातीय राजा के लिए प्राण कौन दे?"[13] मूलत: "जो पीड़ित होता है उसके लिए स्वजाति द्वारा पीड़न और भिन्न जाति द्वारा पीड़न दोनों ही समान है। स्वजाति के हाथों मिली पीड़ा कुछ मीठी लगती हो, और परजाति कृत पीड़ा कुछ तिक्त मालूम पड़ती हो, ऐसा तो होता नहीं है।"[14] "एन० के बोस ने लिखा है कि नमाशूद्रों ने 1905 के बंगभंग विरोधी आंदोलन में भाग नहीं लिया था और 1907 में स्वदेशी आंदोलन के चरम उभार के दिनों में प्रतिनिधि नामशूद्र नागरिकों का एक शिष्ट मण्डल लैफ्टिनेंट गवर्नर से मिला था और उसने अंग्रेजी राज बनाए रखने की प्रार्थना की थी।"[15] इन बातों को रखने का मतलब सिर्फ इतना है कि जेम्स मिल सरीखे अन्य साम्राज्यवादी प्रयत्नों का इस वर्ग ने कोई विशेष विरोध नहीं किया था।

अंग्रेजों ने औद्योगिक विकास के लिए जिन भौतिक आधारों का विकास किया, अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया इनके प्रभाव से भारत में मध्यवर्ग का विकास हुआ। यह "नवशिक्षित बुद्धिजीवी 19वीं सदी की पश्चिमी उपलब्धियों से चमत्कृत था। वह पश्चिमी जीवन शैली और अंग्रेजी जीवनमूल्यों का अनुकरण करके अपनी विशेष सामाजिक हैसियत प्रदर्शित करता था। लेकिन पश्चिमी ढाँचे की आधुनिकता साम्राज्यवादी हितों के अनुकूल थी, हमारी राष्ट्रीय और सामाजिक मान्यताओं से मेल नहीं खाती थी। स्वभावत: आधुनिकता और पश्चिमीकरण को एक मानकर भारतीय समाज और परंपरा के स्रोतों से रस लेते हुए और उन्हें उचित ठहराते हुए विभिन्न प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न हुई। वे या तो सभी आधुनिक और वैज्ञानिक खोजें भारतीय वेदों में उपलब्ध कर लेती थीं या पश्चिम को पूर्णत: अस्वीकार करते हुए यह भूल जाती थीं कि विज्ञान और संस्कृति की उपलब्धियाँ सार्वभौम होती हैं, उनका जन्म भले एक देश में होता है। अगर पश्चिम का अंधानुकरण सामाजिक परिवर्तन का विवेकपूर्ण रास्ता नहीं था तो भारतीय रूढ़िवाद पश्चिमीकरण का विकल्प नहीं था क्योंकि एक अधिक समर्थ शक्ति के आगे अतीत हमारी रक्षा नहीं कर सकता था।"[16]

---

[13] अमित्रसूदन भट्टाचार्य (संपा.) - बंकिमचंद्र प्रतिनिधि निबंध (अनुवाद-प्रयाग शुक्ल) नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2005 ई०, पृ० सं०-15

[14] वही पृ० सं० -82

[15] एम.एन. श्रीनिवास - आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल पेपरबैक्स 2005 ई०, पृ०सं०-99

[16] अजय तिवारी - आधुनिकीकरण पर पुनर्विचार, तद्भव, अंक-11, अगस्त, 2004, अखिलेश (संपादक) पृ०सं०-33

बावजूद इसके साम्राज्यवादी हितों के प्रसार हेतु चित्त विजय (Political hypnotism) के अभियान के फलस्वरूप जिस चेतना (आधुनिकता) का प्रसार किया जा रहा था, उसका प्रतिकार परंपरा, सभ्यता और संस्कृति के माध्यम से किया गया। वर्चस्व स्थापना के अंग्रेजों के प्रयास के सामानांतर 'पुनरूत्थानवादी' और 'फंडामेंटलिस्टों' सुधारवादियों ने प्रतिरोध की संस्कृति विकसित की। इस सुधारवादियों और पुनरूत्थानवादियों के दृष्टिकोण की अपनी सीमायें थी लेकिन इसने सांस्कृतिक गौरव के साथ-साथ भारतीयों के मध्य चेतना और जागरूकता का भी प्रसार किया। इन सुधारवादियों और पुनरूत्थानवादियों ने आधुनिकता के समक्ष और समकक्ष परंपरा को प्रतिमान के रूप में प्रस्तावित किया।

यहाँ पहले पुनरूत्थानवाद का आशय क्या है, यह समझना आवश्यक है। "पुरानी परंपराओं और मूल्यों को आधुनिक युग में प्रचलित करने की कोशिश करने और प्रगति को रोकने के मोटे अर्थ में इसका इस्तेमाल होता है।... आधुनिकता के सतही और अवैज्ञानिक तथा असफल प्रयोग से ही पुनरूत्थानवाद का जन्म होता है। इसलिए यह उन समाजों में एक ऐतिहासिक अनिवार्यता है, जहाँ आधुनिकता को सर्जनात्मक प्रक्रिया से नहीं, मौलिक विचारों और व्यवहार द्वारा नहीं सिर्फ नकल के रूप में अपनाया जाता है, जहाँ न आत्मिक स्तर पर न ही भौतिक स्तर पर पूरा समाज आधुनिकता से लाभान्वित होता है। अगर अतीत में कोई पुरानी सभ्यता चली आ रही थी तो प्रतिरोध की ताकत उसी से मिलती है। इस प्रतिरोध का नाम पुनरूत्थानवाद है।" [17] और फंडामेंटलिज्म क्या हैं। "लेवेलिन के मुताबिक 'फंडामेंटलिज्म' एक सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन है, जिसका मकसद आधुनिकतापूर्व युगों और धर्म के मूल तत्वों की ओर लौटना नहीं समझना चाहिए। असल में यह मौजूदा या समकालीन धर्मनिरपेक्ष-जनतांत्रिक राजनीति से पैदा हुई चुनौतियों के खिलाफ, उनका मुकाबला करने के लिए धर्म, परंपरा, अतीत और इतिहास का इस्तेमाल करता है। ...मार्टिन मार्टी कहते हैं कि - फंडामेंटलिस्ट वही नहीं है, जो रूढ़िवादी, परंपरावादी या पुराणपंथी हैं, हालांकि इससे उनकी नजदीकी होती है। 'फंडामेंटलिस्ट' किसी जड़ अतीत की पूजा नहीं करता बल्कि अतीत की वकालत करते हुए वह अपनी समकालीन चुनौतियों का जवाब ढूँढता है।

मार्टिन के मुताबिक फंडामेंटलिस्ट हमेशा प्रतिक्रियावादी होते हैं। उनका उभार परंपरा पर आलोचनात्मक हमले के खिलाफ जवाबी रूप में होता है। उनका आंदोलन परंपरा की रक्षा के लिए होता है। वे धर्म के सभी मूल तत्वों पर समान रूप से जोर नहीं देते बल्कि उनमें से कुछ एक तत्वों को चुन लेते हैं और उनकी रक्षा हर हालत

---

[17] किशन पटनायक- विकल्पहीन नहीं है दुनिया-राजकमल प्रकाशन, 2001 ई॰, पृ॰ सं॰ 185

में करने पर जोर देते हैं। वे अक्सर एक पुराने सुनहरे युग की कल्पना करते हैं, जब उन मूल तत्वों का बोलबाला था।

यह दृष्टि ढाई हजार साल के ऐतिहासिक विकास के दौरान आए बदलावों प्रगति, विस्तार, नए सम्पर्कों और उनसे पैदा हुई नई परपंराओं और नई समस्याओं- सब कुछ को नकारते हुए, ऐतिहासिक विकास के सभी प्रभावों से मुक्त होकर प्राचीन काल की किसी एक अवस्था को ही विशुद्ध और वास्तविक रूप कहते हुए उसे लौटाने की दुहाई देती है। यही शुद्धतावादी और पुनरूत्थानवादी दृष्टि है जो फंडामेंटलिज्म की एक बुनियादी विशेषता है।"[18]

"उन्नीसवीं शताब्दी और बीसवीं शताब्दी के आरंभ में सामंतवाद विरोधी और उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्षो में धर्म ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।... प्रारंभिक अवस्थाओं में स्वयं धार्मिक चेतना राष्ट्रीय चेतना का प्रतिबिंब थी। सामाजिक तथा राजनीतिक धारणाएँ, जनतांत्रिक तथा देशभक्तिपूर्ण आकांक्षाएँ, एक श्रेष्ठतर जीवन के लिए आशाएँ - ये सब धार्मिक रूपों में प्रकट हुई थीं। इस प्रकार 19वीं शताब्दी के समाज सुधारकों ने जिस भारतीय नवजागरण का सूत्रपात किया, उसका लक्ष्य धर्म से पूर्णतः विच्छेद कर लेना नहीं था। यह नवजागरण एक ओर पुराने धार्मिक रीति-रिवाजों और कर्मकाण्डों का विरोध करने और दूसरी ओर, नई परिस्थितियों के अनुरूप धर्म की नई व्याख्या करने पर आधारित था। इस प्रकार भारत में पूंजीवाद और आधुनिक सभ्यता के विकास के लिए संघर्ष अभिन्न रूप से धर्म के प्रति दृष्टिकोण से जुड़ा हुआ था।"[19] धर्म सुधार के साथ-साथ परंपरा के जड़ तत्वों को भी संशोधन परिवर्द्धन की प्रक्रिया से गुजरना पड़ा।

"उन्नीसवीं शताब्दी तथा बीसवीं शताब्दी के आरंभिक काल में धार्मिक और सामाजिक सुधारों के जिन आंदोलनों ने राष्ट्रीय जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की, वे सैद्धांतिक दृष्टि से तत्ववादी, मध्ययुगीन तथा अवैज्ञानिक अवधारणाओं पर आधारित थे। तो भी, उनकी अन्तर्वस्तु मूलतः सामंतवाद विरोधी और उपनिवेशवाद विरोधी थी।"[20] इन धर्म और समाज सुधार आंदोलनों में एक ओर जहाँ परंपरा के तत्व अनुस्यूत थे, वहीं दूसरी ओर सामंतवाद विरोध और साम्राज्यवाद विरोध की विशेषताओं से युक्त होने के कारण, आधुनिकता के प्रचार-प्रसार में सहायक भी थे।

---

[18] वीर भारत तलवार - हिन्दू नवजागरण की विचारधारा 'सत्यार्थ प्रकाश' समालोचना का एक प्रयास, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास, शिमला, 2001 ई॰, पृ॰ सं॰-60

[19] के॰ दामोदरन - भारतीय चिंतन परंपरा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस (प्रा॰) लि॰, नई दिल्ली, 2001 (चतुर्थ संस्करण), पृ॰ सं॰ 361

[20] वही - पृ॰ सं॰ 362

आधुनिकता और परंपरा का द्वन्द्व उस पूरे कालखंड की विशेषता है। धर्म और समाज सुधार आंदोलन ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय व्यक्तित्व और साहित्य में भी यह प्रवृति प्रतिफलित हुई है।

राजा राममोहन राय, जो आधुनिक युग के जनक कहे जाते हैं, उनमें भी कबीर और चैतन्य की मानवतावादी परंपरा का प्रभाव है। 'वेदों की ओर लौटो' का नारा देनेवाले दयानंद सरस्वती में पुनरूत्थानवादी स्वर जहाँ प्रचुरता में है; वहीं दूसरी ओर "उन्होंने बहुदेववाद को अस्वीकार किया, निराकार ईश्वर की आराधना का समर्थन किया, परंपरागत ब्राह्मण पुरोहितों की अंध कट्टरता की आलोचना की, मूर्ति पूजा और बाल-विवाह का विरोध किया तथा शिक्षा के प्रसार द्वारा नीची जाति के हिन्दुओं और स्त्रियों के स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया।"[21] इतना ही नहीं उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रचार प्रसार का सबसे अधिक प्रभावपूर्ण और शक्तिशाली साधन बना। बाल गंगाधर तिलक जहाँ एक ओर साम्राज्यवाद का विरोध कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर रूढ़िवादी ताकतों को मजबूती प्रदान कर रहे थे। "एज ऑफ कंसेंट बिल' के कानून बनने के एक माह पश्चात् तिलक ने अप्रैल 12, 1892 को महरट्टा (Maharatta) समाचार पत्र में लिखा "हम बहुत संवेदनशील हैं और इसे हमारे राष्ट्रीय चरित्र पर हमले से कम महसूस नहीं करते। हमारी शिकायत है कि एज ऑफ कंसेंट एक्ट कानून की किताबों में भारतीय राष्ट्र का चरित्र सबसे काले अक्षरों में लिखेगा... जब तक कानून की पुस्तकों में बुरे चरित्र का यह प्रमाण पत्र रहेगा, हम शांति से नहीं बैठेंगे।"[22] यह भी स्मरणीय है कि बाल गंगाधर तिलक और अरविंद घोष दोनों ने गीता का भाष्य लिखा था।

वर्ग, धर्म, विचारधारा, राजनीति, शिक्षा, इतिहास, संस्कृति, समाज सुधार आंदोलन, राष्ट्रीय आंदोलन के क्षेत्र से उदाहरणों के द्वारा उस युगीन परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट करने के प्रयत्न हुए हैं, जहाँ आधुनिकता और परम्परा का द्वन्द्व कमोवेश हर क्षेत्र में व्याप्त है और युगीन साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा है क्योंकि साहित्य भी अपनी सामग्री इन्हीं क्षेत्रों से ग्रहण करता है। महादेव गोविन्द रानाडे ने इस प्रक्रिया को ज्यादा संगत तौर पर व्यक्त किया है - "जब आप अपने को राजनीतिक अधिकारों की तुला पर कमजोर पाते हैं, तो आप सामाजिक व्यवस्था भी अच्छी नहीं बना सकते और जब तक आपकी सामाजिक व्यवस्था तर्क और न्याय पर आधारित नहीं है, तब तक आप राजनीतिक अधिकारों का उपयोग करने के योग्य भी नहीं हो सकते। यदि आपकी सामाजिक व्यवस्था अच्छी नहीं है, तो आप अच्छी आर्थिक

---

[21] के-दामोदरन-भारतीय चिंतन परंपरा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस (प्रा०) लि०, नई दिल्ली, 2001 ई० (चतुर्थ संस्करण) - पृ०सं०-389

[22] योगेन्द्र सिंह - भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर 2006 ई०, पृ० सं०-174

व्यवस्था की स्थापना नहीं कर सकते। यदि आपके धार्मिक विचार निम्न स्तर के और तुच्छ हैं, तो आप सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। यह पारस्परिक निर्भरता आकस्मिक नहीं है। यह हमारी प्रकृति का नियम है।"[23]

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के उदय काल से आधुनिकता और परंपरा के संबंध द्वन्द्वात्मक रहे हैं। इनकी द्वन्द्वात्मकता भी आधुनिकता और परंपरा की अवधारणाओं की समझ और उनके प्रसंगानुकूल संदर्भों से प्रभावित होती रही है। जैसे भारतेन्दु हरिश्चंद्र को आधुनिक हिन्दी गद्य के प्रवर्तन का श्रेय देते हुए भी उन्हें संगत तौर पर आधुनिक नहीं कह सकते। "भारतेन्दु के जीवन में असंगतियाँ थीं, उसमें अंतर्विरोध थे। अमीचंद के घराने की परंपरा से एक नयी परंपरा टक्कर ले रही थी। दरबारी संस्कृति और राजभक्ति से देशभक्ति और जनसंस्कृति की नयी परंपरा टक्कर ले रही थी। इनका परस्पर विरोध जैसे भारतेन्दु के जीवन में झलकता है, वैसे ही उनके साहित्य में भी। कहना चाहिए उस युग की समूची साहित्यिक प्रक्रिया में यह टक्कर मौजूद है।"[24] क्योंकि "उनकी भावावेश की शैली दूसरी है और तथ्यनिरूपण की दूसरी।"[25] बकौल नित्यानंद तिवारी "भारतेन्दु के समय में पहली बार हमारा समाज विचार प्रक्रिया से परिचालित होने की तैयारी कर रहा था।"[26] और ब्रज भाषा के पिछले 400 वर्षों के संस्कार सामाजिक विकास की इस प्रक्रिया को व्यक्त कर पाने में सक्षम न थे। भारतेन्दु मंडल के प्रतापनारायण मिश्र और राधाचरण गोस्वामी जहाँ गद्य में खड़ी बोली हिन्दी को स्वीकार कर रहे थे वहीं पद्य में उसका मुखर विरोध कर रहे थे। स्वयं भारतेन्दु के द्वारा खड़ी बोली में काव्य-सर्जन का प्रयास इन विरोधों को शांत नहीं कर सका।"[27] अतः भारतेन्दु युग में गद्य-पद्य के भाषा के

---

[23] के-दामोदरन-भारतीय चिंतन परंपरा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस (प्रा॰) लि॰, नई दिल्ली, 2001 ई॰ (चतुर्थ संस्करण) - पृ॰सं॰-383

[24] रामविलास शर्मा-भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1995 ई॰, पृ॰ सं॰-127

[25] आचार्य रामचंद्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी संशोधित एवं परिवर्धित तेईसवाँ संस्करण, 1990 ई॰, पृ॰ सं॰-246

[26] नित्यानंद तिवारी-आधुनिक साहित्य और इतिहास बोध, वाणी प्रकाशन 1994 ई॰, पृ॰सं॰-39

[27] राधाचरण गोस्वामी के दो संपादक के नाम पत्र का विवरण यहाँ उपलब्ध है। जिसमें काव्यभाषा के रूप में खड़ी बोली हिन्दी का विरोध करते हुए आपत्तियाँ दर्ज की गई है। जिसका प्रत्युत्तर श्रीधर पाठक ने दिया था। पंडित श्रीधर पाठकजी लिखते हैं - "हमारे मित्रवर मिश्र प्रतापनारायण भी खड़ी हिन्दी की कविता के विरोधी है और अपने 'ब्राह्मण' पत्र में लाला अयोध्या प्रसाद खत्री संगृहीत पद्य की समालोचना में 'लेखक की मनोगति असंभव' सिद्ध करने को कहते हैं कि आधुनिक कवियों के शिरोमणि भारतेन्दुजी ही से 'जब यह (कार्य) न हो सका तो दूसरों का यत्न निष्फल है।"

अयोध्या प्रसाद खत्री-स्मारक ग्रन्थ (सं.) आचार्य शिवपूजन सहाय, श्री नलिनविलोचन शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1960 ई॰, पृ॰सं॰ 75

एकीकरण की कोशिशें व्यक्तिगत प्रयास मात्र बनकर रह गई। "साहित्य में ब्रजभाषा की जगह खड़ी बोली हिन्दी को प्रतिष्ठित करने का काम महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने किया।"[28]

"द्विवेदी जी यह बात अच्छी तरह जानते थे कि शासक जातियाँ दूसरों को गुलाम बनाए रखने के लिए उनकी भाषाओं का नाश करती हैं, उनकी भाषाओं के व्यवहार पर प्रतिबंध लगाती हैं, उन्हें अपनी भाषा सीखने और उसका व्यवहार करने को बाध्य करती हैं।"[29] अंग्रेज हिन्दी के साथ यही कर रहे थे। क्योंकि यदि खड़ी बोली हिन्दी में गद्य और पद्य की रचना होने लगती तो देश के अधिकांश हिस्सों में बोली और समझी जाने के कारण यह राष्ट्रभाषा बनने की हकदार थी। और यदि ऐसा हो जाता, हिन्दी जातीय भाषा के रूप में विकसित हो जाती, जो कि वह हो रही थी तो हिन्दी के माध्यम से जातीय एकता और राष्ट्रीय एकता की स्थिति को सहजता से प्राप्त किया जा सकता था। इसलिए साम्राज्यवादी कोशिशें यह थी कि "हिन्दी को भीतर से तोड़ो, भीतर से न बने तो बाहर से तोड़ो, और सबसे अच्छा यह कि दोनों तरफ से हमला एक साथ करो। जनपदीय उपभाषाओं को हिन्दी से अलग करो और हिन्दी के ऐतिहासिक सहज विकास को हिन्दुस्तानी के जरिए रोको।"[30]

ग्रियर्सन का 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' हिन्दी के जातीय विकास और गठन को भीतर से तोड़ने का एक बाहरी प्रयास था। "इस नीति का जिस व्यक्ति ने सबसे सजग रूप से विरोध किया, उनका नाम महावीर प्रसाद द्विवेदी था।"[31] अंग्रेजों के इस आरोप का कि हम जिस हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रस्तावित कर रहे हैं, उसका न तो कोई व्यवस्थित इतिहास है, न कोश और न ही व्याकरण । इसका निराकरण आगे चलकर आचार्य शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र वर्मा ने कोश और कामताप्रसाद गुरू ने व्याकरण लिख कर किया। वैसे आरंभिक व्याकरण लेखन के प्रयास राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' एवं 'अयोध्या प्रसाद खत्री' के यहाँ देखने को मिलता है।

---

[28] रामविलास शर्मा - महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, 1989 ई० (द्वितीय संस्करण), पृ०सं० 226

[29] वही -पृ० सं०-199

[30] वही -पृ० सं०-236

[31] रामविलास शर्मा - महावरी प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन 1989 ई० (द्वितीय संस्करण) पृ०सं० 236

काव्यभाषा के नाम पर होने वाले इस विवाद के एक दूसरे पहलू की तरफ वीर भारत तलवार ने संकेत करते हुए कहा है कि "असल में इस विवाद में मुसलमान समाया हुआ था। राम और कृष्ण के भक्त हिन्दुओं में अवधी और ब्रजी में कविता लिखने की परंपरा थी जबकि कविता के लिए खड़ीबोली का साहित्यिक प्रयोग मुसलमान कर रहे थे। मुसलमानों के हाथों से छू दी गई इस बोली को-जिसके आसान से आसान रूप में भी अरबी-फारसी के प्रचलित शब्द घुसे हुए थे-हिन्दू अपनी कविता के लिए कैसे इस्तेमाल करते? 15-20 सालों तक इस सवाल ने नागरी आंदोलनकारियों के अंदर काफी विवाद मचाए रखा और उन्हें पूरी तरह से एक न होने दिया।"[32] यह एक खेमा था जो खड़ी बोली हिन्दी के काव्यभाषा बनने के मार्ग में रोड़े अटका रहा थी। इसमें परंपरा के रूढ़िवादी तत्वों को बनाये रखने का हठ था। एक दूसरा खेमा भी था, जो परंपरा के प्रगतिशील तत्वों को पहचानकर खड़ी बोली हिन्दी को काव्य भाषा के रूप में प्रस्तावित और स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा था।

19वीं सदी में हिन्दी साहित्य के संदर्भ में विचार करते हुए दो-तीन बातें ध्यान में रखनी आवश्यक जान पड़ती है। पहला हिन्दी साहित्य मे आधुनिकता के उदय के साथ-साथ यह हिन्दी नवजागरण के उदय का भी काल है। दूसरा "19वीं सदी का भारतीय समाज धार्मिक था, जिसमें बड़ा से बड़ा बौद्धिक समाजसुधारक भी धार्मिक ही हुआ।"[33] तीसरा "नवजागरण में सवाल यह था कि मनुष्य का कर्म किससे प्रेरित और संचालित हो?अपने नैतिकता और विवेक से हो या धर्मशास्त्रों से, रूढ़ियों से?"[34] इसलिए इस दौर के रचनाकारों ने 'परंपरा की विगत सार्थकता और वर्तमान अर्थवत्ता' पर अपने-अपने स्तर से जूझने की कोशिश की। परिणाम सभी एक ही नतीजे पर नहीं पहुँचे। अपने तमाम अंतर्विरोधों के बावजूद एक बात जो कमोवेश सब में पाई जाती थी, (समाज सुधारकों, धर्म सुधारकों और उस युग के रचनाकारों में) वह था, उपनिवेशवाद का विरोध।

पुनः एक बार समाजसुधार आंदोलन के माध्यम से परंपरा के संदर्भ को देखने की कोशिश करें कि हिन्दी साहित्य में इसका क्या प्रभाव पड़ा और क्या प्रतिक्रिया हुई? मूल रूप से यहाँ ब्रह्म समाज (1828 ई०), प्रार्थना समाज (1870 ई०), आर्य समाज (1875 ई०) और थियोसॉफिकल सोसाइटी (1882 ई०) को केन्द्र में रखकर बात की जा सकती है। इन चारों समाज में ब्रह्म समाज में प्रगतिशील तत्व अन्य

---

[32] वीर भारत तलवार - रस्साकशी, सारांश, प्रकाशन, दिल्ली, 2002 ई० (प्रथम संस्करण) पृ०सं० 317

[33] वीर भारत तलवार - हिन्दू नवजागरण की विचारधारा 'सत्यार्थ प्रकाश' समालोचना का एक प्रयास भारतीय उच्च अध्ययन अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास, शिमला, 2001 ई०, पृ० सं०-52

[34] वही -पृ० सं०-55

समाजों की तुलना में ज्यादा थे। राजा राममोहन राय जहाँ एक ओर "हिन्दुओं के बहुदेववाद और कर्मकांडों, पुनर्जन्म और अवतारों की उनकी अवधारणा, मूर्ति पूजा, पशु बलि और सती प्रथा जैसे उनके रस्म रिवाजों को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे, जो हिन्दू मतवाद के मूल आधारों के रूप में प्रचलित थे।"[35] इसका विरोध 'प्रतिक्रियावादी ब्राह्मण पंडितों'[36] ने किया। वहीं दूसरी ओर "मिशनरियों द्वारा दूसरों का धर्म परिवर्तन करना उन्हें पसंद नहीं था और इसका वह विरोध करते थे।"[37] इसलिए "कुछ ईसाई मिशनरियों ने उनका पूरी शक्ति से विरोध किया।"[38] सनातनियों से इनके विरोध के अपने कारण थे।[39]

'आर्य समाज' और 'थियोसोफिकल सोसायटी' का मूल स्वर पुनरूत्थानवादी था। आर्य समाज जिन कारणों से ब्रह्म समाज का विरोध करता था उनमें से एक मुख्य कारण यह था कि "ब्रह्म समाज की पवित्र पुस्तक में संतों की सूची में ईसा, मोजेज, मोहम्मद, नानक और चैतन्य तक के नाम दिये गये हैं, किन्तु अतीत के ऋषियों में से एक का भी नाम नहीं है। इससे कोई सहज ही यह समझ सकता है कि इन लोगों की मान्यताएँ वे ही हैं, जो इनकी पवित्र पुस्तक में गिनायी गयी विभूतियों की शिक्षाओं से उद्‌भूत है।"[40] जबकि ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज से आर्य समाज के असहमति के कारण कुछ और थे। "राजा राममोहन राय और रानाडे वैदिक अवधारणाओं और तर्क में टकराव होने पर जहाँ तर्क का पक्ष लेना श्रेयस्कर

---

[35] के०दामोदरन-भारतीय चिंतन परंपरा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस (प्रा०) लि०, नई दिल्ली, 2001 ई० (चतुर्थ संस्करण) - पृ०सं०-363

[36] वही -पृ० सं०-364

[37] वही -पृ० सं०-363

[38] वही -पृ० सं०-364

[39] "यह स्पष्ट करते हुए कि ब्रह्मसमाज किस प्रकार सनातनी हिन्दू धर्म से भिन्न है, उन्होंने कहा: "हमारी भिन्नता का पहला तत्व यह है कि हमारे पंथ में एक सकारात्मक पहलू है, जिसके अनुसार पूजा अराधना की परिभाषा यह है कि ईश्वर से प्रेम किया जाय और ऐसे कार्य किये जायें जो तो ईश्वर को प्रिय है...। हमारे पंथ का नकारात्मक तत्व हमें किसी भी मानव सृजित सत्ता अथवा वस्तु की पूजा करने से वर्जित करता है और यह सनातनियों से हमारी भिन्नता का दूसरा तत्व है। ये सनातनी अवतारों में विश्वास करते हैं, या मध्यस्थों, प्रतीकों अथवा किसी भी प्रकार की मूर्तियों की आवश्यकता में विश्वास करते हैं। हम अपनी श्रद्धा को तर्क और चेतना द्वारा पुष्ट, धर्म के मूलभूत सत्यों पर आधारित करते हैं। अपनी आत्मा तथा परमात्मा के बीच सीधे तादात्म्य के रास्ते में हम किसी भी मनुष्य, ग्रंथ अथवा मूर्ति को खड़े होने की अनुमति नहीं देते।"

के० दामोदरन-भारतीय चिन्तन परंपरा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा०) लि० नई दिल्ली, 2001 ई० (चतुर्थ संस्करण), पृ०सं० 369

[40] वही -पृ० सं०-388

समझते थे, वहाँ दयानंद का यह दृढ़ मत था कि वेद ही किसी भी समस्या का अंतिम समाधान प्रस्तुत कर सकता है।"[41]

ब्रह्म समाज की दार्शनिक अवधारणा के दो अनुपूरक पक्ष थे - एक ही ईश्वर में विश्वास तथा मनुष्यों के बीच भ्रातृत्व में विश्वास।"[42] जबकि "थियोसोफिकल सोसाइटी ने हिन्दू धर्म को उसके सड़े गले रीति-रिवाजों और कर्मकाण्डों तथा कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धांतों सहित ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया था।... आर्य समाज की तरह थियोसॉफिकल सोसाइटी चारों जातियों के बीच उप-विभाजनों को खत्म करने के पक्ष में थी, किन्तु स्वयं जाति प्रथा को खत्म करने के पक्ष में नहीं थी।"[43]

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के उदय के जिन प्रेरक और सहायक तत्वों का उल्लेख किया जाता है, उनमें ये धर्म और समाज सुधार आंदोलनों की भी गणना की जाती है। इन आंदोलनों के अंतर्विरोधों की चर्चा इसलिए की कि जहाँ एक ओर हिन्दी नवजागरण के लेखकों में ब्रह्म, प्रार्थना, थियोसाफी और आर्य समाज की आलोचना मिलती है,[44] वहीं, दूसरी ओर इन्हीं के चिंतन से आधुनिकता का प्रचार प्रसार होता है। "कहने की आवश्यकता नहीं कि हिन्दी नवजागरण मुख्यतया 'सांस्कृतिक' था और अधिकांश लेखन स्वदेशी संस्कृति के उत्थान को दृष्टि में रखकर किया गया। इस प्रक्रिया में अपनी प्राचीन सांस्कृतिक विरासत को बचाए रखने के साथ ही संग्रह-त्याग की दृष्टि से उसकी निर्मम समीक्षा पर भी विशेष ध्यान दिया गया। फिर तो वेद, पुराण, धर्मशास्त्र से लेकर संतों और भक्तों आदि सबको इस समीक्षा की प्रक्रिया से गुजरना पड़ा। आत्म-समीक्षा जितनी पीड़ादायक है, उतनी ही जटिल भी।इसलिए यदि धर्म-तत्व-विचार की प्रक्रिया में नवजागरणकालीन लेखकों के मत और निष्कर्ष भिन्न-भिन्न दिखाई पड़े तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार

---

41 वही -पृ० सं०-388

42 वही -पृ० सं०-368

43 के०दामोदरन-भारतीय चिंतन परंपरा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस (प्रा०) लि०, नई दिल्ली, 2001 ई० (चतुर्थ संस्करण) - पृ०सं०-392

44 "कितना ही समझाओ कि हमारी वर्तमान हीन दशा का यही सब बुरा रिवाज कारण है पेज के पेज रंग डालो कौन सुनता है वरन् इसे अपनी आर्यता का प्रधान और श्रेष्ठ अंग मान लोग लिखनेवाले की जीट उड़ाते हैं भ्रष्ट बेदीन नास्तिक इत्यादि उपाधि का खिताब उसको समाज से मिलना सहज हो जाता है।"
बालकृष्ण भट्ट : प्रतिनिधि संकलन सत्य प्रकाश मिश्र (संपा) नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया 2004 ई०, चलन की गुलामी लेख से, पृ०सं० 75
"अब इन दिनों के लोग "रिफार्म" सुधार और संशोधन की दृष्टि से उन्हें श्रुति और स्मृति से मिलाते हैं, कहीं पता नहीं लगता कि किस मूल पर यह बुराई और कुरीति चल पड़ी बल्कि श्रुति और शास्त्रों में जिसे मना किया, पाप और बुरा कहा, उसी को सनातन का सियापा गानेवाले बदमाशों ने विहित पुण्य और भलाई का काम कहा। इस घिनौने सनातन से दूर हटना ही अब कल्याण का मार्ग है।" उपरिवत्, उपदेशों की अलग-अलग बानगी लेख से, पृ०सं० 91

जात-पात, धर्मों और संप्रदायों के आपसी संबंध, स्त्रियों की स्थिति, विधवा-विवाह, बाल-विवाह आदि से संबंधित प्रश्नों पर भी हिन्दी नवजागरण के लेखक एकमत न थे। किन्तु इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि पुरानी परिपाटी में कुछ न कुछ परिवर्तन या सुधार का अनुभव अधिकांश हिन्दी लेखक करते थे। हिन्दी मंच पर स्वामी दयानंद के प्रवेश और आर्य समाज के उदय के साथ सनातनियों और आर्य समाजियों के बीच जो लंबे शास्त्रार्थ का क्रम चला, उसका प्रभाव कुछ न कुछ हिन्दी लेखकों पर भी पड़ा किन्तु रहा बहुत कुछ साहित्यिक संस्कार के मर्यादा के अंदर ही। इस सार्वजनिक वाद-विवाद की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि नवजागरण कालीन सभी लेखकों ने अपने समय के सभी ज्वलंत सामाजिक प्रश्नों पर जमकर लिखा।"[45]

नवजागरण कालीन लेखकों ने धर्म और समाज से जुड़े पक्षों पर बहुत लिखा है है उन सबका उल्लेख कर पाना यहाँ संभव नहीं है। इसलिए भारतेन्दु युग से बालकृष्ण भट्ट और द्विवेदी युग से स्वयं द्विवेदी जी के निबंधों के विषयवस्तु की ओर संकेत कर देना आवश्यक जान पड़ता है। जिससे इस बात की पुष्टि हो सके कि, भारतेन्दु युग से जो 'परंपरा के मूल्यांकन' की प्रक्रिया आंरभ होकर आधुनिक भाव बोध से 'लैस' हो रही थी, उसका विकास सही दिशा में हो रहा था। बालकृष्ण भट्ट ने जहाँ एक ओर "'हमारे धर्म संबंधी खर्च', 'धर्म का महत्व', 'कार्तिक स्नान' जैसे विषयों पर लेख लिखा वहीं दूसरी ओर हिन्दी भाषा-भाषी समाज को सम्पन्न और आधुनिक बनाने के लिए वैज्ञानिक विषयों पर 'प्रकाश', 'विद्युत', 'भूगर्भ विज्ञान', 'वायुमण्डल और न्यूटन की आकर्षण शक्ति', 'मनोविज्ञान', 'प्रतिनिधि शासन', आदि विषयों पर भी लेख लिखा।"[46] महावीर प्रसार द्विवेदी के लेखों का फलक बहुत व्यापक है, उन्होंने धर्म, समाज, सभ्यता-संस्कृति, परंपरा, दर्शन, विज्ञान, संपत्तिशास्त्र, राजनीतिविज्ञान, समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं पर सजग विवेक के साथ लेखनी चलायी। जैसे - "'वेद', 'वैदिक रचना करने वाली स्त्रियाँ', 'ब्राह्मण ग्रंथ', 'बौद्धाचार्य शीलभद्र', 'भगवद्गीता रहस्य', 'गीता में अन्य शास्त्रों के सिद्धांतों का समन्वय', 'युद्ध बीमारी और प्राकृतिक दुर्घटनाओं से नरसंहार', 'स्त्रियों के राजनैतिक अधिकार', 'प्लेग से नर नाश', 'सर विलियम जोन्स ने कैसे संस्कृत सीखी', 'स्मिथ साहब का भारतीय इतिहास', 'महाभारत का नया संस्करण', 'दृश्य-दर्शन की भूमिका', 'सम्पत्तिशास्त्र की भूमिका', 'सम्पत्ति का वितरण', 'भारतवर्ष का कर्ज', 'शिक्षा प्रचार के लिए गवर्नमेन्ट का खर्च', 'रेलों का खर्च और

---

[45] राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिन्द' प्रतिनिधि संकलन-नामवर सिंह (प्रधान संपादक), नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2005 ई०, पृ०सं०-8 (संपादकीय वक्तव्य से)

[46] बालकृष्ण भट्ट: प्रतिनिधि निबंध-सत्य प्रकाश मिश्र (संपादक), (नामवर सिंह - प्रधान संपा०) नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2004 ई०,

शिक्षा प्रचार', 'पुलिस और शिक्षा का खर्च', 'शासन-सुधारों के विषय में रिपोर्ट', 'निष्क्रिय प्रतिरोध का परिणाम', सरस्वती और सरकारी गजट', 'निष्क्रिय प्रतिरोध का परिणाम', सरस्वती और सरकारी गजट' आदि।"[47] समाज सुधार आंदोलनों के प्रति इनका (नवजागरण कालीन लेखकों) रूख आलोचनात्मक ही रहा। द्विवेदी जी ने तो 'आर्य समाज का कोप' विषयक लेख ही लिखा। वहीं बालकृष्ण भट्ट ने बार-बार इनकी आलोचना की है। कुछेक उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

> "यह जनून आर्य समाजियों में भी किसी से कुछ कम नहीं है, कोई कितना ही कहे इन्हें जो झक्क सवार है सो कभी उतरेगी ही नहीं कि वेद अपौरूषेय और स्वतः प्रमाण है, पुराण सब गप्प हैं, वेद में यावत् साइन्स और विज्ञान सब उसकी नस-नस में भरे हैं।"[48]

"बाबू साहब आर्य समाजी और ब्रह्म समाजी हैं थियोसोफी में अपना अव्वल दर्जा कायम करते हैं घर में बहूजी भूतपूजनी समाज की प्रेसीडेंट है।"[49]

नयी शिक्षा ने भी आधुनिकता और परंपरा के संबंधों को एक नया आयाम प्रदान किया। पुरातात्विक खोजों ने एक विकसित सभ्यता और समृद्धशाली अतीत का संकेत किया। शिक्षित समुदाय ने उस अतीत का गुणगान आरंभ किया। "उस समय के विद्यार्थियों को दो भिन्न प्रकार की शिक्षा मिलती थी। एक अंग्रेजी स्कूल और कॉलिजों में, दूसरी घर में। उनके स्कूली इतिहासों में सूर्यवंशी और चंद्रवंशी राजाओं के यश का गान नहीं था।.... परन्तु घर में माँ से पौराणिक महापुरूषों की कथायें सुना करते थे। रामायण और महाभारत की कहानी पढ़ा करते थे।"[50] इस प्रकार दो अलग-अलग संस्कारों का प्रभाव चित्त पर पड़ रहा था। इनमें से कुछ पश्चिमी सभ्यता और साहित्य से प्रभावित थे तो कुछ संस्कृत साहित्य के आदर्शों का अनुकरण करना चाहते थे। लेकिन कुछ "विचारवान पुरुष दोनों साहित्य की अच्छी बातों का अनुकरण करना अच्छा समझते थे।"[51] स्वयं भारतेन्दु ने जहाँ एक ओर 'मर्चेण्ट ऑफ वेनिस' का अनुवाद 'दुर्लभ बंधु' नाम से किया वहीं दूसरी ओर

---

47 महावीर प्रसाद द्विवेदी: प्रतिनिधि संकलन-रामवक्ष सिंह (संपादक), नामवर सिह (प्रधान संपा०) नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 1997 ई०

48 बालकृष्ण भट्ट: प्रतिनिधि निबंध-सत्य प्रकाश मिश्र (संपादक), (नामवर सिंह - प्रधान संपा०) नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2004 ई०, 'नये तरह का जनून' लेख से, पृ०सं०-70

49 वहीं, 'हमारी ललनाओं की शोचनीय दशा' लेख से, पृ०सं०-101

50 श्रीकृष्ण लाल - आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, हिन्दी परिषद प्रकाशन, विश्वविद्यालय, प्रयोग, संशोधिक तथा परिवर्धित चतुर्थ संस्करण 1985 ई० पृ०सं० 18

51 श्रीकृष्ण लाल - आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, हिन्दी परिषद प्रकाशन, विश्वविद्यालय, प्रयाग, संशोधित तथा परिवर्धित चतुर्थ संस्करण 1965 ई०, पृ०सं० 18

संस्कृत के कई नाटकों[52] का अनुवाद किया। श्रीधर पाठक ने एक ओर कालिदास के 'ऋतुसंहार' का अनुवाद किया तो दूसरी ओर गोल्डस्मिथ के 'ट्रेवलर' (पथिक), 'डेजर्टेड विलेज' (ऊजड़ ग्राम) और 'हरमिट' (एकांतवासी योगी) का पद्यबद्ध अनुवाद किया। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कालिदास के 'कुमारसंभवम्' का अनुवाद 'कुमारसंभवसार' (1902 ई०) तथा नारायण भट्ट के 'देवीसंहार' का 1917 ई० में अनुवाद किया। जॉन बेकन की 'बेकन विचार रत्नावली' (1901), हर्बर्ट स्पेंसर की 'शिक्षा' (1906), लुई कूने की 'जल चिकित्सा' (1907) और जॉन स्टुअर्ट मिल की 'स्वाधीनता' (1907) का भी अनुवाद द्विवेजी जी ने किया। आचार्य शुक्ल ने भी एक ओर 'बुद्धचरित' का तो दूसरी ओर हैकल के 'रिडल ऑफ दी यूनिवर्स' का अनुवाद 'विश्वप्रपंच' नाम से किया।

नाटक और उपन्यासों के क्षेत्र में ऐतिहासिक और पौराणिक कथावस्तु को आधार बनाने से एक अलग श्रेणी की कृतियों का सृजन हुआ। ऐसा क्यों हुआ? अंग्रेजों ने समकालीन यथार्थ और संवेदनशील विषयों की अभिव्यक्ति पर एक तरह से रोक लगा रखी थी। ऐसी स्थिति में इतिहास के पन्नों से गौरवशाली स्मृति परंपरा और संस्कृति का पुनराख्यान प्रस्तुत किया गया। तत्कालीन पुनरूत्थानवादी शक्ति और आधुनिकता के बरक्स परपंरा को प्रतिमान के रूप में प्रस्तावित करने की कोशिशों ने इसे बढ़ावा ही दिया। छायावादी काव्य इससे अछूता न रह सका। स्वयं आचार्य शुक्ल के इतिहास-ग्रंथ में परंपरा का उल्लेख कुछ इस प्रकार हुआ कि आगे चलकर 'दूसरी परंपरा की खोज' होने लगी।

ii) आधुनिकता: राष्ट्रीय आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में

आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ में 'परंपरा' के माध्यम से जो 'पोयटिक कैनन फार्मेशन' का कार्य किया उसमें तुलसी भक्ति काल के सबसे बड़े कवि के रूप में उभर कर सामने आये। आचार्य शुक्ल के इस मूल्य निर्णय के पीछे परंपरा के प्रति उनका अपना आलोचनात्मक विवेक और ऐतिहासिक दृष्टि थी 'गोस्वामी तुलसीदास' उनकी पहली आलोचनात्मक पुस्तक है, जो असहयोग आंदोलन के वर्ष (1920-1922 ई०) में निकली थी। चूँकि आचार्य शुक्ल का संपूर्ण लेखन स्वाधीनता आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में हुआ है। अत: यह देखना आवश्यक हो जाता है कि 'तुलसीदास' के माध्यम से आचार्य शुक्ल परंपरा का कौन सा रूप तत्कालीन भारतीय

---

[52] "भारतेन्दु ने संस्कृत के 'कर्पूरमंजरी', 'पाखण्ड विडम्बन', 'धनंजय-विजय' और 'मुद्रारक्षस' आदि नाटकों का अनुवाद किया।"

हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष - शिवदास सिंह चौहान, राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड, बम्बई, 1954 ई०, पृ०सं० 121

जनता के समक्ष प्रस्तावित कर रहे थे? "राष्ट्रीय आंदोलन में एक नहीं कई धारायें थीं, कई प्रवृतियाँ थी। शुक्लजी किसके साथ थे? राष्ट्रीय आंदोलन के अंतर्विरोधों के बारे में उनकी समझ क्या थी?... संयोग से इन सवालों का सीधा जवाब पाने के लिए शुक्लजी के अंग्रेजी में लिखे एक महत्वपूर्ण लेख 'नान कोऑपरेशन एण्ड नान मर्केण्टाइल क्लासेज' (एक्सप्रेस 1921, पटना) का हिन्दी अनुवाद अब उपलब्ध है। यह अनुवाद 'असहयोग और अव्यापारिक श्रेणियाँ' शीर्षक से दस्तावेज पत्रिका (गोरखपुर) के शुक्ल अंक, अक्टूबर 83 जनवरी 84 में छपा।"[53]

अपने लेख के आरंभ में शुक्लजी ने अंग्रेजों के आगमन के पूर्व भारतीय समाज को दो वर्गों में विभाजित किया है अव्यापारिक और व्यापारिक। शुक्ल जी के अनुसार अंग्रेजों के पूर्व यह दोनों वर्ग एक दूसरे के कार्यक्षेत्रों में प्रवेश नहीं करते थे।" इस प्रकार समाज में पूरा सन्तुलन रखा गया। यह सामंजस्यपूर्ण सामंती समाज अंग्रेजों के आने से टूट गया- "ईस्ट इंडिया कम्पनी के रूप में यूरोप के घृणित व्यापारवाद ने भारत में कदम रखा ओर समाज के द्विस्तरीय विभाजन के आधार पर जो सामंजस्य इतने दिनों से चला आ रहा था। उसे अस्तव्यस्त कर दिया।"[54]

इरफान हबीब का कहना है कि - "'सन्तुलित' और 'सामंजस्यपूर्ण' समाज अंग्रेजी राज के खिलाफ राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल किस वर्ग की दृष्टि का प्रतिनिधित्व करती थी? क्या यह बात उन किसानों की नजर से कही जा रही थी, जो सामंती शोषण के शिकार थे ओर अंग्रेजी राज में भी बने रहे या उस भूस्वामी वर्ग की नजर से जिसे हमेशा ही यह लगा है कि किसान अपनी उतनी ही आय से संतुष्ट हैं?"[55]

आचार्य शुक्ल ने 'गोस्वामी तुलसीदास' और 'नान कोऑपरेशन एण्ड नॉन मर्केण्टाइल क्लासेज' नामक निबंध असहयोग आंदोलन वाले वर्ष में लिखी। इन दोनों में आचार्य शुक्ल की समाज व्यवस्था का एक आदर्श हमारे सामने आता है। तुलसी के 'लोकमंगल की साधनावस्था और सिद्धावस्था' तथा 'विरुद्धों का सामंजस्य' की अवधारणा के माध्यम से जिस लोकधर्म की स्थापना का प्रयत्न आचार्य शुक्ल करते हैं। वह 'लोकधर्म बहुत कुछ वर्णाश्रम धर्म ही है।... शुक्लजी का 'लोकधर्म वस्तुतः 'आर्य शास्त्रानुमोदित' सनातन धर्म ही है।"[56] "इसीलिए शुक्लजी का 'लोकधर्म' अपने

---

[53] वीर भारत तलवार - राष्ट्रीय नवजागरण और साहित्य कुछ प्रसंग : कुछ प्रवृतियाँ, हिमाचल पुस्तक भंडार, 1993, पृ०सं० 28

[54] वहीं, पृ०सं० 28

[55] वही, पृ० सं० 29

[56] नामवर सिंह - दूसरी परंपरा की खोज, राजकमल प्रकाशन, 1989 नयी दिल्ली, पृ०सं० 78

स्वभाव से 'नार्मेटिव' और प्रभाव में यथास्थितिवादी है।"[57] राष्ट्रीय आंदोलन (असहयोग आंदोलन) के परिप्रेक्ष्य में शुक्लजी का यथास्थितिवादी वाला पक्ष 'किसान-आंदोलन' के संदर्भ में महात्मा गांधी के जमींदारों के प्रति अपनी पक्षधरता वाले रुख के साथ रखकर देखने से स्पष्ट हो जायेगा। क्या आचार्य शुक्ल भी गांधी जी की तरह यहाँ 'वर्ग-सहयोग' की बात कर रहे हैं? क्योंकि "सभ्यता का इतिहास वर्ग-सहयोग का इतिहास भी है। भले ही यह सहयोग शोषक वर्ग ने लोगों को फुसलाकर, डरा-धमकार प्राप्त किया हो, बलप्रयोग द्वारा उन्हें अपनी आज्ञा मानने पर बाध्य किया हो, पर है वह वर्ग-सहयोग।"[58]

असहयोग आंदोलन के दौर में आचार्य शुक्ल जिस 'लोकधर्म' को 'आर्य शास्त्रानुमोदित सनातन धर्म' के रूप में प्रस्तावित कर रहे थे। वही लोकधर्म 20 वर्ष बाद 'भारत छोड़ो आंदोलन' (1942 ई०) के समय बिल्कुल विपरीत अर्थ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'कबीर' (1942 ई०) के यहाँ देखने को मिलता है। परंपरा के 'पूर्व-पक्ष' और 'उत्तर-पक्ष में, इतना अंतर कैसे और क्यों आ जाता है? युगबोध में ऐसा क्या आमूल-चूल परिवर्तन आता है कि परंपरा 'लोकधर्म' को नया अर्थ प्रदान करती है?

"कबीर (1942 ई०) के साथ इतिहास की एक भिन्न परंपरा ही नहीं आती, साहित्य को जाँचने परखने का एक प्रतिमान भी प्रस्तुत होता है।"[59] भावबोध के स्तर पर बात करें तो, "शुक्लजी की दृष्टि में सूर की गोपियों का प्रेम एकांतिक है, अथवा लोक-विरोधी। द्विवेदी जी की दृष्टि में सूर की गोपियों का प्रेम कुल-जाति की मर्यादा को तोड़ता है, इसलिए लोकवादी है।"[60] भाषा और कला की दृष्टि से विचार करें तो, "शुक्लजी की दृष्टि में कबीर की वाणी असाहित्यिक और ऊटपटाँग है। द्विवेदीजी की दृष्टि में कबीर वाणी के डिक्टेटर हैं और व्यंग्य के बादशाह।"[61] और पूरी मानसिकता और दृष्टिकोण में बदलाव को दर्शाता द्विवेदी जी का यह कथन "मतों, आचार्यों, सम्प्रदायों और दार्शनिक चिन्ताओं के मानदण्ड से लोक चिन्ता को नहीं मापना चाहता बल्कि लोक चिन्ता की अपेक्षा में उन्हें देखने की सिफारिश कर रहा हूँ।"[62] क्यों?

---

[57] पुरूषोत्तम अग्रवाल - कबीर, कसौटी, अंक - 15, संपादक - नंदकिशोर नवल

[58] रामविलास शर्मा - परंपरा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1981 ई०, पृ०सं०10

[59] वही, पृ०सं० 20

[60] नामवर सिंह-दूसरी परंपरा की खोज, राजकमल प्रकाशन, 1989 ई०, पृ०सं० 20

[61] वही, पृ०स० 20

[62] हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहितय की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, 1990, पृ०सं० 8

मिशेल फूको ने विचारों के इतिहास के अध्ययन के क्रम में परंपरागत अकादमिक तरीकों से बिल्कुल अलग पद्धति अपनायी थी। "विचारों के इतिहास को टटोलते हुए उनके लिए निरंतरताएँ नहीं, विच्छिन्नताएँ और क्रम भंगताएँ महत्वपूर्ण थीं। 'आर्कियालॉजी ऑफ नॉलेज' में वे लिखते हैं कि 'विचारों की महान और आरोपित निरंतरताओं की चीर-फाड़ करनी चाहिए, उनके नीचे छिपी क्रम भंगताओं, और अवरोधों की शिनाख्त करनी चाहिए। ये अवरोध महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये ज्ञान के निरंतर संग्रहण में दखल देते हैं, उसकी तानाशाही को रोकना चाहते हैं। ये अवरोध और विच्छिन्नताएँ ही इतिहास में ज्ञान / शक्ति के आधिपत्य को भंग कर देना चाहती हैं और एक नए समय को दर्ज करने का दबाव पैदा करती हैं।"[63] संभवत: द्विवेदीजी भी इस नये समय को दर्ज करनेवाले दबाव का अनुभव कर रहे थे और उन्होंने पाया कि "परिस्थितिवश शासक वर्ग की विचारधारा के प्रभाव से बहुत कुछ मुक्त रहने के कारण 'लोकधर्म' शास्त्र से हीन प्रतीत होते हुए उसका विकल्प बनकर उपस्थित होता है और यही उसकी शक्ति है।"[64]

"जनसाधारण के जीवन में नाना विश्वासों के रूप में जीवित इस तथाकथित 'लोकधर्म' का महत्व इस बात में है कि जनता के असंतोष को विद्रोह का रूप देने के लिए वैचारिक और भावनात्मक शक्ति की भूमिका यही अदा करता है।"[65] इस प्रकार द्विवेजी के यहाँ "लोकधर्म" साधारण जनों के विद्रोह की विचारधारा है।"[66] यह केवल परंपरा के प्रति एक नया दृष्टिकोण नहीं है बल्कि "एक तरह से यह (नये) इतिहास-बोध का उदय है।"[67] जिसके मूल में प्रगतिशील आंदोलन की वह चेतना है, जिससे द्विवेदीजी का इतिहासबोध निर्मित हुआ है। द्विवेदीजी ने 'मध्ययुगीनता' से 'आधुनिकता' को अलगाते हुए 'सचेत परिवर्तनेच्छा' को आधुनिकता की प्रमुख विशेषता माना था। कहना न होगा कि द्विवेदीजी के द्वारा खोजी गयी यह 'दूसरी परंपरा' 'सचेत और सतत् परिवर्तनेच्छा' का परिणाम तो थी ही साथ ही 'सचेत परिवर्तनेच्छा' इस परंपरा का एक प्रतिमान भी थी। आचार्य शुक्ल और द्विवेदीजी के मतों में 'परंपरा' को लेकर जो मतभिन्नता की स्थिति है, उससे कई बातें सामने आती हैं। आचार्य शुक्ल और द्विवेदीजी के इतिहासबोध और आलाचेनात्मक विवेक का निर्माण भिन्न परिवेश, प्रदेश और युगबोध में निर्मित हुआ। आचार्य शुक्ल और द्विवेदीजी के समय तक राष्ट्रीय आंदोलन के स्वरूप एवं चरित्र में

---

[63] विजय कुमार - अंधेरे समय में विचार, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2006, पृ०सं० 137

[64] नामवर सिंह - दूसरी परंपरा की खोज, पृ० सं० 80

[65] वही, पृ०सं० -79

[66] वही पृ०सं० 79

[67] नामवर सिंह - दूसरी परंपरा की खोज, पृ०सं० 13

काफी बदलाव आ चुका था। आधुनिकता और परंपरा के मध्य अंतर्द्वन्द्व के इनकी अपनी समझ पर इनके निष्कर्ष निर्भर करते हैं।

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि 'प्राचीन और नवीन मतों की विचारपूर्वक मीमांसा ही नवजागरण का बुनियादी तत्व है। द्विवेदीजी भी इस आधार पर नवजागरणकालीन प्रभाव से अछूते नजर नहीं आते है। आचार्य शुक्ल के इतिहासलेखन में आधुनिकता और परंपरा के द्वन्द्व के कई उदाहरण मौजूद हैं। एक महत्वपूर्ण उदाहरण उनके भक्तिकाल के उदय संबंधी व्याख्या में देखने को मिलता है। "देश में मुसलामनों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया।.... अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करूणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?"[68] इससे स्पष्ट है कि भक्तिकाल के उदय की व्याख्या इस्लाम की प्रतिक्रिया के तौर पर आचार्य शुक्ल कर रहे हैं। इससे राष्ट्रीय आंदोलन की कौन-सी प्रवृत्ति पुष्ट होती है?

भक्तिकाल के उदय के कारणों की प्रथम व्याख्या ग्रियर्सन ने की थी। ग्रियर्सन के मत का समर्थन कैनेडी ने किया था क्योंकि अंग्रेजों ने औपनिवेशिक भारत में 'आब्जर्व' किया था कि यहाँ धर्म का व्यावहारिक रूप भक्ति है। जब ग्रियर्सन ने भक्ति को 'अचानक बिजली के समान चमक' और 'ईसाइयत की देन' कहा था, तब उसने भक्ति की परंपरा की अनदेखी कर साम्राज्यवादी हितों के अनुकूल उसकी व्याख्या की थी। भक्ति को न तो उसके 'ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य' में देखा था न ही भारतीय संदर्भों में ग्रियर्सन ने 'यूरोपीय प्रतिमान' को ही भारतीय परिप्रेक्ष्य में लाद दिया था। यह साम्राज्यवाद का ही दूसरा रूप है, जिसे हम सांस्कृतिक साम्राज्यवाद कह सकते हैं।

सांस्कृतिक साम्राज्यवाद और 'ओरियंटलिज्म' (प्राच्यविद्यावाद) भारतीय संदर्भों में समान स्वार्थ की पूर्ति करते नजर आते हैं। सांस्कृतिक साम्राज्यवाद को फैलाने का कार्य हिन्दी साहित्य और भारतीय इतिहास में ग्रियर्सन, कैनेडी, प्रोफेसर हेवेल, जेम्स मिल कर रहे थे। प्राच्यविद्याविदों विलियम जोन्स, विल्किन्स, कोलब्रुक और जेम्स प्रिंसेप ने अन्यंत श्रम और साधना से संस्कृत का ज्ञान अर्जित कर संस्कृत के महान कार्यों को पहली बार यूरोपीय भाषाओं में अनूदित किया। अपने शोधपूर्ण कार्यों के कारण बहुत जल्दी विलियम जोन्स भारतीय धर्म के अधिकारी व्यक्ति माने जाने लगे। "विलियम जोन्स ने दस राज्यों पर आधारित प्राथमिक महत्व का एक शोध पत्र 'ऑन

---

[68] रामचंद्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1990, तेईसवाँ संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण, पृ॰सं॰-34

दि ऑरिजिन एंड फैमिलीज ऑफ नेशन्स' लिखा, जो संस्कृत, ग्रीक और लैटिन के मध्य अनेकों विशेषताओं की अद्‌भुत समानता को रेखांकित करता था। जोन्स का यह कार्य 'तुलनात्मक भाषा विज्ञान' का आरंभिक बिन्दु माना जाता है और इसी की क्रमिक श्रृंखला के रूप में 'इंडो-यूरोपियन' परिवार की भाषाओं तथा लोगों के विस्थापन (migration) पर बहस आरंभ होती है। 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान' संस्कृत और कुछ यूरोपीय भाषाओं के मध्य नजदीकी संबंध होने के संकेत देता है, इससे 'आर्य नस्ल का सिद्धांत' प्रचलन में आया, जिसे यूरोप और भारत में प्राच्यविद्याविदों ने 'यूरोपियन' और प्राचीन आर्य लोगों के मध्य नृशास्त्रीय वंश परंपरा के रूप में स्वीकार कर लिया। यह मान लिया गया कि 'इंडो-आर्य' विश्व-व्यवस्था के प्रकाशवाहक थे। भारत में उच्च जातियों ने इस सिद्धांत को एक हथियार या साधन के रूप में इस्तेमाल किया ताकि प्रत्येक वस्तु, प्राचीनता से भारतीय स्वीकारी जा सके।...."[69]

... उच्च वर्ग के आर्यों को श्वेत यूरोपियन ने अपने बिछड़े हुए भाई की तरह सम्मान दिया।....[70] "औपनिवेशिक शासकों के साथ ऊँची जाति के भारतीयों को एक पहचान मिल गयी थी, जिससे इस खोज से वे काफी रोमांचित थे। उदाहरण के लिए, केशवचन्द्र सेन ने 1877 में कलकत्ता में, ब्रिटिश शासकों से अपने रक्त संबंधों का ढिंढोरा पीटते हुए सार्वजनिक सभा में घोषणा की थी कि... भारत में अंग्रेजी राज के आगमन से हम दो बिछड़े भाईयों का पुनर्मिलन देख रहे हैं, प्राचीन आर्य नस्ल के दो परिवारों की संतानों को देख रहे हैं।.... इस सिद्धांत की अपील व्यापक और चिरस्थायी थी। गांधी जब एक अधिवक्ता के तौर पर दक्षिण अफ्रीका में कार्य कर रहे थे, तब उन्होंने भारतीयों के प्रति होनेवाले दुर्व्यवहार के प्रतिरोध में नस्ल के

---

[69] William Jones essayed a seminal paper 'On the Origin and Families of Nations, based on the ten state of research, which bought out several features underlining the striking similarity between Sanskrit, Latin and Greek. Jones work is considered the starting point of 'comparative Philology' and the consequent debate on the Indo European family of languages and the migration of peoples. Comparative Philology having indicated a close relationship between Sanskrit and some European Languages, there come into currency the 'Aryan theory of race', which the orientalists in India and Europe used to assert an ethnic Kinship between Europeans and the ancient Aryan people. It was assumed that Indo-Aryans, were the torch bearers of world civilization. The upper caste in India wielded the theory to assert the antiquity of everything India. Braj Ranjan Mani – Debrahmanising History, Manohar Publication, 2005, Pg. No. 192

[70] "Aryans in India came to be regarded as the lost brothers of the white Europeans. Do, pg. no. 192

आधार पर समानता की माँग करते हुए कानून बनाने वाली सभा के सदस्यों को खुले पत्र में संबोधित करते हुये ये बातें कही थीं।"[71]

"....एच.एच. विल्सन, सी० लैसन, एच०टी० कोलब्रुक, मोनियर विलियम्स और इन सबसे बढ़कर फ्रैडरिक मैक्समूलर जैसे यूरोपीय विद्वानों की प्राचीन आर्य संस्कृति और संस्कृत रचनाओं के प्रति अभिरूचि ने अनचीन्हे भारत को पहचानने का एक मिथ विकसित किया।"[72]

इस "आर्य नस्ल के सिद्धांत, जो प्राच्यविद्यावाद की केन्द्रीय संरचना थी, को भारत के वर्चस्वशील वर्ग का अपार समर्थन प्राप्त था।"[73] केशवचंद्र सेन, महात्मा गांधी, विवेकानन्द सभी इससे प्रभावित थे। भारतीय परंपरा के पुरोधा विश्व स्तर पर ये प्राच्यविद्याविद् (Orientalists)ही बने हुए थे। हम अपनी परंपरा को भी उनके माध्यम से समझ रहे थे। एक ओर सारा राष्ट्रीय आंदोलन उपनिवेशवाद से मुक्ति के लिए संघर्ष कर रहा था और दूसरी ओर परंपरा की यूरोपीय निर्मिति को हम ग्रहण कर रहे थे। लेकिन ज्यों-ज्यों इस सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का स्वरूप स्पष्ट होता चला गया, त्यों-त्यों परंपरा अपने आधुनिकीकरण के क्रम में औपनिवेशिक प्रतिमानों के निषेध के साथ-साथ अपने जड़ और रूढ़ तत्व को भी छोड़ने लगी।

आचार्य शुक्ल ने भक्ति काल के उदय में इस्लाम की प्रतिक्रिया वाली जो बात कही थी यह बात उनसे पहले प्रोफेसर हेवेल अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ आर्यन रूल' में कह चुके थे कि "मुसलमानी सत्ता के प्रतिष्ठित होते ही हिन्दू राज-काज से अलग कर दिये गये। इसलिए दुनिया की झंझटों से छुट्टी मिलते ही उनमें धर्म की ओर जो उनके लिए एकमात्र आश्रय स्थल रह गया था, स्वाभाविक आकर्षण पैदा

---

[71] The high caste Indians were thrilled with the discovery as it gave them an identity with the colonial rulers. Proclaiming their blood relationship with the Britsh rulers, Keshab Chandra Sen, for example, declared at a public lecture in Calcutta in 1877. '... in the advent ' of the English nation in India we see a reunion of parted cousins, the descendants of two different families of the ancient Aryan race... The appeal of this theory was wide and enduring. when Gandhi was working as lawyer in South Africa, he addressed an open letter (1894) to the members of the legislature protesting against the ill-treatment of the Indians demanding equality on the grounds of race.

Bray Ranjan Mani - Debrahmanising History, Manohar Publication, 2005, Pg no 192

[72] The interest of European scholars such as H.H. Wilson, C. Lassen, H.T. colebrooke, Monier Williams and above all, Friedrich Max Muller, in Ancient Aryan Culture and Sanskrit texts gave birth to the legend of 'the wonder that was India. Do Pg. No. 93 '

[73] The Aryam race theory, a key construct of orientalism, for example, found tremendous support among the dominant classes in India, Do. Pg. No. 195.

हुआ।"[74] नामवर सिंह का मानना है कि "भक्ति आंदोलन को मुसलमानों के विरुद्ध हिन्दुओं की प्रतिक्रिया बताने की जिम्मेदारी मूलत: साम्राज्यवादी अंग्रेज इतिहासकारों पर है, इसलिए यदि कोई भारतीय इतिहासकार उसी बात को दुहराता है तो वह अनजाने ही अंग्रेजी साम्राज्यवाद द्वारा प्रचारित भ्रम का शिकार है।"[75]

आचार्य शुक्ल अपने सम्पूर्ण लेखन में उपनिवेशवाद-साम्राज्यवाद का विरोध करते रहे हैं। इसके बावजूद भक्तिकाल के उदय संबंधी व्याख्या में उनका जो दृष्टिकोण उभर कर सामने आता है वह उनकी विचारधारा का तो पता देती ही है, साथ ही उस युग के आधुनिकता और परंपरा के मध्य द्वन्द्व का भी आभास हमें देखने को मिलता है। हमें नहीं भूलना चाहिए कि हिन्दी साहित्य का इतिहास, कोश और व्याकरण तीनों नागरी प्रचारिणी सभा: वाराणसी द्वारा उस समय लिखवाये गये थे, जब केवल हिन्दी-उर्दू-विवाद ही नहीं बल्कि साहित्य के इतिहास, कोश और व्याकरण तीनों के न होने के कारण आक्षेप किये जा रहे थे। सांप्रदायिकता उस दौर की सच्चाई थी। संभवत: आचार्य शुक्ल पर भी इसका प्रभाव पड़ा था, अन्यथा वे 'त्रिवेणी' में मुसलमानों के सदंर्भ में ऐसा नहीं कहते - "कुतुबन मियाँ एक ऐसी कहानी लेकर जनता के सामने आये जिसके द्वारा मुसलमान होते हुए भी अपने मनुष्य होने का परिचय दिया।"[76] क्या मुसलमान मनुष्य नहीं होते? या मुसलमानों के मनुष्यत्व का कुछ अलग पैमाना शुक्लजी के यहाँ है? आगे उन्होंने लिखा है - गोरा और बादल नामक दो विश्वासपात्र सरदारों ने राजा को बहुत समझाया कि मुसलमानों का विश्वास करना ठीक नहीं।"[77]

उन्नीसवीं सदी का भारतीय समाज धार्मिक था। अत: धर्म के प्रभाव से कोई क्षेत्र अछूता नहीं रह गया था, समाजसुधारक, धर्मसुधारक, साहित्यकार, नेता, देशभक्त सभी इसके प्रभाव क्षेत्र के भीतर थे। "भारत में भारतीयता को खंडित करने में धर्म की ही भूमिका रही। यूं पूरब के देशों में धर्म को भी एक साम्राज्यवाद-विरोधी हथियार के रूप में इस्तेमाल किया गया। हमारे राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम के आरंभ में धर्म का ऐसा ही इस्तेमाल हुआ जिसकी अभिव्यक्ति बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय के 'आनंदमठ' में मिलती है। खुदीराम गीता को लेकर तथा अशफाक उल्ला कुरान को लेकर फाँसी के तख्ते पर झूले थे।"[78] इनका उद्देश्य उपनिवेशवाद-साम्राज्यवाद विरोध था लेकिन हाथ में पारंपरिक-धार्मिक प्रतीक था। स्वयं "आचार्य शुक्ल की रचनाओं

---

[74] हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, 1990, पृ०सं० 15

[75] नामवर सिंह - दूसरी परंपरा की खोज, राजकमल प्रकाशन, 1989, पृ०सं० 71

[76] रामचंद्र शुक्ल -त्रिवेणी, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी + दिल्ली, पेपरबैक्स पचपनवाँ संस्करण, पृ०सं० 16

[77] वही, पृ०सं० 21

[78] रमेश कुंतल मेघ - आधुनिकता -बोध और आधुनिकीकरण, अक्षर प्रकाशन, 1969, पृ०सं० 34

में प्रयुक्त शास्त्रधर्म, लोकधर्म, लोकसंग्रह, कर्म सौंदर्य, साधनावस्था, सिद्धावस्था ऐसे अनेक पारिभाषिक शब्द मिलते हैं, जिन्हें आधुनिक भारतीय चिंतन में प्रचलित करने का श्रेय तिलक के गीता रहस्य को है।"[79] "ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो 'उत्साह' का लेखनकाल वही है, जो 'कर्मयोगशास्त्र' के रूप में प्रकाशित तिलक के 'गीता रहस्य' का है।"[80] लेकिन आचार्य शुक्ल ने सिर्फ प्रभाव मात्र ग्रहण किया है, औपनिवेशिक काल में इन शब्दों में अर्थ उन्होंने स्वयं भरे हैं।

"चार्ल्स हिमसेथ ने लिखा है कि 19वीं सदी के हिन्दुस्तान में एक नहीं बल्कि कई किस्म की राष्ट्रीयताएँ उभर रही थीं, कुछ जातिगत आधार पर, कुछ प्रांतीय आधार पर, कुछ धर्म के आधार पर तो कुछ अखिल भारतीय राजनीतिक आधार पर।"[81] इन राष्ट्रीयताओं के निर्माण के मूल में परंपरा, धर्म, समाजसुधार आदि कारक अत्यंत महत्वपूर्ण थे।

"सामाजिक सुधार आंदोलन उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में, मूलतः हिन्दू धर्म में सुधार के आंदोलन के रूप में शुरू हुआ था।"[82] आगे चलकर "धार्मिक प्रतीकों को अपनाकर उग्रवादी नेताओं ने आम जनता में राष्ट्रीयता का संदेश पहुँचाया।"[83] जैसे - "महाराष्ट्र में गणपति उत्सव और गोहत्या विरोधी संघ, बंगाल में दुर्गा पूजा, बनारस में उर्दू-विरोधी आंदोलन, उत्तर भारत के विभिन्न प्रांतों में आर्य समाज द्वारा चलाया जा रहा शुद्धिकरण आंदोलन-ये सब मुसलमानों में संदेह और अविश्वास की भावना पैदा कर रहे थे।"[84] इन सबके माध्यम से भारतीय राष्ट्रवाद जो आकार ग्रहण कर रहा था वह हिन्दू राष्ट्रवाद था। "इन पुनरूत्थानवादियों के लिए भारत का अर्थ था हिन्दू भारत और भारतीय संस्कृति का अर्थ था आर्य-संस्कृति।"[85] हिन्दू पुनरूत्थानवाद की एकांतिकता ने स्वभावतः ही समानांतर मुस्लिम पुनरूत्थानवाद को उकसाया।"[86] और इस तरह साम्प्रदायिकता के फलने-फूलने की जमीन भारत में विकसित हुई।

---

79 समीक्षा ठाकुर - रामचंद्र शुक्ल के समीक्षा सिद्धांत और गीता रहस्य, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1993 ई०, पृ०सं० 9

80 वही, पृ०सं० 42

81 वीर भारत तलवार - रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, दिल्ली-हैराबाद, 2002, पृ०सं० 320

82 के० दामोदरन- भारतीय चिन्तन परम्परा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली, 2001, पृ०सं० 426-27

83 वही, पृ०सं०-429

84 के० दामोदरन- भारतीय चिन्तन परम्परा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली, 2001, पृ०सं० 434

85 वही, पृ०सं० 430

86 वही, पृ०सं० 430

इस पूरे कालखण्ड में परस्पर विरोधी प्रवृतियों के बावजूद संपूर्ण भारतीय साहित्य-समाज में उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद विरोधी चेतना समान रूप से देखने को मिलती है। मध्यवर्ग के अपने अंतर्द्वन्द्व, आधुनिकता और परंपरा का द्वन्द्व, परंपरा के अपने अंतविर्रोध, औपनिवेशिक आधुनिकता की विसंगतियों आदि से मिलकर उन्नीसवीं सदी और बीसवीं सदी के आरंभिक तीन दशकों का यह दृश्य हमारे सामने आता है। इनके अंतर्द्वन्द्वों, अंतविर्रोधों की अनदेखी कर के उस दौर के साहित्य और समाज-राष्ट्र आदि पर कोई बात सामान्यीकृत ढंग से नहीं कही जा सकती। यही कारण है कि एक ही मसले पर नवजागरणकालीन लेखकों के यहाँ मतभिन्नता की स्थिति देखने को मिलती है। कई परंपरायें देखने को मिलती हैं और कई आधुनिकताएँ भी। हिन्दी साहित्य में परंपरा पर बहस यहाँ ठहर नहीं जाती। आगे चलकर रामविलास जी 'परंपरा का मूल्यांकन' (1981) लिखते हैं, नामवर सिंह -दूसरी परंपरा की खोज' (1982) तो अशोक वाजपेयी 'परंपरा की आधुनिकता' (1997 ई०)।

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का विकास और उसकी विशेषताएँ:

1. हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का प्रारंभिक स्वरूप
2. 1936 के बाद हिन्दी साहित्य में आधुनिकता की दशा और दिशा

i)आधुनिकता और आधुनिकतावाद

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का विकास और उसकी विशेषताएँ

1. हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का प्रारंभिक स्वरूप

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के उदय का अनिवार्य और अपरिहार्य संबंध गद्य के उदय से है। आचार्य शुक्ल का यह कहना अकारण नहीं है कि "आधुनिक काल में गद्य का आविर्भाव सबसे प्रधान साहित्यिक घटना है।"[1] गद्य के आविर्भाव से समाज और साहित्य के संबंधों में बदलाव देखने को मिला। रचनाकार अपने परिवेश के प्रति जागरूक हुआ और जिन चीजों के प्रति असंतुष्ट था उसे दूर करने के लिए विकल्पों की तलाश की। श्रद्धा, आस्था और विश्वास के स्थान पर विचार, तर्क और परीक्षण को प्रमुखता दी गई। साहित्य में इस प्रकृति का वाहक बना प्रेस। इसके प्रचार प्रसार के साधन बने यातायात के समुन्नत साधन और जरिया बनी हिन्दी पत्रकारिता।

गद्य का आविर्भाव ब्रिटिश उपनिवेशकाल में हुआ। "भारतेन्दुयुगीन लेखक भारत विरोधी ब्रिटिश प्रचार और आर्थिक शोषण के विरूद्ध वैचारिक संघर्ष के लिए जिस माध्यम की खोज कर रहे थे, वह उन्हें पत्रों के रूप में मिला। विचारों की लड़ाई के लिए गद्य ही उपयुक्त माध्यम बन सकता था। बहुत सोच समझ कर बनाई गई इस रणनीति का ही परिणाम यह था कि इस युग में अनेक मासिक एवं साप्ताहिक पत्रों का प्रकाशन हुआ।"[2] इन पत्रों ने हिन्दी गद्य के विकास को अपेक्षित गति प्रदान की। आचार्य शुक्ल के अनुसार "हिन्दी गद्य की सर्वतोमुखी गति का अनुमान इसी से हो सकता है कि पचीसों पत्र पत्रिकाएँ हरिश्चन्द्र जी के जीवनकाल में निकली, जिनके नाम नीचे दिए जाते हैं:

1. अल्मोड़ा अखबार (संवत् 1928, संपादक पं॰ सदानंद सलवास)
2. हिंदी दीप्तिप्रकाश (कलकत्ता सं॰ 1929, कार्तिक प्रसाद खत्री)
3. बिहार बंधु (सं॰ 1929, केशवराम भट्ट)
4. सदादर्श (दिल्ली 1931 सं॰, लाला श्रीनिवासदास)
5. काशी पत्रिका (सं॰ 1933, बलदेव प्रसार बी॰ए॰, शिक्षा संबंधी मासिक)
6. भारत बंधु (सं॰ 1933, तोताराम, अलीगढ़)
7. भारत मित्र (कलकत्ता, सं॰ 1934, रूद्रदत्त)

---

1 आचार्य रामचंद्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी संशोधित एवं परिवर्धित तेईसवां संस्करण 1990 ई॰, पृ॰ सं॰-6

2 मधुरेश-हिन्दी कहानी का विकास, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद तृतीय संस्करण 2001 ई॰, पृ॰सं॰-11

8. मित्रविलास (लाहौर, 1934, मुं० कन्हैयालाल)
9. हिन्दी प्रदीप (प्रयाग, सं० 1934, पं० बालकृष्ण भट्ट, मासिक)
10. आर्यदर्पण (शहजहाँपुर, सं०1934, मु० बख्तावर सिंह)
11. सार सुधानिधि (कलकत्ता, सं०1935, सदानंद मिश्र)
12. उचित वक्ता (कलकत्ता, सं० 1935, दुर्गाप्रसाद मिश्र)
13. सज्जन कीर्ति सुधाकर (उदयपुर, सं०1936, वंशीधर)
14. भारत सुदशाप्रवर्तक (फर्रूखाबाद सं०1936, गणेश प्रसाद)
15. आनंदकादंबिनी (मिर्जापुर, सं०1938, उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी, मासिक)
16. देश हितैषी (अजमेर, सं०1936)
17. दिनकर प्रकाश (लखनऊ, सं०1940, रामदास वर्मा)
18. धर्मदिवाकर (कलकत्ता, सं०1940, देवीसहाय)
19. प्रयाग समाचार (सं०1940, देवकीनंदन त्रिपाठी)
20. ब्राह्मण (कानपुर, सं०1940, प्रतापनारायण मिश्र)
21. शुभचिंतक (जबलपुर, सं०1940, सीताराम)
22. सदाचार मार्त्तंड (जयपुर, सं०1940, लालचंद शास्त्री)
23. हिन्दोस्थान (इंगलैंड, सं०1940, राजा रामपाल सिंह, दैनिक)
24. पीयूष प्रवाह (काशी, सं०1941, अंबिकादत्त व्यास)
25. भारत जीवन (काशी, सं०1941, रामकृष्ण वर्मा)
26. भारतेंदु (वृंदावन, सं०1941, राधा चरण गोस्वामी)
27. कविकुलकुंज दिवाकर (बस्ती, सं०1941, रामनाथ शुक्ल)

इनमें से अधिकांश पत्र पत्रिकाएँ तो थोड़े ही दिन चलकर बंद हो गईं पर कुछ ने लगातार बहुत दिनों तक लोकहित साधन और हिन्दी की सेवा की।"[3] पत्रों के प्रकाशन का क्रम द्विवेदी युग और परवर्ती काल में भी अनवरत चलता रहा। जिससे एक ओर जहाँ हिन्दी भाषा का स्वरूप स्थिर और परिमार्जित होता रहा, वहीं दूसरी ओर गद्य का रूप क्रमशः निखरता चला गया।

भारतेन्दु युग में रचनाकारों को वैचारिक अभिव्यक्ति की खुली छूट नहीं मिली हुई थी इसीलिए "भारतेन्दु युग के लेखक अंग्रेजी राज की आलोचना अंग्रेजी कानून की सीमाओं के भीतर ही कर सकते थे।"[4] अंग्रेजों ने नई न्याय व्यवस्था के माध्यम

---

3 आचार्य रामचंद्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी संशोधित एवं परिवर्धित तेईसवाँ संस्करण, 1990 ई०, पृ० सं०-249-250

4 डॉ० रामचंद्र तिवारी - 1857 का स्वतंत्रता संग्राम और हिन्दी साहित्य
हिन्दी साहित्य का इतिहास पुनर्लेखन की समस्याएँ-संपादन-श्याम कश्यप
हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 1999 (द्वितीय संस्करण) पृ०सं०83

से जहाँ सामाजिक भेदभाव को दूर करने का प्रगतिशील तेवर अपनाया था, वहीं दूसरी ओर प्रेस एक्ट सरीखे कानून लाकर वैचारिक स्वतंत्रता का दमन भी किया था। इस कारण से भारतेन्दु एवं द्विवेदीयुगीन रचनाकारों में राजभक्ति की आड़ में अंग्रेजी राज की आलोचना देखने को मिलती है। भारतेन्दु मंडल के रचनाकारों ने अंग्रेजी राज की आलोचना करने में अपनी कल्पनाशीलता का पर्याप्त परिचय दिया है। 'शिवशंभु का चिट्ठा' (बालमुकुंद गुप्त), 'यमलोक की यात्रा' (राधाचरण गोस्वामी) 'रेल का विकट खेल' आदि निबंधों में यह देखने को मिलता है। 'यमलोक की यात्रा' में राधाचरण गोस्वामी स्वप्न में देखी हुई बातों का विवरण प्रस्तुत करते हैं - "पच्चीस वर्ष की ही अवस्था में ज्वर से स्वप्नद्रष्टा की मृत्यु होने लगती है और नादिरशाह की सूरत के यमदूत उसे लेने आ जाते हैं। उसे इस बात से विशेष खेद होता है कि विधवा विवाह को प्रचलित होते अभी नहीं देखा, 'न विलायत जाने की रोक उठी। न जाति पाँति का झगड़ा मिटा।' इन शब्दों से लेखक का सामाजिक ध्येय स्पष्ट है। और 'न हमारे जीते जी प्रेस एक्ट उठा। न लाइसेन्स टैक्स का काला मुँह हुआ।' प्रेस एक्ट से राधाचरण गोस्वामी विशेष अप्रसन्न थे, उस पर उन्होंने अनेक स्थलों पर छींटे कसे हैं।"[5]

"गदर के मात्र एक दशक बाद ही भारतेन्दु ने 'कविवचनसुधा' निकाली थी उसके प्रकाशन के दूसरे वर्ष ही उसमें 'लेवी-प्राणलेवी' शीर्षक अपना विख्यात ब्रिटिश - विरोधी लेख लिखा था।"[6] लोकगीत के विविध रूपों को आधार बनाकर न सिर्फ भारतेन्दु ने अपितु उनके मंडल के अन्य सदस्यों ने भी अंग्रेजी राज की आलोचना की। कजरी, लावनी, मुकरी, पहेली, होली आदि रूपों का रचनात्मक उपयोग इन्होंने किया। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं - दुर्भिक्ष पड़ने पर 'हिन्दी-प्रदीप' में यह होली छपी थी। -

डफ बाज्यो भारत भिखारी को।
बिन धन अन्न लोग सब व्याकुल, भई कठिन विपत नर नारी को।/
चहुँ दिसि काल परयो भारत में, भय उपज्यो महामारी को।"[7]

प्रेमघन ने लिखा था-
करे हाकिमी गोरा जाय। खर्चा भारत सीस बिसाय।"[8]

---

5 रामविलास शर्मा - भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1995 ई०, पृ० सं०-73

6 गीता शर्मा - हिन्दी नवजागरण और साहित्य का इतिहास, 1999 (द्वितीय संस्करण) पृ०सं०-98
हिन्दी साहित्य का इतिहास पुनर्लेखन की समस्याएँ-संपा० (श्याम कश्यप), हि०, मा०का०, नि०,दि०यू०

7 रामविलास शर्मा - भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1995 ई०, पृ० सं०-11

भारतेन्दु की एक पहेली है-
भीतर-भीतर सब रस चूसै, बाहर से तन-मन धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि, साजन? नहीं अंग्रेज।।[9]

भारतेन्दु की एक कविता है-
"मरी बुलाऊँ देस उजाड़ूँ महँगा करके अन्न।
सबके ऊपर टिकस लगाऊँ, धन है मुझको धन्न।
मुझे तुम सहज न जानो जी-मुझे इक राक्षस मानो जी।"[10]

'हिन्दी की उन्नति' पर व्याख्यान देते हुए भारतेन्दु ने चिंता व्यक्त की थी

"वस्त्र कांच कागज कलम चित्र खिलौने आदि
आवत सब परदेस सों नितहि जहाजन लादि।"[11]

"भारतेन्दु की राजभक्ति का रूप ऐसा ही था। सरकारी कर्मचारियों को संदेह हुआ हो तो आश्चर्य नहीं। सरकार 'हरिश्चंद्र-चंद्रिका', 'कवि वचन सुधा' और 'बाल-बोधिनी' की सौ-सौ प्रतियाँ लेती थी', एक दिन ये प्रतियाँ लेना बंद कर दिया गया।"[12] कारण स्पष्ट है भारतेन्दु मंडल जिस चेतना का प्रसार कर रहा था, वह ब्रिटिश साम्राज्य को बनाये रखने में सहायक नहीं था।

गद्य जब खड़ी बोली हिन्दी में लिखा जा रहा था तथा पद्य के लिए ब्रज भाषा प्रयुक्त हो रही थी। काव्यभाषा विषयक विवाद के कारणों की पड़ताल पिछले अध्याय में कर चुके हैं। यहाँ सिर्फ इतना कहना है कि "सबसे पहले ब्रज भाषा की कविता में ही आधुनिक समस्याओं और भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई। बालकृष्ण गुप्त, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बदरी नारायण प्रेमघन, प्रताप नारायण मिश्र आदि ने ब्रज भाषा में ही उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे चरण में कविता की, जिसमें राजभक्ति, समाज-सुधार और देश प्रेम आदि की नई समस्याएँ व्यक्त हुई।"[13] भारतेन्दु युग में

---

8 वही पृ०सं०-19

9 वही पृ०सं०-18

10 नित्यानंद तिवारी - आधुनिक साहित्य और इतिहास बोध, वाणी प्रकाशन, - 1994 ई० पृ० सं०-20

11 अजय तिवारी - आधुनिकीकरण पर पुनर्विचार, तद्भव-अखिलेश (संपा०), अंक-11, अगस्त, 2004 ई०, पृ०सं०-34

12 रामविलास शर्मा - भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995 ई०, पृ० सं०-18

13 शिवदान सिंह चौहान - हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, राजकमल पब्लिकेशन्स, लिमिटेड, बम्बई, 1954 ई०, पृ०सं०-ख (प्रस्तावना से)

काव्य भाषा के रूप में खड़ी बोली हिन्दी आधुनिक भाव बोध के प्रचार प्रसार में सक्षम न हो सकी थी। स्वयं भारतेन्दु की कोशिशें कोई सार्थक परिणाम दे पाने में असमर्थ साबित हुई थी। जबकि गद्य में खड़ी बोली हिन्दी ऐतिहासिक कार्य कर रही थी। भारतेन्दु मंडल के पं० प्रतापनारायण मिश्र, उपाध्याय बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', ठाकुर जगमोहन सिंह, बालमुकुंद गुप्त, राधामोहन गोकुल, राधाचरण गोस्वामी, कार्तिक प्रसाद खत्री, राधाकृष्ण दास के अतिरिक्त लाला श्रीनिवासदास ने गद्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

भारतेन्दु मंडल ने साहित्येतर विषयों पर लिखकर लोक चेतना के प्रचार प्रसार का कार्य किया, इनके लेखन में सामाजिक कुरीतियों पर तो प्रहार हुआ ही अंग्रेजी राज की भी प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से आलोचना की गई। बालकृष्ण भट्ट ने 'समाचार पत्र की आवश्यकता' का रेखांकन करते हुए कहा "पश्चिमोत्तर देश की राजधानी में एक ऐसे हिन्दी समाचार पत्र का होना आवश्यक है, जिसमें राजकाज संबंधी बातों पर राय दी जाय। सब प्रकार की खबर हो और विज्ञान, खगोल, भूगोल आदि विद्या-संबंधी विषयों पर भी लेख लिखे जायँ।... याद रखना चाहिए कि एकता होने के लिए समाचार पत्र से बढ़कर कोई सीधा और सहज उपाय नहीं है।"[14] भारतेन्दु युग के अधिकांश लेखकों ने अपने समकालीन समाज सुधार आंदोलनों से प्रेरणा ग्रहण करते हुए स्त्री शिक्षा की वकालत की है। "राधामोहन गोकुल ने स्त्री विषयक सवालों को देश और काल से जोड़कर देखा परखा है। वे स्त्रियाँ की दशा की तुलना सिर्फ शूद्रों की दुर्दशा से ही करते हैं। दोनों की दशा को बिना बदले देश की उन्नति असंभव थी। उनके विचार में स्त्रियाँ ही देश की शक्ति है अगर वे अबला होंगी तो देश कभी सबल नहीं होगा 'जो देश समुन्नत होना चाहता है उसे उचित है कि वह पहले देश की शक्ति की प्रतिष्ठा करे, उपासना करे।"[15] बालकृष्ण भट्ट भी ऐसा ही कहते हैं - "स्त्रियों की दशा का सुधारना कौम की तरक्की की पहली सीढ़ी है और वह तभी संभव है जब इनमें विवेक आवै जो केवल उत्तम शिक्षा के द्वारा हो सकता है।"[16] (भक्तिकालीन और रीतिकालीन नारी विषयक सोच से भारतेन्दु युगीन रचनाकारों की मानिकसता पूरे युग बोध के बदलने की ओर संकेत करता है।)

---

14 बालकृष्ण भट्ट: प्रतिनिधि संकलन - सत्य प्रकाश मित्र (संपादक), ने०बु०ट्र०, इंडिया, 1995 ई०, समाचार पत्र की आवश्यकता लेख से, पृ० सं०-1

15 कर्मेन्दु शिखिर - राधामोहन गोकुल और हिन्दी नवजागरण, संभावना प्रकाशन, हापुड़ 2003 ई०, पृ०सं०-116

16 बालकृष्ण भट्ट: प्रतिनिधि संकलन - सत्य प्रकाश मित्र (संपादक), ने०बु०ट्र०, इंडिया, 1995 ई०, धर्म का महत्व लेख से, पृ० सं०-97

अंग्रेजी शिक्षा की कमियों को भाँपते हुए भट्टजी जातीय शिक्षा पर बल देते हुए कहते हैं कि "ऐसी शिक्षा जिससे हम लोगों में जातीयता का भाव पैदा हो सके गवर्नमेण्ट के शिक्षा विभाग में दी नहीं जाती।... इससे अब हमें यही आवश्यक जान पड़ता है कि शिक्षा का भार अपने ऊपर ले लें और निज ढंग पर जातीय शिक्षा का प्रचार करें।"[17] अकाल के समय 'रिलीफ वर्क्स खोलने का उद्देश्य' स्पष्ट करते हुए बतलाते हैं कि "भूखे लोग देश में इधर-उधर घूम कर कहीं उपद्रव न खड़ा कर दें इसीलिए अकाल पीड़ित हजारों मनुष्यों को एक स्थान पर सरकारी अधिकारियों की निगरानी में रख कर अपने साम्राज्य को स्वरक्षित रखना ही सरकार का उद्देश्य है।"[18] इस अकाल के मूल में भट्टजी अनाज का विलायत-निर्यात, आर्थिक दोहन (अंग्रेज राज सुख साज सजै सब भारी, पै धन विदेस चलि जात इहै अति ख्वारी) पिछले अध्यायों में हमने उस प्रक्रिया को आँकड़ों के साथ दिखलाया है, जिसके माध्यम से भारत का आर्थिक शोषण किया गया, भट्टजी कहते हैं कि "दो वर्ष के लिए चिउँटियाँ-ढोअन बन्द हो जाय और यहाँ का धन यहीं रहने पावे, देश का देश सोने-चाँदी से मढ़ जाय।"[19] स्वतंत्र वाणिज्य (Free trade)की आलोचना सर्वत्र उनके लेखन में देखने को मिलती है। भट्टजी स्पष्ट करते हैं कि एक कच्चा माल का उत्पादन करनेवाला राष्ट्र उस देश से स्पर्धा नहीं कर सकता जहाँ इस कच्चा माल का परिष्कार कर वस्तुएँ निर्मित की जाती हों। जहाँ से कच्चा बाना 'Raw Materials' जाता है या जो देश कृषि प्रधान है, जमीन की पैदावार जहाँ की समृद्धि का हेतु है वह देश कभी नहीं उन देशों के साथ होड़ कर सकेगा जहाँ कच्चे बाने को साफ कर चीजें तैयार की जाती है। इसी से इस समय की विदेशी गवर्नमेण्ट 'फ्री ट्रेड' कायम किये हैं।"[20]

'स्वावलम्बन' की बात करते हुए भट्टजी हिंसक मार्ग अपनाने से भी पीछे न हटने की सलाह देते हुए कहते है कि "यदि तुम स्वराज्य लेना चाहते हो तो तुमको इस भिखमंगी पॉलिसी को छोड़ कर मर्दानगी पॉलिसी इख्तियार करनी चाहिए।.... क्योंकि आजादी एक देवता है। यदि तुम इस देवता के मन्दिर में जाना चाहते हो तो तुम अपने को आत्म त्याग (Self sacrifice) से पवित्र करो और स्वावलम्बन सीखो स्वच्छंद जाति कर देने का यही एक मात्र द्वार है।"[21] स्वराज के लिए जातीय शिक्षा

---

17 बालकृष्ण भट्ट : प्रतिनिधि संकलन, सत्य प्रकाश मिश्र (संपा), नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 1995 ई०, 'अंग्रेजी तालीम और शिक्षा' लेख से, पृ०सं० 153

18 वही, पृ०सं० 169, 'रिलीफ वर्क्स खोलने का उद्देश्य' लेख से

19 वही, पृ०सं० 134, 'ढोल के भीतर पोल' लेख से

20 वही- पृ०सं०- 152, 'भारत का दीवाला' लेख से

21 बालकृष्ण भट्ट : प्रतिनिधि संकलन - सत्य प्रकाश मिश्र (संपादक), नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 1995 ई० 'स्वावलम्बन' लेख से पृ०सं० 159

स्वदेशी और बौयकॉट दोनों की जरूरत है।.... एक Generation नस्ल को सब तरह का खतरा उठाना पड़ेगा उसके उपरान्त जो नस्ल होगी, वह स्वराज का सुख भोगेगी।[22]

समस्यापूर्ति भारतेन्दु युग की एक प्रधान साहित्यिक प्रवृत्ति थी, लेकिन बढ़ती राजनीतिक-सामाजिक चेतना ने आनेवाले समय में इसका मार्ग अवरुद्ध किया। "गया से निकलनेवाली लक्ष्मी और प्रियंवदा की ओर आपका ध्यान खींचना चाहूँगा। 'प्रियंवदा' समस्यापूर्ति का पत्र था, पर उसके संपादक ने घोषणा की कि उसमें रीति संबंधी पूतियाँ न भेजी जाएँ। वह एक ऐतिहासिक घोषणा थी। स्वदेशी का स्वर इन दो पत्रों में खूब उभरा था। आगे 'गृहस्थ' में भी यह स्वर सुनाई पड़ता रहा।"[23] समस्यापूर्ति की प्रवृत्ति इतनी प्रबल थी कि खड़ी बोली हिन्दी में आरंभिक दौर में जो कवि कविताएँ लिख रहे थे, वे कविता लिखने के पूर्व एक समस्या सोच लिया करते थे और उसकी पूर्ति किया करते थे। द्विवेदी-युग में यह प्रवृत्ति समाप्त प्राय हो गयी।

स्वाधीनता आंदोलन ज्यों-ज्यो जोर पकड़ता गया त्यों-त्यों सरकारी दमन चक्र भी तेज होता चला गया। भारतेन्दु के समय जो प्रेस कानून (1878 ई०) लागू हुआ था, वह भारतेन्दु के जीवनकाल में ही हटा (1882 ई०) दिया गया था। लेकिन "1910 में एक बड़ा ही कठोर प्रेस कानून बनाया गया।.... 1908 में जिस आदमी से सरकार सबसे ज्यादा डरती थी, यानी तिलक, उन्हें अपने अखबार में एक लेख छापने के अपराध में 6 साल की सजा दे दी गई। 1914 की लड़ाई छिड़ने के एक महीने पहले तक उन्हें मांडले की जेल में रखा गया। तिलक की गिरफ्तारी पर बंबई के सूती मजदूरों ने हड़ताल कर दी। हिन्दुस्तान के मजदूरों ने यह पहली राजनीतिक हड़ताल की थी।"[24] महावीर प्रसाद द्विवेदी भारतीय संदर्भ में संगठित 'व्यवसाय समिति' (Trades Unions) की न सिर्फ वकालत कर रहे थे अपितु हड़ताल को मजदूरों का प्रमुख अस्त्र भी मान रहे थे। अपनी पुस्तक 'सम्पत्तिशास्त्र' (1907 ई०) में द्विवेदीजी ने विस्तार से 'व्यवसाय समिति' (Trades unions), हड़ताल और राष्ट्रीय आंदोलन एवं एकता में इसके योगदान की चर्चा की थी। अपनी 'सरस्वती' पत्रिका में उन्होंने माधवराव सप्रे का लेख 'हड़ताल' (1907)'[25] जनार्दन भट्ट का

---

22 वहीं पृ०सं० 175, 'स्वराज्य क्या है' लेख से

23 सुरेन्द्र चौधरी - स्वाधीनता संग्राम और हिन्दी साहित्य
हिन्दी साहित्य का इतिहास पुनर्लेखन की समस्याएँ - श्याम कश्यप (संपादन)
हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1999 ई०, पृ०सं० 112

24 रजनी पाम दत्त - आज का भारत, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, 2004 ई० पृ०सं० 306

25 रामविलास शर्मा - महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1989 ई० पृ० सं० 77

लेख 'हमारे गरीब किसान और मजदूर'[26] छापा था। हिन्दी के रचनाकार इन विषयों पर लिखकर अंग्रेजी राज के खिलाफ एक नये मोर्चे की ओर संकेत कर रहे थे। "जैसे जमीन पर अंग्रेजों का इजारा था, वैसे ही उनका इजारा व्यवसाय पर था। अंग्रेज यहाँ के सबसे बड़े जमींदार थे तो वही सबसे बड़े पूंजीपति भी थे। इसलिए यहाँ मजदूरों का संघर्ष पूंजीपतियों के विरुद्ध साधारण संघर्ष न हो सकता था। उनके संघर्ष का मतलब था राजसत्ता से सीधे टक्कर लेना।"... "जैसे जमीन के लिए किसान की लड़ाई आजादी की लड़ाई का अंग बन जाती है, वैसे ही रोजी-रोटी के लिए मजदूरों का संघर्ष स्वाधीनता संग्राम का अंग बन जाता है।"[27] अकारण नहीं था कि इन बातों को समझते हुए और अंग्रेजी राज के दमन की प्रवृति को देखते हुए माधवराव सप्रे ने अपने लेख 'हड़ताल' (1907 ई०) के अंत में कहा था कि "परन्तु इस विषय की चर्चा सरस्वती में नहीं की जाती, क्योंकि उसका संबंध राजनीति से है।"[28]

माधवराव सप्रे की आशंकाएँ उस दौर में निराधार नहीं थी। आचार्य शुक्ल ने इसी समय 'What has India to do?' (1907 ई०) नामक लेख लिखा था। (1908-10) इन दो-तीन वर्षों में ब्रिटिश सरकार ने लेखन और पत्रकारिता को कितनी गंभीरता से लिया था। इसका अनुमान इन तथ्यों से लगाया जा सकता है। "1908 में अखबार में एक लेख छापने के अपराध में तिलक जेल भेजे गये।"[29] "वृंदावन लाल वर्मा ने 'सेनापति ऊदल' नामक नाटक 1909 में लिखा था, जिसे ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया।"[30] "प्रेमचंद की कहानियों का संकलन 'सोज़ेवतन' 1909 में प्रकाशित हुआ, ब्रिटिश सरकार ने इन्हें खतरनाक समझा था, इसके आधार पर प्रेमचंद पर 'सिडीशन' का आरोप लगाया गया था और उनके अदम मौजूदगी में उनके संग्रह की सारी प्रतियों को आग के सुपुर्द करते हुए सम्बद्ध अधिकारी ने उन्हें चेतावनी दी थी कि आगे वह ऐसा कुछ भी करने की जुरअत न करें। उन्हें इस बात के लिए खैर मनाने की भी सलाह दी गई थी कि वह ब्रिटिश अल्मदारी में हैं नहीं तो इस जुर्म के लिए उनके हाथ कलम कर लिए जा सकते थे।"[31] 'हिन्दी प्रदीप' पत्रिका, जो बालकृष्ण भट्ट के अथक प्रयत्नों से लगातार तैंतीस वर्ष से निकल रही थीं। "फरवरी 1910 ई० में सरकारी आदेश से उसका

---

26 वही, पृ०सं० 81

27 वही, पृ०सं० 81

28 वही, पृ०सं० 81

29 रजनी पाम दत्त - आज का भारत, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, 2004 ई० पृ०सं०306

30 मधुरेश-हिन्दी कहानी का विकास, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, 2001, पृ०सं 13

31 वही, पृ० सं०-21

प्रकाशन बंद हो गया।"[32] सखाराम गणेश देउस्कर की बांग्ला में लिखी पुस्तक 'देशेर कथा' की अपार लोकप्रियता से भयभीत होकर अंग्रेजी राज ने 28 सितंबर, 1910 को एक विज्ञप्ति निकालकर उसे जब्त कर दिया।"[33] यह क्रम रुका नहीं था। आगे चलकर चाँद का फाँसी अंक जब्त हुआ। "1930 में अंग्रेजों ने 'नवजीवन' प्रेस को प्रतिबंधित किया तो गांधीजी ने हस्तलिखित अखबार निकालने का आह्वान किया। रजनी पाम दत्त की पुस्तक 'आज का भारत' (1940 ई०) न सिर्फ भारत में प्रतिबंधित थी बल्कि "इस पुस्तक के लेखक रजनी पाम दत्त के भारत आने पर भी प्रतिबंध लगा हुआ था।"[34] विचार स्वातंत्र्य का दमन और अभिव्यक्ति के रोक वाले परिवेश में हिन्दी गद्य-पद्य का विकास हुआ।

इस परिवेश में रचनाकार जान गये थे कि अभिधात्मक कथन से वे सरकार की नजरों में आयेंगे। परिणामत: उन्होंने समकालीन यथार्थ को अतीत के माध्यम से प्रस्तुत करना आरंभ किया। "हर पराधीन देश में राष्ट्रीयता की भावना का उदय पुनरूत्थान भावना से होता है।"[35] "भारतवासियों ने (भी) वर्तमान पराधीनता के अपमान को भूलने के लिए अतीत के स्वर्ण युग का सहारा लिया। वर्तमान की हार का उत्तर उन्होंने अतीत की जीत से दिया। हीनता का भाव दूर हुआ। जो जाति वर्तमान में विभाजित थी, वह अतीत की पृष्ठभूमि पर एक हो उठी। इस तरह अतीत के पुनरूत्थान ने संपूर्ण देश में एक जातीय अथवा राष्ट्रीय भावना का सूत्रपात किया।"[36] राष्ट्रीयता के साथ-साथ राष्ट्रवाद की भावना का भी उदय हुआ। "ए.आर. देसाई के अनुसार भारत में राष्ट्रवाद ब्रिटिश उपनिवेशवाद के द्वारा उत्पन्न की गई भौतिक दशाओं का परिणाम है और ब्रिटिश पूर्व भारत में इस राष्ट्रवाद का अस्तित्व नहीं था।"[37] "यूरोपीय देशों में धार्मिक हस्तक्षेप और परस्पर युद्ध के कारण राष्ट्रवाद विकसित हुआ, तो बाद के समय में यूरोप के साम्राज्यवादी हमले से आत्मरक्षा के उद्देश्य से गैर यूरोपीय जनसमूहों के अंदर राष्ट्रवाद का विकास हुआ। यह एक स्वाभाविक परिणाम था, कारण एशिया, अफ्रीका के जनसमूहों के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक - प्रत्येक क्षेत्र में यूरोप का हस्तक्षेप हुआ और बढ़ता गया। अपने धर्म, संस्कृति और आर्थिक सुरक्षा को स्वायत्त रखने के लिए राजनीतिक

---

32 बालकृष्ण भट्ट : प्रतिनिधि : प्रतिनिधि संकलन - सत्य प्रकाश प्रकाश मिश्र (संपादक), नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया 1995 ई० पृ०सं० 11

33 मैनेजर पाण्डेय - एक आंदोलनकारी किताब की कहानी (भूमिका)
देश की बात - सखाराम गणेश देउस्कर, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया 2005 ई० पृ०सं० 8

34 रजनी पाम दत्त - आज का भारत, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, 2004 ई० प्रकाशक की ओर से

35 नामवर सिंह - छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1997 ई०, पृ०सं० - 72

36 वही, पृ०सं०-73

37 योगेन्द्र सिंह - भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर, 2006 ई० पृ० सं० 45

स्तर पर अपनी अस्मिता को जागरित करना और परिभाषित करना आवश्यक हो गया।"[38] 'अस्मिता-बोध' के बीज भारतेंन्दु-युग में ही देखने को मिल जाते हैं। "हिन्दी नवजागरण का बीज मंत्र फूंकनेवाले प्रथम अग्रदूत भारतेन्दु हरिश्चंद्र थे, जिनकी मुख्य प्रतिज्ञा यह थी कि "स्वत्व निज भारत गहै।" भारतेन्दु का 'स्वत्व' वही था जिसे आज 'जातीय अस्मिता', 'जातीय पहचान' और अंग्रेजी में 'आइडेंटिटी' कहते हैं। भारतेन्दु के साथ ही उस दौर के सभी हिन्दी लेखकों के लिए अपनी 'पहचान' की पहली शर्त थी अपनी भाषा : 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।'[39]

"अंग्रेजों की न्याय-व्यवस्था, टैक्स संबंधी नीति, शिक्षा, भाषा और साहित्य में उनका हस्तक्षेप, उद्योगीकरण, व्यापार आदि के संबंध में ब्रिटिश नीति, प्रत्येक घटना का विवरण देते हुए अपनी आलोचना को ठोस रूप देना - यह 'कविचन-सुधा' में भारतेन्दु हरिश्चंद्र और उनके सहयोगियों का काम था। इस आलोचना को देखने से ही 'भारत निज स्वत्व गहै'- इस बात का अर्थ समझ में आता है।"[40] द्विवेदी युग तक आते-आते यह अस्मिता-बोध और प्रखर हो जाता है।

"हम कौन थे क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।।

यह प्रसिद्ध पंक्ति एक सवाल के साथ पढ़ी जानी चाहिए। सवाल यह कि क्या ऐसी आत्म-सजग पंक्तियाँ भारत में अंग्रेजी राज कायम होने के पहले भी लिखी जाती थीं? ऐसी पंक्तियाँ जिनमें किसी समाज की वेदना अपने अतीत और वर्तमान के संदर्भ में प्रतिबिम्बित हो रही हो, जिनमें कवि किसी समुदाय की ओर से उसकी हालत के बारे में सवाल पूछ रहा हो।"[41] "हमारे इतिहास में पहली बार उन्नीसवीं सदी के नवजागरण के दौरान 'हम' को पारंपरिक अस्मिताओं से विस्तृत कर 'राष्ट्र के आधुनिक अर्थ में परिभाषित किया गया।"[42] छायावादी काव्य में राष्ट्रीयता की भावना एक प्रधान प्रवृत्ति है। 'पेशोला की प्रतिध्वनि' 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' (प्रसाद); 'छत्रपति शिवाजी का पत्र,' 'जागो फिर एक बार', 'तुलसीदास' (निराला)आदि में यह प्रवृत्ति स्पष्ट रुप से दिखाई देती है। प्रसाद के नाटकों

---

38 किशन पटनायक - विकल्पहीन नहीं है दुनिया, राजकमल पेपरबैक्स, 2001 ई० पृ०सं० 232

39 राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' - नामवर सिंह (प्रधान संपादक), संपादकीय वक्तव्य से पृ०सं० (सात-आठ)

40 रामविलास शर्मा-भारतेंन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1995 ई०, पृ०सं० 338

41 पुरूषोत्तम अग्रवाल - संस्कृति वर्चस्व और प्रतिरोध, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1995 ई० पृ०सं० 15

42 वही, पृ०सं० 16

'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त' आदि का स्वर भी इससे अलग नहीं है। राष्ट्रीयता की भावना और पुनरूत्थान की भावना परस्पर जुड़े हुए हैं और इनका संबंध आधुनिकता से है।

राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में अन्य प्रवृत्तियों का भी योगदान रहा है। जैसे -सामाजिक आंदोलनों के साथ-साथ "इंडियन नेशनल कांग्रेस राजनीतिक सुधारों के लिए आंदोलन कर रही थी और भारतेन्दु, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि विद्वान साहित्यिक सुधारों के लिए आंदोलन कर रहे थे। इन आंदोलनों से एक सुधारक-वर्ग की सृष्टि हो गई थी जो नाटकों के रूप में सामाजिक तथा अन्य कुरीतियों पर व्यंग्य तथा हास्यपूर्ण प्रहसन लिखा करता था।"[43] प्रहसन और नाटकों की प्रधानता भारतेन्दु युग में रही, द्विवेदी युग अपने निबंधों के माध्यम से यह काम प्रधानतया कर रहा था। यों तो कृतियों का अनुवाद भारतेन्दु युग से ही आरंभ हो गया था लेकिन द्विवेदी युग में इस ओर विशेष प्रगति हुई थी, गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में परवर्ती काल में भी यह क्रम चलता रहा है।

इन अनुवादों का मूल उद्देश्य उस समय तक अन्य भाषाओं में राजनीति, विज्ञान, दर्शन, अर्थशास्त्र, इतिहास, समाजशास्त्र के क्षेत्र में हुई प्रगति को देशी भाषा में उपलब्ध कराना था। कारण अंग्रेजी, मराठी या बांग्ला का ज्ञान सबको नहीं था। उन बातों को देशी भाषा (निज भाषा) में उपलब्ध करा कर इन रचनाओं ने न सिर्फ स्वदेशी की भावना का संचार किया बल्कि स्वाधीनता की चेतना भी पैदा की। "देशी भाषाओं में प्रायः तीन तरह के अनुवाद हुए हैं। एक तो अंग्रेजी ग्रंथों का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद दूसरे संस्कृत के ग्रंथों का आधुनिक भारतीय भाषाओं में अनुवाद और तीसरे आधुनिक भारतीय भाषाओं की रचना का अनुवाद।... भारत में स्वाधीनता आंदोलन के दौरान राष्ट्र की कल्पना और धारणा के विकास में अनुवादों की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रही है।"[44]

"भारतीय नवजागरण और हिन्दी नवजागरण के अधिकांश निर्माता महत्वपूर्ण अनुवादक भी थे। हिन्दी नवजागरण के लेखक भारतेन्दु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी और रामचंद्र शुक्ल के अनुवाद विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। उपनिवेशवादियों ने अनुवाद को भारतीय परंपरा और मानस पर कब्जा करने का साधन बनाया था तो भारतीय नवजागरण के विचारकों ने अनुवाद की अपनी परंपरा को मुक्ति और स्वत्व की पहचान का माध्यम बनाया। भारतीय लेखक अनुवाद को औपनिवेशिक प्रभावों के

---

43 श्रीकृष्ण लाल - आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, हिन्दी परिषद प्रकाशन, विश्वविद्यालय प्रयाग, संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण - 1995 ई० पृ०सं० 223

44 मैनेजर पाण्डेय - एक आंदोलनकारी किताब की कहानी (भूमिका)
देश की बात - सखाराम गणेश देउस्कर, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2005 ई०

विरुद्ध प्रतिरोध के साधन के रूप में विकसित कर रहे थे। साथ ही वे आधुनिक चिंतन और ज्ञान-विज्ञान से भारतीय समाज को परिचित कराने के लिए भी अनुवाद का काम कर रहे थे।"[45] 'कृष्णचन्द्र भट्टाचार्य ने अपने निबन्ध 'स्वराज्य इन आइडियाज' में कहा है कि विचार में स्वराज्य तभी आयेगा जब विचार अपनी भाषा में किया जाये। हमारी अपनी आधुनिकता हमारे साहित्य में इसी कारण प्रामाणिक रूप से दिखती है क्योंकि वह हमारी भाषा में रचा गया है।'

"हिन्दी नवजागरण के दौरान हिन्दी में सबसे अधिक अनुवाद बांग्ला से हुआ; रचनात्मक साहित्य का और राजनीतिक-सामाजिक चिंतन संबंधी पुस्तकों का भी । 'स्वत्व' की पहचान के लिए अन्य की समझ आवश्यक है; स्व और पर के द्वैत के रूप में ही नहीं, दोनों के बीच केवल अंतर के रूप में भी नहीं, बल्कि द्वन्द्वात्मक रूप में।"[46] गद्य के महत्वपूर्ण अनुवादों का उल्लेख पिछले अध्याय में किया गया है। यहाँ पद्य के अनुवाद की ओर संकेत किया जा रहा है। "(1903-08) के मध्य हुए कुछ महत्वपूर्ण अंग्रेजी कविता के अनुवाद:

मास और वर्ष	**अंग्रेजी कविता**	**हिन्दी अनुवाद**
जून 1903 ई०	बायरन की 'फेअर दी बैल'	गौरीदत्त वाजपेयी द्वारा 'आशीर्वाद'
फरवरी 1904 ई०	जेम्स टेलर की 'माई मदर'	जैनेन्द्रकिशोर द्वारा 'मेरी मैया'
जून 1904 ई	बायरन की 'एण्ड आर्ट दाउ डेड सो यंग एण्ड फेयर'	गौरीदत्त वाजपेयी द्वारा 'तरूणी तू चल बसी कभी'
अगस्त 1904 ई०	लांगफेलो की 'प्लाज्म ऑफ लाइफ'	लक्ष्मीनारायण द्वारा 'जीवन गीत'
फरवरी 1905 ई०	शेक्सपीयर की 'फ्रैण्डशीप'	कालीशंकर व्यास द्वारा 'मित्रता'
जुलाई 1905 ई०	सदे की 'स्लीप'	सनातन शर्मा द्वारा 'निद्रा'
फरवरी 1906 ई०	'पीस एट होम'	रामरणविजय सिंह द्वारा 'घर में शांति'
अप्रैल 1906 ई०	'दि कुकू'	जीतन सिंह द्वारा 'कोयल'
जुलाई 1906 ई०	अर्नेस्ट जोन्स की 'दी पोयट एंड लिबर्टी'	महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा 'कवि और स्वतंत्रता'

45 वही, पृ०सं० 12

46 वही, पृ०सं० 12

मार्च 1908 ई०	ग्रे की 'एलिजी'	कामताप्रसाद गुरू द्वारा 'ग्रामीण गीत'

इन रचनाओं के अतिरिक्त 'सरस्वती' में अन्य रचनाएँ भी अनूदित होकर प्रकाशित हुई:-

वाल्टर स्काट की	'लव ऑफ दी फादरलैण्ड'	स्वदेश प्रीति शीर्षक से
ग्रे की	'नाइटेन्गल एण्ड ग्लोवार्म'	'बुलबुल और जुगनू'
सदे की	'स्कालर'	'पुस्तकावलोकन प्रेमी विद्वान'
कैम्पबेल की	'लार्ड डलिन्स डाटर'	'लार्ड डलिन कुमारी'
टॉमस मूर की	'दी लास्ट रोज ऑफ समर'	'ग्रीष्म का अंतिम गुलाब'
वर्डसवर्थ की	'दि एफ्लिक्शन ऑफ मार्गरेट'	'माता का विलाप'
पोप की	'दि हैपीनेस ऑफ रिटायरमेण्ट'	'एकान्तवास का सुख'[47]

इन अनुवादों से दूसरी भाषाओं के विचार और चिन्तन के साथ-साथ शब्द भी आये।[48]

भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग में जहाँ बांग्ला और आंग्ल कविताओं का अनुवाद हो रहा था, वहीं छायावाद में इन भाषाओं की कविताओं से प्रभाव ग्रहण किया जाने लगा। (निराला और पंत दोनों ने एक-दूसरे पर अन्य कवियों का प्रभाव दिखलाया)। अंतर्वस्तु और शिल्प दोनों धरातलों पर छायावाद कविता अपनी पूर्ववर्ती काव्य परंपरा से बहुत बढ़ी अवस्था की ओर संकेत करती है। भारतेन्दु-द्विवेदी युग की सुधारवादी चेतना और सामाजिकता की तुलना में छायावादी काव्य में वैयक्तिकता

---

47 पूनमचंद्र तिवारी - द्विवेदीयुगीन काव्य, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल 1972 ई० पृ० सं० 246

48 बंग्ला से अनूदित शब्द - वैकालिक, आकाश, अप्रतिहत, विचक्षण, दौर्दण्ड, प्रताप, निष्पत्ति, निगूढ, प्रमथिता, प्रव्रजिता, स्फीत, उच्छवसित, संश्रव, स्थूलोज्जवल, प्रकोष्ठ, स्मश्रु, जलोच्छवास, अवसन्न आदि, पृ०सं०-158

मराठी से अनूदित शब्द - प्रत्यवाय, खटाटोप, सन्नध, प्रगति, लागू, चालू, बाजू, सीताफल, श्रीमंती इत्यादि। पृ०सं०-159

आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास - श्रीकृष्ण लाल हिन्दी परिषद प्रकाशन, विश्वविद्यालय प्रयाग, संशोधित तथा परिवर्धित (चतुर्थ) संस्करण-1965 ई०

शब्द-निर्माण में छायावादी कवियों ने कभी-कभी.... अंग्रेजी के सुदंर पदों का छायानुवाद भी किया।... इन शब्दों से हिन्दी का भंडार समृद्ध हुआ। 'ब्रोकेन हार्ट' के वजन पर गढ़ा हुआ 'भग्न हृदय', हेवेनली लाइट के लिए 'स्वर्गीय प्रकाश', 'गोल्डेन ड्रीम' के लिए सुनहला स्वप्न और इसी तरह सुनहला स्पर्श, स्वर्ण का काल आदि।

छायावाद - नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, 1997 ई०, पृ०सं०-115

का आग्रह बहुत प्रबल था। वैयक्तिक अभिव्यक्ति ने पुरानी रूढ़ियों से भी स्वयं को मुक्त किया। एक ओर जहाँ इन्होंने रीतिकालीन कवियों की 'रूढ़िगत तटस्थता' से स्वयं को अलगाया वहीं दूसरी ओर इनकी वैयक्तिक अभिव्यक्ति में, भक्तिकालीन कवियों के आत्म निवेदन के समान, धर्म का आवरण नहीं था। "इनकी कविताओं में मध्ययुग की धार्मिकता का स्थान आधुनिक युग की ऐहिकता ने ले लिया।"[49]

वैयक्तिकता ही वह मूल प्रवृत्ति थी, जिसने पारंपरिक काव्य रूढ़ियों के प्रति विद्रोह कर नये शिल्प की प्रस्तावना की। यदि किसी पुराने विषय को लेकर भी कुछ लिखा गया तो इस नयी भंगिमा (वैयक्तिकता) ने उसे नया कलेवर प्रदान किया। छायावादी काव्य (1920-36) स्वाधीनता आंदोलन के समानांतर रचा जा रहा था। छायावादी कवियों के पास विकास का स्पष्ट प्रारूप (मॉडल) नहीं था। प्रसाद कश्मीरी शैवाद्वैतवाद दर्शन, पंत तो अरविंद से लेकर गांधी तक दोलायमान रहे, निराला अद्वैत वेदान्त और महादेवी बौद्ध दर्शन से प्रभाव ग्रहण कर रचना करते दिखीं। इसलिए "यह न भूलना चाहिए कि छायावादी कवि अपने इस आत्म विकास के बारे में अधिक स्पष्ट नहीं थे।"[50] यह वैयक्तिकता ही थी, जो नित नये प्रयोग का जोखिम उठा रही थी, विषयवस्तु और शिल्प दोनों धरातलों पर। आत्मकथा और मुक्त छंद का विकास इसी तथ्य की पुष्टि करता है। आत्मकथा लिखने का हमारे यहाँ चलन नहीं था। "मध्ययुग के हिन्दी साहित्य में केवल एक आत्मकथा मिलती है, बनारसीदास जैन की 'अर्द्धकथा' (1641 ई०)"[51] "यह आत्मकथा पद्य में लिखी गयी है।.... आत्मचरित्र लिखने की परंपरा का विकास आधुनिक युग में ही हुआ है। स्वामी दयानंद लिखित जीवन चरित्र (सं० 1917), सत्यानंद अग्निहोत्री लिखित 'मुझ में देव जीवन का विकास' (1910 ई०) भाई परमानंद लिखित 'आप बीती' (1921 ई०), श्री रामविलास शुक्ल लिखित 'मैं क्रांतिकारी कैसे बना,' 1933 ई०)"[52] इसके बाद तो "आत्मकथा" लिखने की परंपरा-सी चल पड़ी। गाँधी, नेहरू, रवीन्द्रनाथ, श्रद्धानंद, श्यामसुंदर दास, वियोगी हरि, राहुल सांकृत्यायन आदि न जाने कितने राजनीतिज्ञों, धर्मसुधारकों और साहित्यकारों ने अपनी आत्मकथा अथवा जीवन-स्मृति लिखी है। इतने बड़े पैमाने पर इस देश में आत्मकथाएँ पहले शायद ही कभी लिखी गई।"[53] इस बात की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि "आधुनिक भारत में आत्म कथा को महत्व मिला और उसके कारण मिला, जिसने किसी भी अन्य व्यक्ति की तुलना

---

49 नामवर सिंह-छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1997 ई०, पृ०सं०-19

50 वही, पृ०सं० 33

51 नामवर सिंह - छायावाद, राजकमल प्रकाशन, 1997 ई० पृ०सं० 22

52 रामचंद्र तिवारी - हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1999 ई० पृ०सं० 289

53 नामवर सिंह - छायावाद, राजकमल प्रकाशन, 1997 ई० पृ०सं० 22

में कहीं अधिक गहरे में हमारे सार्वजनिक जीवन को प्रभावित किया। इसका मतलब यही हुआ कि संक्रमणकाल में परंपरा का पुनरूज्जीवन भी परंपरा से अलग हटके ही संभव होता है: मूल्यों के पुनर्मूल्यांकन द्वारा, रूढ़ियों से विद्रोह करके।"[54]

निराला ने कविता में छंदों के शासन से मुक्ति को मनुष्यों की मुक्ति से जोड़कर देखा। 'मुक्त छंद' का प्रवर्तन निराला की प्रगतिशीलता का परिचायक है लेकिन 'मुक्त छंद' के प्रचलन के लिए अनुकूल ऐतिहासिक परिस्थितियाँ आधुनिक-काल में ही निर्मित हो सकीं, इसे नहीं भूलना चाहिए। आधुनिकता के भौतिक आधार प्रेस और यातायात के साधन ने साहित्य में उस ऐतिहासिक घटना को अंजाम दिया, जिससे साहित्य के श्रोता पाठक में परिवर्तित हुए, "आधुनिक कविता श्रव्य की जगह पाठ्य हो गई।"[55] कहने का तात्पर्य इतना कि चाहे वह कोई गद्य विधा हो अथवा मुक्त छंद में रची कविता। इनके अबाध प्रचार-प्रसार और विकास के लिए, जो न्यूनतम मूलभूत शर्तें और स्थितियाँ जरूरी थीं, यथा-प्रेस, यातायात के समुन्नत साधन, शांतिपूर्ण व्यवस्था, शिक्षा और शिक्षित मध्यवर्ग। "हिन्दुस्तान में इस प्रकार की परिस्थितियाँ औपनिवेशिक शासन के बाद निर्मित हुई।"[56] "हिन्दी क्षेत्र में श्रोतावर्ग के पाठकवर्ग में परिणत होने की प्रक्रिया उन्नीसवीं सदी में आरंभ हुई।"[57]

आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ में अंतर्वस्तु और रूप के परस्पर प्रभाव की चर्चा बार-बार की है। "उन्होंने आधुनिक हिन्दी कविता के विकास में राजनीति से कविता के संबंध की व्याख्या करते हुए लिखा है कि - "द्विवेदी काल की देशभक्ति संबंधी रचनाओं में शासन पद्धति के प्रति असंतोष तो व्यंजित होता था पर कर्म में तत्पर कराने वाला, आत्मत्याग कराने वाला जोश और उत्साह न था। आंदोलन भी कड़ी याचना के आगे नही बढ़े थे। तृतीय उत्थान में आकर स्थिति बहुत बदल गई। आंदोलनों ने सक्रिय रूप धारण किया और गाँव-गाँव में राजनीति और आर्थिक परतंत्रता के विरोध की भावना जगाई गई। सरकार से कुछ मांगने के स्थान पर अब कवियों की वाणी देशवासियों को ही 'स्वतंत्रता की देवी पर बलिदान' होने को प्रोत्साहित करने लगी। अब जो आंदोलन चले वे सामान्य जन समुदाय को भी साथ लेकर चले। इससे उनके भीतर अधिक आवेश और बल का संचार हुआ।" इस तरह राजनीतिक परिस्थिति के परिवर्तन से कविता में भाव के स्तर पर घटित परिवर्तन का

---

54 रमेशचन्द्र शाह - हिन्दी निबंध : परम्परा का आत्मबोध

परम्परा की आधुनिकता : हजारी प्रसाद द्विवेदी - अशोक वाजपेयी (संपादक) पूर्वोदय प्रकाशन, दरियागंज, 1997 ई० पृ०सं० 136

55 नामवर सिंह - छायावाद, राजकमल प्रकाशन, 1997 ई० पृ०सं० 132

56 गोपाल राय - हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल पेपरबैक्स, 2005 ई० पृ०सं० 13

57 वही, पृ०सं० 14

स्वरूप स्पष्ट होता है। भाव का यह परिवर्तन भाषा के परिवर्तन में भी दिखाई देता है जिसकी ओर शुक्लजी ने संकेत किया है।"[58]

"व्यक्तित्व की स्वाधीनता, विराट कल्पना, प्रकृति-साहचर्य, मानव-प्रेम, वैयक्तिक प्रणय, उच्च नैतिक आदर्श, देशभक्ति, राष्ट्रीय स्वाधीनता आदि के प्रसार द्वारा छायावाद ने हिन्दी जाति के जीवन में ऐतिहासिक कार्य किया।"[59] भाव और रूप की दृष्टि से द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मक तथा श्रीधर पाठक और मुकुटधर पाण्डेय की स्वच्छंदतावादी कविताओं के बाद छायावादी कविताओं का उतना भव्य उत्थान आश्चर्यजनक लगता है। पूर्ववर्ती कविताओं के साथ छायावादी रचनाओं को पढ़कर सहसा ऐसा प्रतीत होता है कि इतना लंबा रास्ता इन कवियों ने दो तीन वर्षों में ही कैसे तय कर लिया?"[60] कारण स्पष्ट है, इन विषयों की अभिव्यक्ति में पारंपरिक छंदबद्धता सबसे बड़ी रूकावट बन रही थी और दूसरे आत्म विकास की दिशा स्पष्ट न होने के कारण 'अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने की वैयक्तिक कोशिशें छायावादी कवियों के द्वारा लागतार जारी थी। परिणाम छंदबद्धता की जगह मुक्त छंद की उद्‌भावना हुई। " मुक्त छंद अर्थात् छंद-रूढ़ि से मुक्ति, छंद मात्र से मुक्ति नहीं।"[61] अब "छंद के अनुसार भावों को ढालने की जगह भाव के अनुसार छंद को ढाला जाने लगा। यदि भाव शृंखला लंबी है, तो छंद-योजना भी उसी के अनुसार फैलती चली गई और यदि भाव शृंखला छोटी है, तो उसी छंद में एक छोटी रचना खिल उठी, जिसे प्राय: गीत कहा जाता है।"[62]

छायावादी काव्य के बिंब और प्रतीक विधान की चर्चा करते हुए उसे आचार्य शुक्ल ने पुराने काल के कवियों से अलग दिखलाया। पुराने कवि जहाँ वस्तुओं की तुलना आकार साम्यता के आधार पर करते थे। वहीं छायावादी कवियों ने प्रभाव साम्य को प्रधानता दी शुक्लजी के अनुसार "छायावाद बड़ी सहृदयता के साथ प्रभावसाम्य पर ही विशेष लक्ष्य रखकर चला है। कहीं कहीं तो बाहरी सादृश्य या साधर्म्य अत्यंत अलग या न रहने पर भी आभ्यंतर प्रभावसाम्य लेकर ही अप्रस्तुतों का सन्निवेश कर दिया जाता है।.... आभ्यंतर प्रभाव साम्य के आधार पर लाक्षणिक और

---

58 मैनेजर पाण्डेय - साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2001 ई० (द्वितीय संस्करण;), पृ०सं० 60

59 नामवर सिंह - छायावाद, राजकमल प्रकाशन 1997 ई० पृ०सं० 152

60 वही, पृ०सं० 151

61 वही, पृ०सं० 131

62 वही, पृ०सं० 133

व्यंजनात्मक पद्धति का प्रगल्भ और प्रचुर विकास छायावाद की काव्यशैली की असली विशेषता है।"[63]

"छायावादी काव्य ने अपने युग के अन्य साहित्य-रूपों, (कविता कहानी, उपन्यास, नाटक, आलोचना), को भी प्रभावित किया।[64] नित्यानंद तिवारी का मानना है कि "छायावादी काव्य की शिलष्टता और जटिलता इस कारण है कि विश्वास के स्थान पर विचार ने उसके रचना-पैटर्न को उभारा है।"[65] हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकालीन कविता के बाद श्रेष्ठता के धरातल पर छायावादी काव्य की गणना की जाती है। छायावादी काव्य में जो रहस्यवादी, पलायनवादी और निराशावादी स्वर देखने को मिलते हैं, उसके मूल में नामवर जी 'आधुनिक युग की पराधीनता देखते हैं।' [66]

भारतेन्दु युग से नाटकों की परंपरा का जो अभ्ययुदय होता है, उस पर आचार्य शुक्ल कहते हैं कि "विलक्षण बात यह है कि आधुनिक गद्य-साहित्य की परंपरा का प्रवर्तन नाटकों से हुआ।" विलक्षणता शायद उन्हें इस बात में लगती है कि कहाँ तो हिन्दी-क्षेत्र में नाटक पिछली पांच शताब्दियों से अनुपस्थित था और कहाँ आधुनिक काल का प्रवर्तन इसी माध्यम से होता है। ऊपर से देखने पर यह विस्मय वाजिब है। पर यदि समूची स्थिति का विश्लेषण किया जाए तो परिप्रेक्ष्य कुछ दूसरे रूप में उभरता दिखता है। पुनर्जागरण आंदोलन (रामस्वरूप चतुर्वेदी पुनर्जागरण और नवजागरण को एक ही अर्थ में प्रयुक्त करते हैं।)[67] के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि वहाँ एक मुख्य प्रतिज्ञा यह थी कि हिन्दू जाति की एकांतिक भावना का निरसन करके उसे एक समाज के रूप में गठित किया जाए। 'ब्रह्म समाज', 'प्रार्थना समाज', 'आर्य समाज' और आगे चलकर स्वयं भारतेन्दु द्वारा स्थापित 'तदीय समाज' (1873

---

63 आचार्य रामचंद्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1994 ई० पृ०सं० 363

64 प्रसाद की आकाशदीप, स्वर्ग के खंडहर आदि कहानियाँ कथा साहित्य में छायावाद का प्रसार है। प्रेमचन्द के सेवासदन, प्रेमाश्रम, गबन आदि उपन्यासों का अंत जो सदनों और आश्रमों के आदर्श में हुआ है, उसे भी छायावादी जीवन दृष्टि का परिणाम समझना चाहिए। निराला के अलका, अप्सरा, निरूपमा आदि पर छायावादी कल्पनाप्रियता का गहरा रंग है। प्रसाद की तितली छायावादी पुतली है। पंत की ज्योत्सना तो छायावादी कल्पना की सृष्टि है ही, प्रसाद के अजातशत्रु, स्कंदगुप्त, चन्द्रगुप्त, कामना आदि नाटकों में भी छायावादी रूमानियत रची हुई है। निराला के प्रबंध-प्रतिमा के भावात्मक निबंध तथा संस्मरण, महादेवी के रेखचित्र भी अपनी काल्पनिक उड़ान तथा भावुकता में छायावाद से टक्कर लेते हैं। छायावाद - नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, 1997 ई०, पृ०सं०-152

65 नित्यानंद तिवारी - आधुनिक साहित्य और इतिहास बोध, वाणी प्रकाशन, 1994 ई० पृ०सं० 64

66 नामवर सिंह - इतिहास और आलोचना, राजकमल प्रकाशन, 2002 ई० पृ०सं० 35

67 इस मानसिकता को सामान्य रूप से 'पुनर्जागरण' या 'नवजागरण' कह कर इतिहास और संस्कृति के संदर्भ में पुकारा गया है। रामस्वरूप चतुर्वेदी-हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999 ई०, पृ०सं०-79

ई०) नामकरण और उनके कार्यक्रम इस मान्यता को भली भांति पुष्ट करते हैं। इधर नाटक सभी साहित्य और कला-माध्यमों के बीच अपनी प्रकृति में सर्वाधिक सामाजिक है। रंगमंच पर उसका प्रस्तुतीकरण अनेक प्रकार के कलाकारों के सहयोग से होता है, वैसे ही उसका आस्वादन समाज के रूप में किया जाता है। इस स्थिति में पुनर्जागरण की व्यापक सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति के लिए नाटक ही सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम था। यों गद्य के क्षेत्र में नाट्य-माध्यम का पहला चुनाव करके भारतेन्दु ने अपनी सही ऐतिहासिक दृष्टि का परिचय दिया।"[68]

भारतेन्दु युगीन नाटक और प्रहसन मूल रूप में सुधारवादी चेतना से प्रेरित होकर लिखे गये, जिसमें यथास्थान प्रत्यक्ष या परोक्ष (ही ज्यादातर) ढंग से अंग्रेजी राज की आलोचना की गयी। सामाजिक-राष्ट्रीय विषयों को लेकर नाटक लिखे गये और आधार ऐतिहासिक-पौराणिक प्रसंगों का ग्रहण किया गया। इस तरह ऐतिहासिक-पौराणिक, नाटकों की अलग श्रेणी में भी मूल समस्या सामाजिक-राष्ट्रीय हो उठी। "ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों की रचना दो दृष्टियों से की गई - एक तो अपने पूर्व पुरूषों की याद दिलाकर प्राचीन गौरव को उद्‌बुद्ध करने के लिए और दूसरे, पौराणिक चरित्रों के आधार पर उच्च भारतीय आदर्शों की पुनः प्रतिष्ठा तथा नवीन युग-चेतना को प्रतिभासित करने के लिए।"[69] "भारतेन्दु और उनके समकालीन लेखकों पर बंग्ला-नाटकों का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा।"[70]

द्विवेदी युग में नाटकों के क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय विकास नहीं हुआ। भारतेन्दु के बाद जयशंकर प्रसाद का उदय ही हिन्दी साहित्येतिहास में ऐतिहासिक घटना रही। उनके नाट्य लेखन का उद्देश्य 'विशाख' की भूमिका पढ़कर ही स्पष्ट होने लगता है, उन्होंने अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकाण्ड घटनाओं का दिग्दर्शन कराना है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत-कुछ प्रयत्न किया है।"[71] ध्रुवस्वामिनी (1933 ई०) में जहाँ उन्होंने मोक्ष (divorce) को भारतीय परंपरा एवं संस्कृति का अंग दिखलाया। वहीं 'चंद्रगुप्त' (1913 ई०) की सुदीर्घ एवं सुचिंतित भूमिका ने भारतीय इतिहास के बारे में नयी सूचनायें दी। "प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता राखाल बाबू ने भी स्वीकार किया है कि प्रसादजी ने अनेक स्थलों पर हमारे इतिहास-ज्ञान में

---

68 रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिन्दी साहित्य और संवदेना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999 ई० पृ०सं० 84

69 बच्चन सिंह - हिन्दी नाटक, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, 1989 ई० पृ०सं० 48

70 शिवदान सिंह चौहान - हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, राजकमल प्रकाशन, बम्बई 1954 ई० पृ०सं० 117

71 शिवदान सिंह चौहान - हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड, बम्बई, 1954 ई० पृ०सं० 125

संशोधन किया है।"[72] साहित्य ने सिर्फ इतिहास की व्याख्या नहीं की बल्कि कही-कहीं नये ऐतिहासिक तथ्यों की ओर संकेत भी किया।

भारतेन्दु काल से ही उपन्यास लेखन की परंपरा का आरंभ होता है। 'वामा शिक्षक', 'भाग्यवती', 'निस्सहाय हिन्दू, 'परीक्षा गुरू' इस काल के उल्लेखनीय उपन्यास हैं, जो सुधारवादी चेतना के आलोक में लिखे गये। गोपाल राय का मानना है कि "भारतेन्दु, के समय में ही, उनके सहयोगी बालकृष्ण भट्ट ने सायास रूप में उपन्यास लेखन आरंभ किया (1879) यद्यपि तब भी उपन्यास के लिए जरूरी पाठक वर्ग का निर्माण नहीं हो पाया था। भारतेन्दु काल के लेखकों ने मध्यवर्गीय पाठकों की माँग पर नहीं, बल्कि 'देशहित' से प्रेरित होकर उपन्यास लिखे।"[73] यदि भारतेन्दु काल में पाठक वर्ग का निर्माण नहीं हो पाया था तो फिर पाठक समुदाय का निर्माण कब और कैसे हुआ? यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि "लोकप्रिय साहित्य ही उस पाठक समुदाय का निर्माण करता है, जिसके अभाव में महत्वपूर्ण साहित्य भी नहीं लिखा जा सकता।... अगर देवकीनंदन खत्री और किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों से एक बड़ा पाठक समुदाय पैदा नहीं हुआ होता.... तो प्रेमचन्द को वही काम करना पड़ता जो उन दोनों ने किया था।.... चंद्रकांता पढ़ने के लिए ही न जाने कितने उर्दूजीवी लोगों ने हिन्दी सीखी। किशोरीलाल गोस्वामी ने न केवल साठ-पैंसठ उपन्यासों की रचना की बल्कि 1898 में, 'उपन्यास' नाम की एक मासिक पत्रिका निकालकर हिन्दी में उपन्यास का पाठक पैदा किया।"[74] देवकीनंदन खत्री और किशोरीलाल गोस्वामी की भांति ही गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों ने भी "हिन्दी पाठकवर्ग के प्रसार में योगदान किया था।"[75] गहमरी का 'जासूस' नामक मासिक पत्र 1900 - 1938 ई० तक निकलता रहा। इस प्रकार प्रेमचंद के साहित्यिक पटल पर आविर्भाव के पूर्व "इस अवधि की समाप्ति तक हिन्दी में एक विशाल पाठकवर्ग निर्मित हो गया जो मुख्यत: मध्यवर्गीय था। यह मध्यवर्ग बाद में उपन्यास का आश्रयदाता ही नहीं, विषय भी बना।"[76] रामविलास जी ने कहा कि 'चंद्रकान्ता' के पाठकों को 'सेवासदन' का पाठक बनाकर प्रेमचंद ने ऐतिहासिक कार्य किया।

प्रेमचंद के कथा साहित्य की विस्तृत चर्चा यहाँ संभव नहीं है इसलिए 'गोदान' के माध्यम से ही प्रेमचंद के ऐतिहासिक दृष्टि की ओर संकेत कर यह

---

72 वही, पृ०सं० 127

73 गोपाल राय - हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल पेपरबैक्स, 2005 ई० पृ०सं० (21-22)

74 मैनेजर पाण्डेय - साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2001 (द्वितीय संस्करण) पृ०सं० - 27

75 गोपाल राय - हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल पेपरबैक्स, 2005 ई० पृ०सं० 99

76 गोपाल राय-हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल पेपरबैक्स, 2005 ई० पृ०सं० 121

बतालने का यत्न कर रहा हूँ कि कैसे वे संगत तौर पर आधुनिक थे। रविंदर कुमार ने अपनी पुस्तक 'आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास' में लिखा है - "गाँवों और शहरों को आपस में जोड़ने वाले और भी सूत्र थे। एक महत्वपूर्ण सूत्र वह व्यवस्था थी जिसके तहत शहरी धन ऋणों के रूप में गांव पहुंचता था और बदले में गांव के कृषि अधिशेष का कुछ हिस्सा उपभोगार्थ शहर को पहुंचता था। साहूकार काश्तकारों को करों की अदायगी, या बीज की खरीदारी अथवा सामाजिक दायित्वों के निर्वाह के लिए ऋण देकर गांवों में जो भूमिका निभाते थे, उस पर काफी साहित्य उपलब्ध है। लेकिन इस साहित्य में इस बात की ओर यथेष्ट या शायद जरा भी ध्यान नहीं दिया गया है कि गाँव का साहूकार साहूकारों की सीढ़ी पर सबसे निचले सोपान पर स्थित था, जबकि सबसे ऊपर के सोपानों पर नगरों के बड़े-बड़े साहूकार विराजमान थे और जिला तथा तहसील के स्तर पर साहूकारों की एक श्रृंखला के जरिये उनका कारोबार गाँवों तक पहुँचता था। इस तरह नगरों के बड़े साहूकारों और गाँवों के ऋण लेने वाले मामूली किसानों के बीच जो संबंध कायम होता था वह दोतरफा विनिमय के माध्यम का काम करता था। एक ओर तो किसान इस माध्यम का काम करता था। जो खेतीबारी के लिए जरूरी था। दूसरी ओर वित्तीय बिचौलियों के माध्यम से किसान के उत्पादन का अधिशेष का एक अंश मंडियों में पहुचता था।"[77] कहना न होगा कि गोदान में मिल मालिक मेहता, रायसाहब और उनके कारिन्दों, साहूकारों की साँठ-गाँठ की उस पूरी प्रक्रिया का रेखांकन वहाँ है।

सव्यसाची भट्टाचार्य ने दूसरी ओर भूमि खोकर मजदूर बनने की प्रक्रिया की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि "आर्थिक कारणों से किसान अपनी जमीन खोकर संपत्तिहीन प्रजा बन जाता है, अथवा और नीचे बँटाईदार अथवा मजदूर हो जाने की जो प्रक्रिया पटेल इत्यादि ने दिखाई है, वह भूमिहीनता एक और प्रकार की है। यह दूसरे प्रकार की भूमिहीनता औपनिवेशिक शासन काल में बढ़ी है और इसके साथ कृषि के वाणिज्यीकरण की जो प्रक्रिया पहले बताई गई है, उसके साथ यह भी बढ़ी है। इस बारे में संदेह करने का कोई प्रमाण अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। प्रेमचंद (गोदान) और तारांशकर बंद्योपाध्याय (गणदेवता) की साहित्यिक कृतियों में, अकादमिक शोधकार्य की तुलना में कहीं अधिक स्पष्टता के साथ, परंपरागत किसान और उसके समाज के यंत्रणादायक बिखराव का अनुभव पर आधारित वर्णन मिलता है।"[78]

---

77 रविंदर कुमार- आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास, (अनुवादक-आदित्यनारायण सिंह) ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, पृ॰ सं॰-9

78 सव्यसाची भट्टाचार्य - आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, राजकमल पेपरबैक्स, 2004 ई॰, पृ॰सं॰-71-72

योगेन्द्र सिंह का मानना है कि "शहर से लौटने वाले अपने साथ जीवन के आधुनिक तरीकों तथा आदतों के अनेक तत्वों को शहरों से गाँवों में ले आते हैं।"[79] गोदान में गोबर जब शहर से लौटकर आता है तब उसका व्यवहार विवेक और तर्क से चालित होने लगता है। और अनेक आयाम हैं प्रेमचंद के लेखन के लेकिन यहाँ इतना ही कहना अभीष्ट है कि प्रेमचंद के कथा साहित्य में इतिहास की सही पहचान आधुनिकता का सूचक है।

जहाँ तक हिन्दी कहानी का प्रश्न है, भारतेन्दु युग के निबंधों में कहानीपन का पुट देखने को मिलता है लेकिन कहानी विधा के रूप में द्विवेदी काल से आरंभ होती है। 1915 ई० तक कहानी परिपक्वता को प्राप्त नहीं करती है। देवीशंकर अवस्थी के अनुसार "आधुनिकता की शुरूआत कहानी में प्रेम की नयी दृष्टि के निरूपण में होती हैं, जिसे परिचय के बीच अपरिचय कहा गया है। 'उसने कहा था' और 'आकाशदीप' कहानियों में लहनासिंह प्रेम के लिए अपना शरीर छिदवा सकता है और चम्पा आजीवन कुमारी रहकर आकाश दीप जला सकती है।"[80] मूलतः प्रेमचंद के व्यक्तिगत अवदान से ही 20 वर्षों में (1915-36) कहानी विधा आधुनिक भाव-बोध को व्यक्त कर पाने में सक्षम हो जाती है। प्रेमचंद ने अपने लेखन के माध्यम से सौंदर्य के प्रतिमान बदल डाले। उन्होंने "चीजों की तरह कला को भी उपयोगिता की तुला पर तौला।"[81] "'ईदगाह' कहानी में बच्चे मेले में जिन चीजों को खरीदते हैं, उनमे कथा नायक हामिद सबसे असुंदर वस्तु 'चिमटा' खरीदता है।... इन परस्पर टकराने वाले प्रतीकों मे सूक्ष्म ढंग से वर्ग संघर्ष को भी प्रेमचंद प्रस्तुत करते हैं।"[82] क्यों? क्योंकि तत्कालीन परिवेश में वे इस तथ्य को अपनी लेखनी के माध्यम से व्यक्त कर रहे थे कि "हमें संदुरता की कसौटी बदलनी होगी।"[83] कहना न होगा कि वे इसमें कितना सफल रहे।

"भारतेन्दु युग में कई साहित्यिक विधाओं का नवीनीकरण हुआ। इनमें से एक आलोचना भी थी।"[84] आदि काल और भक्ति काल में आलोचना का कार्य नहीं हुआ

---

79 योगेन्द्र सिंह, भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2006 ई०, पृ०सं०-190

80 इन्द्रनाथ मदान - आधुनिकता और हिन्दी आलोचना, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1975 ई०, पृ०सं०-76

81 प्रेमचन्द-कुछ विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2003 ई०, पृ० सं०-16

82 केदारनाथ सिंह - आधुनिक साहित्य में इतिहास बोध हिन्दी साहित्य का इतिहास पुनर्लेखन की समस्याएँ-श्याम कश्यप (संपादन एवं संकलन) हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 1999 ई० पृ०सं०-124

83 प्रेमचन्द - कुछ विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2003 ई०, पृ०सं०-17

84 विश्वनाथ त्रिपाठी - हिन्दी आलोचना, राजकमल पेपरबैक्स, 2000 ई०, पृ०सं०-13

था। रीतिकाल में संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों से प्रेरणा लेकर केशवदास, चिंतामणि, मतिराम, कुलपति मिश्र, भिखारीदास आदि अनेक आचार्य कवियों ने रस, छंद, अलंकार, रीति, शब्दशक्ति और नायक-नायिका भेद से संबंधित अनेक लक्षणग्रंथों की रचना की किन्तु इनसे सिद्धांत निरूपण से आगे बढ़कर व्यावहारिक समीक्षा का मार्ग प्रशस्त नहीं हुआ। "इसका बहुत बड़ा कारण यह था कि उस समय विवेचना भी गद्य में नहीं पद्य में की जाती थी। पद्य का माध्यम विश्लेषण विवेचना के लिए अनुपयुक्त होता है।... इस काल में व्यावहारिक आलोचना का जो रूप मिलता है वह गुण - दोष-कथन करने वाली उक्तियों के रूप में है जैसे -

> सतसईया के दोहरे ज्यों नावक के तीर / देखन में छोटे लगे घाव करे गम्भीर /
> सूर-सूर तुलसी ससि उडुगन केशवदास / अब के कवि खद्योत सम जहँ तहँ करत प्रकास।

तात्पर्य यह है कि इस काल की जो रीतिबद्धता काव्य के क्षेत्र में दिखाई पड़ती है वही आलोचना के क्षेत्र में भी। जो एकांगिता और संकीर्णता काव्य में दिखाई पड़ती है, वही काव्यशास्त्रीय विवेचना में भी।"[85]

"भारतेन्दु युग में आलोचना का आरंभ पुस्तक-समीक्षा के रूप में हुआ।"[86] 'हिन्दी प्रदीप', 'आनंदकादम्बिनी' और 'ब्राह्मण', जिनके सम्पादक क्रमशः बालकृष्ण भट्ट, 'प्रेमघन' और पं॰ प्रतापनारायण मिश्र थे, भारतेन्दु युग के प्रमुख साहित्यिक पत्र थे, जिनमें पुस्तक समीक्षाएँ निकला करती थी।"[87] एक ओर पुस्तक समीक्षाओं के रूप में हमें व्यावहारिक आलोचना का आरंभ देखने को मिलता है तो दूसरी ओर "भारतेन्दु के निबंध 'नाटक' (1883 ई॰) से हिन्दी में सैद्धांतिक आलोचना का सूत्रपात होता है।"[88] द्विवेदी युग में आलोचना विधा का विकास कुछ दूसरे रूप में होता है। एक ओर तो तुलनात्मक आलोचना में जहाँ व्यक्तिगत गुण - दोष के निरूपण पर जोर है ('मिश्रबंधु' कृष्ण बिहारी मिश्र, पद्मसिंह शर्मा, लाला भगवानदीन) तो दूसरी ओर निबंधों में कविता और साहित्य की सैद्धांतिकी निर्मित होती दिखलाई देती है।

"पंडित बालकृष्ण भट्ट ने 'सच्ची कविता' अक्टूबर 1886 ई॰ शीर्षक से हिन्दी प्रदीप में एक निबंध लिखा था। इस निबंध में उन्होंने कविता का

---

85 वही, पृ॰ सं॰-16

86 नन्दकिशोर नवल - हिन्दी आलोचना का विकास, राजकमल प्रकाशन, 2000 ई॰, पृ॰सं॰-26

87 वही, पृ॰ सं॰-28

88 रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999 ई॰, पृ॰सं॰-90

स्वच्छंदतावादी दर्शन प्रस्तुत किया है।"[89] आगे चलकर स्वयं द्विवेदी जी ने "कवि और कविता (1907) 'कवि बनने के लिए सापेक्ष साधन'"[90] तथा 'कवि कर्त्तव्य' (1900 ई॰) नाम से निबंध लिखा। 'कवि कर्त्तव्य' नामक अपने निबंध में द्विवेदी जी लिखते हैं : "यमुना के किनारे केलि - कौतूहल का अद्‌भुत - अद्‌भुत वर्णन बहुत हो चुका। न परकीयाओं पर प्रबंध लिखने की अब कोई आवश्यकता है और न स्वकीयाओं के 'गतागत' की पहेली बुझाने की।"[91]

"द्विवेदी जी हिन्दी में नायिका-भेद और रीति निरूपणवाली परम्परा को ध्वस्त कर किस नयी परंपरा का आरंभ करना चाहते थे, यह उन्होंने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में अपने सन् 1903 ई॰ में लिखित 'हिन्दी भाषा और उसका साहित्य' शीर्षक निबंध में बतलाया है: "नायिका भेद और रस तथा अलंकार के विवेचन से पूरित पुस्तकों की भी इस समय आवश्यकता नहीं। हम यह समझते हें कि 'जसवंत-जसो-भूषण' जैसे ग्रंथों से भाषा को कुछ भी लाभ नहीं पहुंचा। यदि इन ग्रंथों के बनाने (अथवा बनवाने) और छापने में जो धन व्यय किया गया वह जीवन-चरित्र, इतिहास अथवा किसी वैज्ञानिक ग्रंथ के लिए व्यय किया जाता तो भाषा का भी उपकार होता और धन का भी सदव्यय होता।"[92] द्विवेदी जी खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में स्थापित करने का ईमानदार प्रयत्न कर रहे थे। "कविता में खड़ी बोली के प्रयोग का संबंध द्विवेदी जी की इच्छा से नहीं था। इसका निश्चित ऐतिहासिक आधार था, जिसके बल पर ही उन्होंने कहा था: 'यह निश्चित है कि किसी समय बोलचाल की हिन्दी भाषा ब्रजभाषा की कविता के स्थान को अवश्य छीन लेगी।"[93] "सरस्वती संपादक ने जातीय विकास को ध्यान में रखते हुए बड़ी दूरदर्शिता की बात कही थी कि प्रारम्भिक पाठ्य पुस्तकों में खड़ी बोली की कविता ही रखी जाय।"[94]

सच्ची कविता, (बालकृष्ण भट्ट 1886 ई॰) 'कवि कर्त्तव्य: महावीर प्रसार द्विवेदी (1900 ई॰), 'कविता क्या है?' बालकृष्ण भट्ट ने : बालमुकुंद गुप्त (1903 ई॰-बालबोध जिल्द-22, अंक 5), 'कवि और कविता'-महावीर प्रसाद द्विवेदी (1907 ई॰ सरस्वती), 'कविता क्या है?' (मर्यादा 1910, दिसंबर पृ॰ 66-67 व क्रमश:)और, राधाचरण गोस्वामी ने 'कवि-कल्पना' चतुर्भुज औदिच्य ने 'कवित्व' शीर्षक से

---

89 नन्दकिशोर नवल - हिन्दी आलोचना का विकास, राजकमल प्रकाशन, 2000 ई॰, पृ॰सं॰-22

90 रामचंद तिवारी - हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1999 ई॰ पृ॰सं॰-59

91 नन्दकिशोर नवल - हिन्दी आलोचना का विकास, राजकमल प्रकाशन, 2000 ई॰, पृ॰सं॰-44

92 वही, पृ॰सं॰-40

93 नन्दकिशोर नवल - हिन्दी आलोचना का विकास, राजकमल प्रकाशन, 2000 ई॰, पृ॰सं॰-43

94 रामविलास शर्मा-महावीर प्रसाद द्विवेदी ओर हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, 1989 ई॰ द्वितीय संस्करण, पृ॰ सं॰-227

(सरस्वती, 1907) गंगाप्रसाद अग्निहोत्री और मैथिलीशरण गुत ने 'हिन्दी कविता किसी ढंग की हो?' (पंचम हिन्दी साहित्य सम्मेलन की कार्यवाही की रिपोर्ट भाग-2, सन् 1914) तथा कामताप्रसाद गुरू ने 'आधुनिक हिन्दी कविता' शीर्षक से निबंध लिखकर कविता पर अपने विचार प्रकट किए।"[95]

"बीसवीं शताब्दी के शुरूआती दौर में कविता और उसकी वस्तु-संवेदना को लेकर इतनी अधिक मीमांसा का मूल कारण था साहित्यिक नवजागरण का दबाव।"[96] हर रचनाकार-आलोचक की कवि और काव्य विषयक अपनी मान्यताएँ थी और उस दौर में किसी एक कवि या उसके काव्य को श्रेष्ठ साबित करने का संस्कार भी आकार ग्रहण कर रहा था। तो जो मूल प्रश्न थे जैसे - "आपके काव्यकर्म की कसौटी क्या है? कविता को पहचानने वाला आपका काव्य-प्रतिमान - पोयटिक कैनन क्या है?"[97] इन निबंधों में इन सवालों के पड़ताल की कोशिश अपने-अपने स्तर से इन रचनाकार- आलोचकों ने की है।

"शुक्लजी अपने इस लेख 'कविता क्या है?' को बार-बार परिवर्तित परिवर्धित करते रहे थे सन् 1909 से 1939 तक।"[98] क्यों? क्योंकि आचार्य शुक्ल इन परिवर्तनों-परिवर्धनों द्वारा राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में बदलते समय के साथ सतर्कतापूर्वक जुड़ने का तो प्रयास कर ही रहे थे, साथ ही अपने प्रथम लेख के बाद अन्य लेखकों द्वारा दी गई चुनौतियों के उत्तर भी देना चाह रहे थे।"[99] कविता के स्वरूपगत भिन्न-भिन्न पहलुओं पर इन निबंधों में चर्चा हुई जिससे काव्य की सैद्धांतिकी निर्मित हुई। इस दौर में सिर्फ कविता क्या है? को लेकर विचार-विमर्श नहीं हुए बल्कि साहित्य को भी परिभाषित करने का प्रयत्न किया गया। जैसे काव्य विषयक चिंतन और चेतना भारतेन्दु काल से लगातार विकसित होती रही वैसे ही साहित्य संबंधी चिंतन और चेतना भी युगानुकूल संदर्भों के साथ बदलती रही।

जुलाई 1881 के हिन्दी प्रदीप में बालकृष्ण भट्ट ने एक लेख लिखा जिसका शीर्षक था - "साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है।" बालकृष्ण भट्ट के इस निबंध में "जन-समूह" का प्रयोग "जाति" के अर्थ में हुआ है। उन्होंने लिखा है कि "साहित्य को यदि जन-समूह (नेशन) के चित्र का चित्रपट कहा जाय तो संगत है।"

---

95 भवदेव पाण्डेय - आचार्य रामचंद्र शुक्ल आलोचना के नए मानदंड, राजकमल प्रकाशन, 2003 ई॰, पृ॰सं॰-93

96 वही, पृ॰सं॰-95

97 पुरूषोत्तम अग्रवाल - विचार का अनंत, राजकमल पेपरबैक्स 2000 ई॰ पृ॰सं॰-140

98 भवदेव पाण्डेय - आचार्य रामचंद्र शुक्ल आलोचना के नए मानदंड, राजकमल प्रकाशन, 2003 ई॰, पृ॰सं॰-95

99 वही, पृ॰ सं॰-96

इससे यह जाहिर होता है कि साहित्य की इस नयी दृष्टि के विकास के साथ जातीय साहित्य की धारणा भी विकसित हुई है।"[100]

"उन्नीसवीं सदी के अंत में साहित्य की सामाजिक दृष्टि और साहित्य की धारणा का जो रूप बालकृष्ण भट्ट के निबंध में सामने आया उसका विकास बीसवीं सदी में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया। बालकृष्ण भट्ट ने साहित्य के भावात्मक पक्ष को महत्व दिया था, महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उसके ज्ञानात्मक पक्ष पर जोर दिया। उन्होंने लिखा कि "ज्ञान-राशि के संचित कोश ही का नाम साहित्य है।" साहित्य की यह धारणा समाज से साहित्य की अधिक व्यापक संबंध की ओर संकेत करती है।"[101]

बालकृष्ण भट्ट और महावीर प्रसाद द्विवेदी के चिंतन का अधिक सुचिंतित और सुसंगत विकास आचार्य शुक्ल के चिंतन में मिलता है। अपने इतिहास ग्रंथ में उन्होंने लिखा है "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य-परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखलाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।"[102] तो इस प्रकार हम देखते हैं कि सिर्फ काव्य और साहित्य की धारणाओं का ही विकास नहीं बल्कि कई अन्य प्रवृत्तियाँ भी जिनका आरंभ भारतेन्दु काल में हुआ था, द्विवेदी काल में विकास की अवस्था से गुजरते हुए छायावाद के दौर में एक आकार ग्रहण करती है।

बालकृष्ण भट्ट ने जिस 'स्वतंत्र वाणिज्य' (Free trade) की आलोचना लगातार अपने लेखों में की थी, उसकी अगली कड़ी के रूप मे महावीर प्रसाद द्विवेदी का 'संपत्तिशास्त्र' (1908 ई०) हमारे सामने आता है और प्रेमचंद भी 'महाजनी सभ्यता' लिखकर इसी प्रवृत्ति का विस्तार करते हैं। भारतेन्दु युग में जिस 'स्वत्व' की बात की गई थी, द्विवेदी युग का' हम कौन थे, क्या हो गये और क्या होंगे अभी।' उसी 'अस्मिता बोध' के प्रखर होने की सूचना देता है और इसका विकास छायावाद की राष्ट्र और राष्ट्रीयता संबंधी अवधारणा में देखने को मिलता है। राष्ट्र और राष्ट्रीयता संबंधी चिंतन छायावादी काव्य तक सिमट कर नहीं रह जाता

---

100 मैनेजर पाण्डेय- साहित्य के समाशास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2001 ई० (द्वितीय संस्करण), पृ०सं०-57

101 मैनेजर पाण्डेय- साहित्य के समाशास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2001 ई० (द्वितीय संस्करण), पृ०सं०-58

102 रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संशोधित एवं परिवर्धित तेईसवाँ संस्करण 1990 ई०, पृ०सं०-4

बल्कि नाटक, आलोचना तथा निबंधों में भी देखने को मिलता है। आचार्य शुक्ल 'लोभ और प्रीति' नामक निबंध में कहते है "यदि किसी को अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, गुल्म, पेड़, पत्ते, कण, पर्वत, नदी, निर्भर सबसे प्रेम होगा; सबको वह चाह भरी दृष्टि से देखेगा, सबकी सुध करके विदेश में आँसू बहाएगा। जो यह भी नहीं जानते कि कोयल किस चिड़िया का नाम है... वे यदि दस बने-ठने मित्रों के बीच प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी का परता बताकर देश-प्रेम का दावा करें, तो उनसे पूछना चाहिए कि भाइयों बिना परिचय का यह प्रेम कैसा?"[103]

बात हमने आलोचना के उदय काल से आरंभ की थी, और भारतेन्दु युग तथा द्विवेदी युग में निबंधों के माध्यम से सैद्धांतिक और व्यावहारिक आलोचना का जो रूप विकसित हो रहा था, उसकी चर्चा करने लगे। पुनः आलोचना पर लौटते हुए इतना कहना आवश्यक जान पड़ता है कि भारतेन्दु और द्विवेदी युग में आलोचना पुस्तक समीक्षा और व्यक्तिगत गुण दोष विवेचन से बहुत आगे नहीं बढ़ पायी थी। भारतेन्दु और द्विवेदी के बीच की कड़ी के रूप में श्यामसुन्दर दास को देखा जा सकता है। इनके प्रयत्नों से 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का प्रकाशन आरंभ (1896 ई॰) हुआ। "इसके पहले अंक में निम्नलिखित आठ लेख प्रकाशित हुए:

1. केतु तारों का संक्षिप्त वृतान्त (गोपालप्रसाद खत्री)
2. समालोचना (पं॰ गंगाप्रसाद अनिहोत्री)
3. यूरोप के लोगों में संस्कृत का प्रचार (राय बहादुर लक्ष्मी शंकर मिश्र, एम॰ए॰)
4. भारतवर्षीय आर्य देश भाषाओं का प्रादेशिक विभाग और परस्पर सम्बन्ध (श्यामसुन्दर दास, बी॰ए॰)
5. अद्‌भुत रश्मि (पं॰ लोकनाथ त्रिपाठी बी॰ए॰, बाबू कृष्णबलदेव वर्मा)
6. समालोचनादर्श (बा॰ जगन्नाथदास 'रत्नाकर' बी॰ए॰)
7. पोप कवि का जीवन-चरित्र (बा॰ जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' बी॰ए॰)
8. गद्य काव्य मीमांसा (पं॰ अम्बिकादत्त व्यास साहित्याचार्य)

हिन्दी में सही अर्थों में आधुनिक समालोचना का आरंभ इन्हीं लेखों से होता है।"[104] आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ में, 'गद्य साहित्य का प्रसार: द्वितीय उत्थान (सं॰ 1950 (1893)-सं॰ 1975 (1918) में, कहा है "किसी कवि या

---

103 रामचन्द्र शुक्ल - चिंतामणि भाग-1, हिन्दी साहित्य सरोवर, आगरा, 2002 ई॰, पृ॰सं॰-49-50

104 सुधाकर पाण्डेय-भारतीय साहित्य के निर्माता: श्यामसुन्दरदास, साहित्य अकादमी, 1982 ई॰ पृ॰सं॰-46-47

पुस्तक के गुण दोष या सूक्ष्म विशेषताएँ दिखाने के लिए एक दूसरी पुस्तक तैयार करने की चाल हमारे यहाँ न थी।"[105] तृतीय उत्थान: सं० 1975 से (1918 ई० में) आचार्य शुक्ल के अनुसार "समालोचना का आदर्श भी बदला। गुण दोष के कथन से आगे बढ़कर कवियों की विशेषताओं और उनकी अंत: प्रवृति की छानबीन की ओर भी ध्यान दिया गया।"[106]

"जाहिर है कि यह जो तृतीय उत्थान में गुण-दोष के कथन से आगे बढ़कर कवियों की विशेषताओं और उनकी अंत: प्रवृति की छानबीन की ओर भी ध्यान दिया गया वह समूचे भारतीय साहित्यशास्त्र का आधुनिकीकरण था। यह कार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल की समीक्षा द्वारा हुआ।"[107] आचार्य शुक्ल के संपूर्ण आलोचना कर्म पर दृष्टि डालें तो उपर्युक्त बात की पुष्टि हो जाती है। सामंतवाद, साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, रहस्यवाद और रूपवाद का सुचिंतित और सुसंगत विरोध उनकी ऐतिहासिक इतिहास दृष्टि का परिचायक है। भक्ति काल और रीतिकाल के मूल्यांकन में उनकी सामंतवाद विरोधी चेतना का परिचय मिलता है। "आधुनिक काल के इतिहास लेखन में उनका सामंतवाद विरोधी और साम्राज्यवाद विरोधी दृष्टिकोण बार-बार प्रकट हुआ है। भारतेन्दु, मैथिलीशरणगुप्त और प्रेमचंद के साहित्य के मूल्यांकन में शुक्लजी का साम्राज्यवाद विरोधी दृष्टिकोण दिखाई देता है।"[108] "आचार्य शुक्ल हिन्दी साहित्य को अपने समय के समाज और स्वाधीनता आंदोलन से जुड़कर विकसित होते देखना चाहते थे। रहस्यवाद हिन्दी साहित्य के ऐसे विकास में बाधक था।"[109] "रहस्यवाद और आधुनिकता का विरोध करते हुए उन्होंने साहित्य में अबुद्धिवाद और जीवन के यथार्थ से भागकर कल्पना लोक में विचरण की प्रवृति का भी विरोध किया है।"[110] "रहस्यवादी कविता में रसोद्रेक की क्षमता नहीं होती, क्योंकि उसमें व्यक्त भावों का आधार वास्तविक नहीं होता।"[111] आचार्य शुक्ल ने रस अलौकिक है कि धारणा का खंडन करते हुए रस के लौकिक पक्ष की चर्चा की। अपने ऐतिहासिक दृष्टि और आलोचनात्मक विवेक के आधार पर उन्होंने न सिर्फ हिन्दी साहित्य का 'पक्का और व्यवस्थित ढाँचा' निर्मित किया बल्कि "हिन्दी की

---

105 रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण तेईसवाँ संस्करण 1990ई०, पृ०सं०-287

106 वही, पृ०सं०-305

107 विश्वनाथ त्रिपाठी - हिन्दी आलोचना, राजकमल पेपरबैक्स, 2000 ई०, पृ०सं०-49

108 मैनेजर पाण्डेय- साहित्य और इतिहास दृष्टि, अरूणोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1992 ई० पृ०सं०-107

109 वही, पृ०सं०-118

110 वही, पृ०सं०-117

111 नन्दकिशोर नवल - हिन्दी आलोचना का विकास, राजकमल प्रकाशन, 2000 ई०, पृ०सं०-120

सैद्धांतिक अलोचना को एक ठोस दार्शनिक आधार भी दिया।"[112] इस प्रकार 1930-36 ई॰ के आसपास हिन्दी साहित्य की प्रत्येक विधा नवीन भाव बोध और युग बोध को धारण कर उसके विस्तार में सक्षम-समर्थ हो जाती है।

"हिन्दी में 1932 के बाद जो बहुत बड़ा परिवर्तन आया गोलमेज सम्मेलन और सविनय अवज्ञा आंदोलन वगैरह के बाद - उसको देखिये। उस समय हिन्दी लेखक ने सोचना शुरू कर दिया था कि कांग्रेस किधर जा रही है? 1933 की जनवरी में निराला ने 'देवी' और 'चतुरी चमार' लिखी। उनकी शैली मे फर्क है, उनके दृष्टिकोण में फर्क है। पहले की 'अप्सरा' देखिये और इनको देखिये। प्रेमचंद की 'गबन' और 'गोदान' 1930 के बाद की रचनाएँ हैं। इनके साथ 1930 के पहले के 'रंगभूमि' और 'प्रेमाश्रम' को रखकर देखिये। जयशंकर प्रसाद ने 1933 के आसपास 'तितली' लिखी। उसमें और 1930 के पहले के उनके 'कंकाल' में फर्क देख लीजिए तो जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद और निराला - ये तीन हमारे बहुत बड़े लेखक हैं, और ये आपको बता रहे हैं कि अब यथार्थवाद की दिशा में हमारा विकास हो रहा है।"[113]

वस्तुत: हिन्दी साहित्य के इतिहास में 1936 ई॰ अत्यन्त ही महत्वपूर्ण सीमा रेखा मानी जा सकती है। यह वर्ष हिन्दी साहित्य के इतिहास में कई उपलब्धियाँ जोड़ता है, साथ ही नयी भूमिका के निर्वाह का दायित्व भी स्वीकारता है। सुमित्रानन्दन पंत 'युगान्त' (1936 ई॰) की घोषणा करते हैं। प्रसाद कामायनी की रचना (1936 ई॰) करते हैं। निराला तुलसीदास (1934), सरोज-स्मृति (1935) के बाद न सिर्फ 'राम की शक्तिपूजा' (1936) लिखते हैं बल्कि गीतों की एक पुस्तक 'गीतिका' भी लिखते हैं। प्रेमचंद 'कफन' के साथ-साथ 'गोदान' जैसा कालजयी उपन्यास भी इसी वर्ष लिखते हैं। इतना ही नहीं 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना का वर्ष भी यही है। 'साहित्य का उद्देश्य' नामक प्रसिद्ध निबंध इसी वर्ष 'प्रगतिशील लेखक संघ' के अध्यक्ष पद से प्रेमचंद द्वारा दिया गया भाषण है। अब तक जो साहित्य और काव्य की परिभाषाएँ दी जा रही थीं, उनका स्वरूप व्यवस्थित किया जा रहा था। उनसे आगे बढ़कर अब साहित्य के उद्देश्य की चर्चा की जाने लगी। निश्चित रूप से यह एक युग का अंत (युगांत) था।

---

112 रामविलास शर्मा-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, राजकमल पेपरबैक्स, 2000 ई॰, पृ॰सं॰-12 (तीसरे संस्करण की भूमिका से)

113 कर्ण सिंह चौहान (संपादक) - साक्षात्कार डॉ॰ रामविलास शर्मा से बातचीत, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1986 ई॰, पृ॰सं॰-43

प्रेमचंद ने 'प्रलेस' के अध्यक्ष पद से जो कुछ भी कहा उससे उपर्युक्त बातों की पुष्टि होती है। प्रेमचंद ने कहा "अब हमारी भाषा ने वह रूप प्राप्त कर लिया है कि हम भाषा से आगे बढ़कर भाव की ओर ध्यान दें और इस पर विचार करें कि जिस उद्देश्य से यह निर्माण कार्य आरंभ किया गया था, वह क्योंकर पूरा हो। वही भाषा जिसमें आरंभ में 'बागो-बहार' और 'बैताल-पचीसी' की रचना ही सबसे बड़ी साहित्य - सेवा थी, अब इस योग्य हो गई है कि उसमें शास्त्र और विज्ञान के प्रश्नों की भी विवेचना की जा सके।"[114] साहित्य की जो परिभाषाएँ दी गई थी, प्रेमचंद को मैथ्यू आर्नल्ड की दी हुई परिभाषा सर्वोत्तम लगी थी, साहित्य जीवन की आलोचना है।

प्रेमचंद अन्य चीजों की तरह कला को भी उपयोगिता की तुला पर तौलने की बात कर रहे थे। इसके लिए उनका जोर सुदंरता की कसौटी बदलने पर था। यह महज संयोग नहीं था कि प्रेमचंद कह रहे थे "आजमाये को आजमाना मूर्खता है।"[115] स्वयं कवि निराला भी राम की शक्तिपूजा में इसी समय जाम्बवान के मुख से पुरूषोत्तम को कहलवा रहे थे 'शक्ति की करो मौलिक कल्पना।' क्योंकि यह उस स्वाधीनता आंदोलन वाले दौर की, एक ऐतिहासिक आवश्यकता थी। साहित्यकार को इस भूमिका में खरा उतरना था। तभी "साहित्य देश-भक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सचाई नहीं बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सचाई"[116] हो सकती थी। कहना न होगा कि प्रेमचंद ने साहित्य और साहित्यकार का एक युगानुकूल (मॉडल) आदर्श पेश करने के साथ उसकी दशा और दिशा की ओर भी संकेत करते हुए कहा कि "हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सचाइयों का प्रकाश हो-जो हममें गति और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं; क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।"[117]

इस तरह हम देखते हैं कि भारतेन्दु युग में आधुनिकता का उदय होता है और 1936 तक आते-आते वह एक निश्चित आकार ग्रहण कर लेती है। आधुनिकता का स्वरूप युगीन परिस्थितियों, अंतर्द्वन्द्वों और अंतर्विराधों से प्रभावित होता हुआ और उनको प्रभावित करता हुआ विकसित होता है। हिन्दी साहित्य में आधुनिकता की सैद्धांतिकी का जो रूप 1936 तक विकसित हुआ था उसकी प्रमुख विशेषताओं के रूप में हम; सामंतवाद-साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का विरोध, इतिहास और

---

114 प्रेमचंद-कुछ विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2003 ई०, पृ०सं०-5

115 वही पृ०सं०-17

116 प्रेमचंद-कुछ विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2003 ई०, पृ०सं०-20

117 वही, पृ०सं०-25

साहित्य का नया मूल्यांकन करते हुए ऐतिहासिक दृष्टि की प्रतिष्ठा, परंपरा का युगानुकूल संदर्भ में व्याख्या, जातीय शिक्षा पर जोर, स्वत्व गठन का गंभीर प्रयत्न, देशी भाषा में चिंतन की प्रकृति को बढ़ावा (मौलिक चिंतन और अनुवाद दोनों माध्यमों से), हिन्दी का जातीय और राष्ट्रीय भाषा के रूप में विकास, आधुनिकता की मूलभूत परियोजनाओं से यथार्थ बोध का विकास, यथार्थ बोध से विषमता का बोध और परिणति सचेत परिवर्तनेच्छा में, मध्ययुगीन आस्था-श्रद्धा-विश्वास के स्थान पर विवेक बुद्धि-तर्कशीलता की स्थापना, परलोक संवारने की जगह इहलोक की चिंता, सामूहिक मुक्ति की अवधारणा, रूढ़िवाद का विरोध, स्त्रियों दलितों में चेतना का विकास तथा उनके प्रति सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव, राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रवाद की भावना का उदय, शिक्षित मध्यवर्ग का विकास, आधुनिकता के बरक्स परंपरा को प्रतिमान के रूप में स्थापित करने का प्रयत्न, नए साहित्यिक रूपों का विकास और उसके अंतर्गत रूप विधान और शिल्पगत विकास आदि को पाते हैं।

2. हिन्दी साहित्य में 1936 के बाद आधुनिकता की दशा और दिशा

1936 तक हिन्दी साहित्य का जो स्वरूप उभर कर सामने आता है, उसमें आधुनिकता की जो अपनी सैद्धांतिकी बनती-सी दीखती है, उसका अनिवार्य संदर्भ औपनिवेशिक नीतियाँ और उसके प्रति राष्ट्रीय आंदोलन का रूख रहा है। इन दोनों से प्रभावित होते हुए और इन्हें प्रभावित करते हुए हिन्दी साहित्य की आधुनिकता ने रूप ग्रहण किया था। लेकिन 1936 के बाद औपनिवेशिक शासन और उसकी समाप्ति के बाद हिन्दी साहित्य में पश्चिमी विचारधाराओं को अपना लेने की प्रवत्ति बढ़ जाती है। प्रगतिवादी कविता (1936-1943) मार्क्सवादी विचारधारा का आधार ग्रहण करती है। प्रयोगवादी कविता (1936-50) फ्रायड, एडलर, युंग के मनोविश्लेषणवाद से प्रभाव ग्रहण करती है और 1952-53 से आरंभ होने वाली नयी कविता में मार्टिन हाइडेगर, कार्ल यास्पर्स और सार्त्र के प्रभाव दृष्टिगत होते हैं।

इस तरह देखने से हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का पहला चरण 1936 तक पूरा हो जाता है। छायावादी काव्य के सामानान्तर यथार्थवाद की एक धारा विकसित हो रही थी। "दूसरे महायुद्ध के दौरान और उसके बाद, स्वाधीनता आंदोलन के नये उत्थान के समय, यथार्थवाद की धारा विशेष रूप से पुष्ट हुई। यह धारा मोटे तौर पर कम्युनिस्ट पार्टी की रणनीति के अनुरूप थी।

दूसरा महायुद्ध समाप्त होते ही अमरीका और ब्रिटेन ने विश्व पैमाने पर एक विराट कम्युनिस्ट विरोधी अभियान छेड़ दिया था। इसमें भारत के अनेक कांग्रेसी और सोशलिस्ट नेता भी शामिल हुए। इस परिस्थिति में व्यक्ति की कुंठा और घुटन को मुख्य विषय मानकर, यथार्थवाद के विरोध में, प्रयोगवादी कविता का प्रसार हुआ।

प्रयोगवाद का सहारा लेकर, फिर खुद को उससे अलगाते हुए, सन् 53 के बाद जिस नयी कविता का प्रसार हुआ, उसके संगठनकर्ता लेखक कुछ सोशलिस्ट नेताओं से संबद्ध थे। साहित्य में ये कम्युनिस्ट विरोधी विचारधारा का प्रसार कर रहे थे; इस तरह की विचारधारा के प्रसार के मुख्य केन्द्र अमरीका में थे। इनके प्रभाव से नयी कविता की धारा स्वाधीनता आंदोलन की विरासत को, और छायावाद के साथ प्रगतिशील कविता की उपलब्धियों को नकारते हुए आगे बढ़ी।"[118]

इस तरह 1936 के बाद प्रगतिवादी कविता, प्रयोगवादी कविता, नयी कविता, साठोत्तरी कविता, जनवादी कविता, अकविता, समकालीन कविता और अन्य किसिम-किसिम की कविताओं का जो दौर रहा, उसमें आधुनिकता की जो स्वरूप और संरचना उभर कर सामने आयी, उसकी चरित्र और विशेषताएँ 1936 तक विकसित हिन्दी साहित्य की आधुनिकता से बिल्कुल भिन्न थी। इस पहले चरण की आधुनिकता को परवर्ती चरणों से नहीं अलगा पाने की स्थिति में आधुनिकता की एक भ्रामक समझ हिन्दी साहित्य में विकसित हुई।

'आधुनिकता' पर हिन्दी साहित्य में बातचीत हिन्दी साहित्येतिहास लेखन के क्रम में आरंभ हुई थी। आचार्य शुक्ल का इतिहासग्रंथ (1929 ई०) हो या हजारीप्रसाद द्विवेजी का (1940 ई०), इनके यहाँ आधुनिकता औपनिवेशिक काल के राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान उपजी थी। जिसका मोटे तौर पर संबंध इन्होंने गद्य के आविर्भाव, प्रेस, यातायात के समुन्नत साधन, शांतिपूर्ण व्यवस्था और सचेत परिवर्तनेच्छा से जोड़ा था। इन कारकों की उपलब्धता 19वीं शती में देखकर कहा गया कि उन्नीसवीं शती में हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल का आरंभ होता है। सौ वर्ष के कालखंड में ये सारे कारक अपने सामान्य अर्थों में प्रयुक्त हुए जबकि आधुनिकता के साथ इनका विशिष्ट संबंध था। मसलन गद्य का आविर्भाव मात्र, आधुनिकता और उसके संबंधों की सही व्याख्या नहीं प्रस्तुत करता है। गद्य के आविर्भाव के साथ उसके द्वारा निभायी जाने वाली भूमिका का प्रश्न जुड़ा हुआ था कि गद्य 'सचेत परिवर्तनेच्छा' की मानसिकता निर्मित करने वाली भूमिका कब से निभाता है। गद्य की कई विधायें उन्नीसवीं शती के बाद विकसित हुई।

प्रेस ने साहित्य को प्रजातांत्रिक स्वरूप प्रदान किया और यातायात के साधनों ने इसके प्रचार-प्रसार की भूमिका निभायी। किनके बीच? मध्यवर्ग में हमने देखा कि भारतीय मध्यवर्ग, जिसका हिन्दी साहित्य की आधुनिकता से संबंध है, लगभग 150 वर्षो में विकसित होता है, उसमें भी आधुनिकता मध्यवर्ग के साथ जीवन-पद्धति

---

118 रामविलास शर्मा-नयी कविता और अस्तित्ववाद, राजकमल प्रकाशन, 1989 ई०, द्वितिय संस्करण की भूमिका से,

(Life Style) के रूप में जुड़ती है और साहित्य में आधुनिकता 'शिक्षित मध्यवर्ग' के साथ जुड़ती है। मतलब आधुनिकता स्थूल रूप से मध्यवर्ग से जुड़ती है लेकिन सही अर्थ में उसका संबंध (हिन्दी साहित्य में) 'शिक्षित मध्यवर्ग' से है।

"साहित्य के रूपों का विकास समाज के विकास से जुड़ा हुआ होता है, इसीलिए साहित्य रूपों की संरचना का उस सामाजिक संरचना से गहरा संबंध होता है, जिसमें साहित्य के रूप पैदा होते हैं। प्रत्येक साहित्य-रूप का एक विचारधारामक आधार भी होता है, जो सामाजिक-विकास की विशेष अवस्था में व्याप्त विचारधारा से प्रेरित और प्रभावित होता है। महाकाव्य का जन्म सामंती दौर से पहले के जनपदीय समाजों में हुआ था और उसका विकास सामंती समाजों में होता रहा।... महाकाव्य एक स्तर पर अपने समय और समाज के मनुष्य की स्थिति और नियति की पहचान और अभिव्यक्ति के प्रयत्न करते थे। आधुनिक काल में यह काम उपन्यास के माध्यम से होने लगा, इसीलिए उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य भी कहा जाता है।"[119] आधुनिक युग के पहले हिन्दी साहित्य में न तो उपन्यास, आलोचना, निबंध जैसी गद्य की विधायें थी और न खड़ी बोली हिन्दी, विमर्श की भाषा बनी थी। गद्य की इन विधाओं और खड़ी बोली हिन्दी का आगमन हिन्दी में एक साथ होता है। गद्य और खड़ी बोली हिन्दी साहित्य में सहवर्ती स्थितियाँ रही हैं इसलिए इनके संदर्भ में जब आधुनिकता की बात की जाती है तो भाषा का प्रश्न नहीं आता है लेकिन "सामान्य रूप से हिन्दी साहित्य में और विशेष रूप से हिन्दी कविता के संदर्भ में आधुनिकता की बात करते समय भाषा का प्रश्न सामने आता है। कविता के प्रसंग में खड़ी बोली में लिखी गयी कविता ही आधुनिक कविता मानी जाती है।"[120] गद्य की तुलना में हिन्दी पद्य में आधुनिकता की यह एक अतिरिक्त शर्त है।

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता की अपनी सैद्धांतिकी पर ठोस एवं मौलिक चिंतन भले न आया हो लेकिन आचार्य शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी के लेखन में जो सूत्र मिलते हैं, उसके विस्तार एवं व्याख्या का प्रयत्न, अपनी सीमाओं के बावजूद, रामविलास जी के लेखन में देखने को मिलता है। आचार्य शुक्ल के परवर्ती हिन्दी साहित्येतिहास लेखकों में द्विवेदीजी को छोड़कर दो नाम सामने आते हैं। पहला रामस्वरूप चतुर्वेदी (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, 1986 ई॰) तथा दूसरा बच्चन सिंह (हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, 1996 ई॰)। रामस्वरूप चतुर्वेदी के यहाँ अज्ञेय सिर्फ आधुनिकता की ही धुरी नहीं हैं, बल्कि उन्होंने "अज्ञेय की साहित्य

---

119 मैनेजर पाण्डेय-आलोचना की समाजिकता, वाणी प्रकाशन, 2005 (प्रथम संस्करण), पृ॰सं॰237

120 वही, पृ॰सं॰-227

दृष्टि से साहित्य का इतिहास लिखा है।"[121] बच्चन सिंह का इतिहास किसी दृष्टि से नहीं लिखा गया इसलिए इसमें आधुनिकता के संबंध में कोई उल्लेखनीय बात नहीं मिलती। आधुनिकता की अपनी सैद्धांतिकी का अभाव परवर्ती इतिहासलेखन की असफलता और सीमाओं को प्रकट करता है।

हिन्दी साहित्य में 'आधुनिकता' के नाम पर जो बहस आरंभ हुई वह मूलत: 'आधिुनिकतावादी आधुनिकता' पर केन्द्रित थी। यह 'आधुनिकता का दूसरा चरण था। जिसका आरंभ मूलत: प्रयोगवादी कविता से माना जाता है। आधुनिकता अपने पहले चरण में जहाँ भारतीय संदर्भों में विकसित हुई थी, वहीं दूसरे चरण में यह आयातित चिन्तन पर केन्द्रित हो गई। यह आधुनिकतावादी आधुनिकता संबंधी बहस छठे दशक में आरंभ होती है। आरंभिक दौर में बहसें 'कल्पना', 'ज्ञानोदय', 'कादम्बिनी', 'धर्मयुग' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई, फिर इन लेखों को आधुनिकता वाले शीर्षक के साथ संपादित कर पुस्तक का रूप दे दिया गया। मतलब 'आधुनिकता' के नाम पर खंडित दृष्टियों का एक 'कोलाज' परोस दिया गया। सातवें दशक के अंत से आधुनिकता पर केन्द्रित पुस्तकों के प्रकाशन में तेजी आयी। रमेश कुन्तल मेघ (आधुनिकता-बोध और आधुनिकीकरण, 1969 ई०), विपिन कुमार अग्रवाल (आधुनिकता के पहलू, 1972) इन्द्रनाथ मदान (आधुनिकता और हिन्दी आलोचना, 1975 ई०), गंगा प्रसाद विमल (आधुनिकता साहित्य के संदर्भ में, 1979 ई०), रघुवंश (आधुनिकता और सर्जनशीलता, 1980 ई०), नरेन्द्र मोहन (आधुनिकता के संदर्भ में हिन्दी कहानी, 1982 ई०) (आधुनिकता के बारे में तीन अध्याय, 1984 ई०, आधुनिकता के प्रतिरूप, 1986 ई०), अमृतराय (आधुनिक भावबोध की संज्ञा, 1989 ई०) रामधारी सिंह 'दिनकर' (आधुनिक बोध, 1989 ई०) आदि।

इन पुस्तकों में रमेश कुन्तल मेघ, धनंजय वर्मा और रघुवंश की पुस्तकें उल्लेखनीय हैं, जिससे आधुनिकता की अवधारणा के प्रति एक समझ बनाने में सहायता मिलती है लेकिन अन्य पुस्तकें आधुनिकता को लेकर कुछ विशेष नहीं कह पातीं। जैसे-विपिन कुमार अग्रवाल जहाँ एक ओर आधुनिकता को कला के क्षेत्र तक सीमित करते हैं, वहीं दूसरी ओर आधुनिकता को परंपरा के निषेधात्मक अर्थ में प्रयुक्त करते हैं। इनका मानना है कि आधुनिकता रचनात्मकता का अध्ययन करने के लिए ऐतिहासिक दृष्टिकोण बहुत ही स्थूल और अपूर्ण है।"[122] क्योंकि नयी रचना में किसी पुरानी या पारंपरिक रचना वाली निपुणता तो आ नहीं सकती। अत: इनके अनुसार नयी रचना "अनिपुणतामय है, इसलिए असुंदर है, कला से उसका कोई

---

121 मैनेजर पाण्डेय-हिन्दी साहित्य का इतिहास, कसौटी-अंक-15, संपादक-नंदकिशोर नवल पृ०सं०315

122 विपिन कुमार अग्रवाल - आधुनिकता के पहलू, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972 ई०, पृ०सं०-13

संबंध नहीं है। आज परंपरा को वे ही अधिक महत्व दे सकते हैं, जिन्हें आधुनिक का कोई अनुभव या ज्ञान नहीं है।... इस प्रकार हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि आधुनिकता को समझने के लिए ऐतिहासिक अध्ययन का बहुत कम मूल्य है।"[123]

इन्द्रनाथ मदान ने अपनी पुस्तक में कविता, कहानी, उपन्यास और नाटक पर विचार करते हुए जो बातें कहीं, वह अधिकांशत: दूसरे रचनाकार-आलोचकों के यहाँ मिल जाती हैं। 'आधुनिकता' पर कुछेक संकेत इन्होंने किये हैं। जैसे भाषागत आधार पर कविता की पहचान आधुनिकता के बोध की देन है।"[124] "आधुनिकता का बोध केवल समकालीन रचनाओं की पहचान परख के लिए नहीं है, पुरानी कृतियों को फिर से परखने के लिए भी बाधित करता है।"[125] इन्द्रनाथ मदान नगर-बोध को आधुनिकता बोध से जोड़कर देखते थे। गंगा प्रसाद विमल ने मदान को सुधारते हुए कहा कि "आधुनिकता केवल नगर-बोध या तनाव से उत्पन्न मानसिकता नहीं है। वह केवल नगरीकरण ही नहीं है। नगरीकरण उसकी एक वृत्ति है, जो व्यापक रूप से प्रसारित होती है"[126] बकौल गंगा प्रसाद विमल आधुनिकता एक प्रकार की मानसिकता है, "इस मानसिकता का विकास आध्यात्मिक चिंतन, धार्मिक दर्शन पर प्रश्नचिह्न लगाने के कारण हुआ है।"[127]

रघुवंश के लिए आधुनिकता सर्जनशीलता है और इसका सदंर्भ यूरोपीय है। "पिछली मूल्य-दृष्टियों से उसकी प्रमुख विशेषता है कि यह मूल्यों पर रूकती नहीं, उनसे बंधती भी नही, बल्कि यह निरंतर मूल्यबोध की सर्जनशीलता है। इसे नैतिकताविहीन, मूल्यविहीन और अर्थविहीन कहने का संदर्भ यही है।"[128] हिन्दी साहित्य में आधुनिकता मूल्य है या प्रक्रिया? संबंधी जो बहस चली थी उसमें मूल्य से जुड़े कई पहलुओं को रघुवंश ने स्पष्ट किया। आधुनिकता को एक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करते हुए नरेंद्र मोहन ने कहा कि "मूल्य और प्रक्रिया को एक दूसरे के विरोधी मानने की धारणा इस बहस के मूल में है। हमें समझ में यह नहीं आता कि इसे प्रक्रिया मानने का अर्थ मूल्यों की गैर-मौजूदगी क्यों मान लिया जाए?... आधुनिकता को प्रक्रिया मानने वालों का एक मकसद यह जरूर है कि इसकी साहित्यिक अभिव्यक्ति को ऐतिहासिक सिलसिले के रूप में देखा जाए, किसी एक

---

123 विपिन कुमार अग्रवाल - आधुनिकता के पहलू, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972 ई०, पृ०सं०-17

124 इन्द्रनाथ मदान-आधुनिकता के पहलू, लोकभारती प्रकाशन, 1972 ई०, पृ०सं०-17

125 वही, पृ०सं०-46

126 गंगा प्रसाद विमल -आधुनिकता साहित्य के संदर्भ में, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, दिल्ली, 1978 ई०, पृ०सं०-21

127 वही, पृ०सं०-12

128 रघुवंश-आधुनिकता और सर्जनशीलता, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1980 ई० पृ०सं० 14

दौर की आधुनिकता को किसी अन्य दौर की आधुनिकता के आधार पर न आँका जाए।"[129]

1980-1990 के बीच आधुनिकता को औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण और पश्चिमीकरण के अर्थों में परिभाषित करने की कोशिश की गई। नरेंद्र मोहन रामधारी सिंह दिनकर और कुंवरनारायण इन सबने आधुनिकता को इन्हीं प्रवृतियों से जोड़कर देखा। आधुनिकता के सभी पक्षों और रूपों को ध्यान में रखते हुए नरेंद्र मोहन ने "इसे निरंतर विकासमान सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया कहा, जो औद्योगीकरण-आधुनिकीकरण से शुरू हुई।" [130] 'दिनकर' ने आधुनिकता को अंधविश्वास से मुक्त होने और बुद्धिवादी बनने की प्रक्रिया कहा। इनकी दृष्टि में "औद्योगीकरण आधुनिकता की पहचान है। साक्षरता का सर्वव्यापी प्रसार आधुनिकता की सूचना देता है। नगर सभ्यता का प्राधान्य आधुनिकता का गुण है।" [131] कुंवरनारायण ने आधुनिकता को विशुद्ध भौतिक संदर्भ में वह बदलाव माना जो विज्ञान और औद्योगीकरण की वजह से आया। कला और साहित्य के संदर्भ में विचार करते हुए कुंवरनारायण ने कहा कि "आधुनिकता एक मूल्य नहीं है, मूल्य के प्रति एक दृष्टि है। ये मूल्य समकालीन भी हो सकते है, पारंपरिक भी और अतीत के भी। कभी - कभी अतीत का कोई मूल्य हमारे लिए किसी आज के मूल्य से भी अधिक आवश्यक हो सकता है और तब आधुनिकता एक विवेक हो सकती है, जो उसका सही मूल्यांकन कर सके।"[132] यहाँ से एक बात यह निकलती है कि आधुनिकता स्वयं मूल्य नहीं, बदलते संदर्भो में मूल्यों का पुनर्मूल्याकंन है।

हिन्दी साहित्य में 'आधुनिकता' का दूसरा चरण जो प्रयोगवादी कविता से आरंभ होता है और नयी कविता, अकविता के दौर में फलता-फूलता, फैलता है ,कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस दौर में 'आधुनिकतावादी आधुनिकता' का चलन आरंभ होता है। आधुनिकता, आधुनिकता-बोध, आधुनिक-बोध और आधुनिकतावाद जैसे शब्द बिना अपने सटीक अर्थ संदर्भों के हिन्दी साहित्य में धड़ल्ले से प्रयोग में पाये जाते हैं। इन शब्दों के मूल में केवल 'आधुनिक' शब्द समान रूप से पाया गया है और इनके मध्य कोई अर्थगत साम्यता नहीं है। आधुनिकता सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना से सम्बद्ध है, आधुनिक-बोध और आधुनिकता-बोध दार्शनिक दृष्टि से तथा आधुनिकतावाद कला और साहित्य के आंदोलन से जुड़ा है।

---

129 नरेन्द्र मोहन - आधुनिकता के संदर्भ में हिन्दी कहानी, जयश्री प्रकाशन, दिल्ली 1982 ई॰, पृ॰सं॰-16

130 वही, पृ॰सं॰-7

131 रामधारी सिह 'दिनकर' - आधुनिक भाव बोध, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1989 ई॰, पृ॰सं॰-28

132 समकालीन सृजन - शंभुनाथ (संपादक), अंक -21 वर्ष-2002, पृ॰सं॰-109

प्रयोगवादी कविता, नयी कविता और अकविता आंदोलन के समय आधुनिकता के नाम पर जिस अजनबीपन, विडंबनाबोध, संत्रास, संकटबोध, अस्तित्वहीनता, अमानवीकरण की प्रक्रिया और अन्य अवधारणाओं पर विचार हुआ, उनका स्रोत हिन्दी साहित्य कम और पाश्चात्य साहित्य ज्यादा था। "यह आधुनिकता यथार्थ के विरूद्ध स्वप्न को, परंपराबोध के विरूद्ध क्षणबोध को, समाज के विरूद्ध व्यक्ति को और इतिहास के विरूद्ध मिथक को साहित्य में प्रचारित कर रही थी। अनास्था, कुंठा, घुटन, निराशा, आत्मरति, आत्मपरायापन और अजनबीपन को उलझे बिंबो, जटिल प्रतीकों और अमूर्तन के सहारे व्यक्त करने को ही आधुनिकता कहा जाता था। मुक्तिबोध ने इस आधुनिकतावाद की असलियत खोलते हुए लिखा है-

इस आधुनिक भावबोध में उन उत्पीड़नकारी शक्तियों का बोध शामिल नहीं है, जिन्हें हम शोषक कहते हैं, पूंजीवाद कहते हैं, साम्राज्यवाद कहते हैं तथा उन संघर्षकारी शक्तियों का भी बोध शामिल नहीं है, जिसे जनता कहते हैं, शोषित कहते है।

मुक्तिबोध रचना और आलोचना दोनों ही स्तरों पर इस आधुनिकतावाद के खिलाफ लगातार संघर्ष करते रहे।"[133]

i) आधुनिकता और आधुनिकतावाद - आधुनिकता और आधुनिकतावाद में बहुत फर्क है। "आधुनिकतावाद' शब्द अपने वर्तमान अर्थ में सर्वप्रथम उन्नीसवीं सदी के आखिरी दशक में रूढ़िवादी कैथोलिक समूह द्वारा आलोचनात्मक अर्थ में प्रयुक्त हुआ। यह प्रोटेस्टेंट ईसाइयत मत के अंतर्गत उभरनेवाले उदारवादी आंदोलन की सूचना देता था। इस प्रकार आधुनिकतावाद धर्म की सत्ता से नजदीकी अर्थों में जुड़ा था। लेकिन पूर्ण रूप से अपने अर्थ को इसने धार्मिक परिवृत्त में बांध नहीं लिया था, आधुनिकतावाद शब्द सामान्यतः धार्मिक आधुनिकतावाद या ईसाइयत की आधुनिक संकल्पना की ओर संकेत करता है।"[134]

---

133 मैनेजर पाण्डेय- साहित्य और इतिहास दृष्टि, अरूणोदय प्रकाशन, 1992 ई॰, पृ॰सं॰224-225

134 The word 'Modernism' was first used in the present sense in the last decade of the 19th century by conservative catholic circles and had a prejorative undertone. It referred to the rising liberal movement within a section of Protestant Christianity. 'Modernism' thus got closely linked up with the universe of religion. Though never restricted to the purely religious sphere, the word 'Modernism' is generally referred to religious modernism or the modern conception of christianity."
Modernity and Contemporary Indian Literature, - Indian Institute of Advanced Study Simla – 1968, Niharranyan Ray. Pg. No. 18.

"पश्चिम में साहित्य, कला और चिंतन के क्षेत्र में जब उत्तर स्वच्छंदतावादी कला और साहित्य समापन की ओर था, तब वहाँ के अवाँगार्दो के द्वारा छोटे-छोटे आंदोलनों की शुरूआत हुई। तब इन आंदोलनों को अवाँगार्द के आंदोलन के नाम से जाना जाता था, आधुनिकतावाद के नाम से नहीं। यह सब आधुनिकता के दौर में ही घटित हो रहा था। लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अवाँगार्दो के साहित्य, कला और चिंतन की परिभाषाओं और विशेषताओं को आधुनिकतावाद के संदर्भ में व्याख्यायित किया जाने लगा। सन् 1950 के आसपास 'कन्सेप्ट' के रूप में इसका 'रिफरेन्स' आधुनिकतावाद के साथ संबद्ध कर दिया गया। आधुनिकतावाद एक समावेशी आंदोलन है और इसके तमाम छोटे-छोटे आंदोलनों की प्रकृति एक जैसी नहीं है। कई एक दूसरे के घोर विरोधी हैं। यह 'विरूद्धों का सामंजस्य' है। इसके प्रमुख साहित्य, कलागत आंदोलनों में प्रतीकवाद, बिम्बवाद, वर्तुलवाद, प्रभाववाद, उत्तर प्रभाववेाद, घनवाद, इतालवी भविष्यवाद, रूसी भविष्यवाद, जर्मन अभिव्यंजनावाद, दादावाद, अतियथार्थवाद और रूसी रूपवाद मुख्य हैं।"[135]

"आधुनिकतावाद आधुनिकता की तरह जीवन, समाज और साहित्य के प्रति सकारात्मक तरीके से नहीं नकारात्मक तरीके से व्यवहार करता है। इस व्यवहार को आधुनिकतावाद से चिन्हित करने की बजाए प्रायः आधुनिकता से चिन्हित किया जाता है।"[136] आधुनिकता संबंधी चिंतन में इसी कारण बहुत घालमेल पैदा हो गया है। "इसलिए हमें नहीं भूलना चाहिए कि आधुनिकतावादी साहित्य आधुनिकता का सर्जनात्मक साहित्य नहीं है। आधुनिकतावाद नाम की अवधारणा सिद्धांत या 'आइडियोलॉजी' के रूप में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की सृष्टि है। इसीलिए इस पर शीत युद्ध की गहरी छाप है। कुछ लोगों का कहना है कि इसका जो 'रिफरेन्ट' सुनिश्चित नही है। उसका चाहे जो अर्थ ले लीजिए, चाहे वह विरोधी ही क्यों न हो।"[137] इसके इसी विरोधी स्वरूप के कारण आधुनिकतावादी साहित्य और चिंतन के दो रूप हमारे सामने आते हैं। एक तो आधुनिकीकरण या आधुनिकता के फलस्वरूप निर्मित साहित्य और चिंतन, दूसरा आधुनिकीकरण या आधुनिकता की प्रतिक्रिया में निर्मित साहित्य और चिंतन। यह आधुनिकतावाद का ऐसा अंतर्विरोध है, जिसमें उसके

---

135 दुर्गा प्रसाद गुप्त-आधुनिकतावादी अवधारणा के अंतर्विरोध, समकालीन सृजन - शंभुनाथ (संपा॰) अंक-21, 2002 ई॰, पृ॰ सं॰-129

136 दुर्गा प्रसाद गुप्त-आधुनिकतावादी अवधारणा के अंतर्विरोध, समकालीन सृजन - शंभुनाथ (संपादक) अंक-21, 2002 ई॰, पृ॰ सं॰-130

137 नामवर सिंह - शताब्दी का अवसान और उत्तर आधुनिकता, पूर्वग्रह अंक - 70-71, सितंबर-दिसंबर 1985 ई॰, संपादक-अशोक वाजपेयी, भारत भवन - भोपाल। पृ॰सं॰-10

विकास को एकरेखीय नहीं, जटिल ही कहा जा सकता है।"[138] आधुनिकतावाद के निर्माण में जिन तत्वों का योगदान है उसकी चर्चा रमेश कुंतल मेघ ने अपनी पुस्तक में की है।

बहरहाल, "अवाँगार्दो के आधुनिकतावादी आंदोलन ने पश्चिम में साहित्य, कला, चित्रकला, वास्तुकला, संगीत, भाषाविज्ञान, समाजविज्ञान एवं मानविकी को तो प्रभावित किया ही था, उसने हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य और कला को भी प्रभावित किया था।"[139] "पश्चिम में आधुनिकतावाद का आरंभ स्वच्छंदतावाद के बाद से होता है। (विशेषकर इलियट और एजरा पाउंड की कविताओं से)। हिन्दी में आधुनिकतावाद का आरंभ प्रयोगवाद से होता है।"[140] इसलिए आधुनिकता और आधुनिकतावाद में पार्थक्य न कर पाने की स्थिति में, प्रयोगवाद और नयी कविता के दौर में आधुनिकतावाद के नाम पर जो साहित्यिक प्रवृतियाँ प्रचलित थीं यथा - "समाज निरपेक्ष वैयक्तिकता, अलगाव, पराजय, पलायन, उदासीनता, अकेलेपन की पीड़ा, मृत्यु, कुंठा, वेदना, घुटन, निराशा, भय, शंका, संदेह, क्षणवाद, व्यक्ति-स्वातंत्र्य, आत्मान्वेषण, अनुभूति की अद्वितीयता, अनुभूति की प्रमाणिकता, भोगा हुआ यथार्थ, इतिहास मुक्तता, रहस्यवादिता, आध्यात्मिकता, मूल्यहीनता, अस्वीकार, अराजकता और लघुमानववाद की बात"[141], उन्हें आधुनिकतावादी आधुनिकता की बजाय आधुनिकता की विशेषताएँ मान लेने से आधुनिकता की एक गलत समझ हिन्दी साहित्य में बनी है।

मार्क्सवाद, अस्तिवाद और मनोविश्लेषणवाद की गणना आधुनिक विचारधारा के रूप में की जाती है। हिन्दी के आधुनिकतावादी साहित्य (छायावादोत्तर) में इन विचारधाराओं का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। ऊपर में वर्णित प्रवृतियाँ कमोवेश इन्हीं तीनों विचारधाराओं से प्रधानतः आयातित है। यथा "अलगाव की स्थिति की ओर सर्वप्रथम हीगेल ने संकेत किया था। 1844 में कार्ल मार्क्स ने 'एलियनेशन' की व्याख्या प्रस्तुत की - अलगाव वह स्थिति है जिसके अंतर्गत मनुष्य द्वारा निर्मित या उससे उत्पन्न वस्तुएँ, संस्थाएँ, विचार और यहाँ तक कि कला भी

---

138 दुर्गा प्रसाद गुप्त-आधुनिकतावादी अवधारणा के अंतर्विरोध, समकालीन सृजन - शंभुनाथ अंक-21, 2002 ई०, पृ० सं०-130

139 वही-पृ०सं०-135-36

140 वही-पृ०सं०-127

141 दुर्गा प्रसाद गुप्त-आधुनिकतावादी अवधारणा के अंतर्विरोध, समकालीन सृजन - शंभुनाथ (संपा) अंक-21, 2002 ई०, पृ० सं०-139

मानव निरपेक्ष वस्तुओं में बदलकर मानव जीवन के ऊपर हावी हो जाती हैं। इस विसंगति को पूंजीवाद पैदा करती है।"[142]

विश्वयुद्धों की विनाशलीला ने जब मनुष्य के होने पर ही प्रश्नचिन्ह लगा दिया तब इन विश्वयुद्धों के समय में अस्तित्ववादी चिंतन सामने आया। कीर्केगार्द, कार्ल यास्पर्स, मार्टिन हाइडेगर और सार्त्र के चिंतन द्वारा यह विकसित हुआ। हिन्दी साहित्य भी इसके प्रभाव से अछूता न रह सका था। "स्वतंत्रता की इच्छा और उसका दमन विडंबना को बार-बार पैदा करता है। अकेलेपन के संत्रास को झेलना उसकी नियति है। 'आधुनिकता' की यह अस्तित्ववादी विडंबना उसमें आरंभ से रही है 'जिसे सार्त्र ने सबसे तीखे ढंग से अनुभव किया और बताया।"[143]

"फ्रायड की नई खोज के कारण साहित्य में नई टेकनीक का ईजाद हुआ। मुक्त, असंबद्ध विचारों की प्रवाह शैली का आविष्कार हुआ। जेम्स जॉयस ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'यूलिसिस' में इस विधि का प्रयोग किया है। उस उपन्यास में करीब सौ पृष्ठों तक कहीं पूर्णविराम नहीं आया है। इसके प्रयोग अन्य विधाओं में भी हुए हैं। कविता से विराम चिन्हों का गायब होते जाना इसी का कमोवश प्रभाव है।"[144] यह प्रभाव हिन्दी की प्रयोगवादी कविता, नयी कविता में भी देखने को मिलती है।

इन विचारधाराओं (मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद और मनोविश्लेषणवाद) के प्रभाव से जिस आधुनिकतावादी साहित्य की रचना हुई और आधुनिकता पर पुनर्विचार आरंभ हुआ। उस आधुनिकता में और आचार्य शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी और रामविलास जी की 'आधुनिकता' के स्वरूप और संरचना में पर्याप्त अंतर है। यही कारण है कि आचार्य शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी जहाँ आधुनिकता का आरंभ 19वीं सदी से मानते हैं वही आधुनिकतावादी साहित्य में आधुनिकता का आरंभ 1936 ई॰ से मानने की बात की जाती है। नामवर जी कहते हैं "माडर्निटी', 'माडर्निज्म' और 'माडर्नाइजेशन' - तीन शब्दों का प्रयोग किया जाता है। माडर्नाइजेशन सामाजिक रूपांतरण के सिलसिले में होता है, जो समाजशास्त्र के लोग इस्तेमाल करते हैं। 'माडर्निटी' का भी एक संकुचित संकीर्ण कालबोधक रूप है। 'माडर्निज्म' (कविता में) एक व्यापक अवधारणा है। लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि 1936 के प्रगतिशील

---

142 The act of transforming the products of human activity – commodities institution and ideas including art – into objects which are independent of people and govern their lives.
अ॰द॰ पाण्डेय - आधुनिकता और आलोचना, पृ॰सं॰-24

143 सुधीश पचौरी - आलोचना से आगे, राजकमल प्रकाशन, 2000 ई॰, पृ॰ सं॰-20-21

144 सकलदीप सिंह - आधुनिकता की समझ, समकालीन सृजन-शंभुनाथ (संपादक) अंक-21, 2002 ई॰, पृ॰सं॰-91

साहित्य और चिंतन के साथ 'माडर्निटी' आयी। 1936 के बाद जो विभाजन हुआ, वह विभाजन माडर्निज्म की शक्ल में एक अलग धारा के रूप में चला जो ज्यादा संकीर्ण था।"[145] इसलिए हिन्दी साहित्य के संदर्भ में 'आधुनिकता' शब्द का प्रयोग करते हुए 'आधुनिकता' और 'आधुनिकतावादी आधुनिकता' के मध्य फर्क करने का सजग बोध होना चाहिए क्योंकि आधुनिकता हिन्दी साहित्य में अपनी परिस्थितियों से उत्पन्न हुई है, जबकि 'आधुनिकतावादी आधुनिकता' पश्चिमी विचारों के अंधानुकरण का परिणाम है।

आधुनिकता के साथ-साथ आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण, औद्योगिकरण की अवधारणाएँ भी स्पष्ट भेद के अभाव में एक-दूसरे से नजदीकी संबंध रखती जान पड़ती हैं। लेकिन ये सभी एक-दूसरे से स्पष्ट अंतर रखने के साथ-साथ एक निश्चित अर्थ भी धारण करती हैं। लेकिन भ्रम, अज्ञान या लापरवाही, जो कह लें, कि वजह से इन अवधारणाओं को कई बार हम मिलते-जुलते संदर्भों में प्रयोग कर लेते हैं। चूँकि आधुनिकीकरण के जिन आधारों की चर्चा भारतीय संदर्भों में की गयी है, वह औपनिवेशिक काल में ब्रिटेन से आयातित थी और बाद में अन्य पश्चिमी राष्ट्रों से आई। परिणामतः आधुनिकीकरण (Modernisation), जो एक पश्चिमी अवधारणा (Western Concept) है। पश्चिम का अनुकरण कर के विकसित होने के कारण सजगता के अभाव में पश्चिमीकरण के साथ जुड़ गया। "वास्तव में आधुनिकीकरण का अर्थ था पश्चिमी मुख्यतः ईसाई परंपरा द्वारा देशज परंपरा का प्रतिस्थापन"[146] बाद में अर्थशास्त्रियों ने इसका अर्थ किया-"मनुष्य द्वारा तकनीकी ज्ञान का प्रयोग।"[147] इसके तीन आधार माने गये "औद्योगीकरण, यंत्रीकरण और वैज्ञानिकरण"[148] आधुनिकीकरण के साधन के तौर पर "शिक्षा, विचारादर्श, राष्ट्रवाद, कुशलनेतृत्व और नियामक शासन को गिना गया।"[149] "बौद्धिकता, विवेकशीलता ओर तकनीकीकरण, आधुनिकीकरण के अनिवार्य लक्षण माने गये। जिसका तात्पर्य धार्मिक अंधविश्वास और समर्पित श्रद्धा के बदले तर्क और विचार की प्रतिष्ठा थी।"[150]

---

145 नामवर सिंह- प्रगतिशीलता और आधुनिकता समान्तर प्रकाशन, गोरखपुर, 2004 ई०, पृ०सं०- 25

146 योगेश अटल-परंपरा एवं आधुनिकता: प्रतिमानों का पुनरीक्षण, समकालीन सृजन-शंभुनाथ, अंक-21, 2002 ई., पृ०सं०-61

147 धनंजय वर्मा-आधुनिकीकरण और आधुनिकता, समकालीन सृजन-शंभुनाथ, अंक-21, 2002, ई., पृ०सं०-69

148 वही, पृ०सं०-77

149 वही, पृ०सं०-72

150 वही, पृ०सं०-81

इस प्रकार आधुनिकीकरण के साधन आधार और लक्षणों की समरूपता आधुनिकता से होने के कारण आधुनिकता, आधुनिकीकरण और पश्चिमीकरण का स्वरूपगत और संरचनागत भेद सहज स्पष्ट नहीं रह गया। ''सामान्यत: आधुनिकीकरण आर्थिक क्रांति से जुड़ता है, आधुनिकबोध, दार्शनिक दृष्टि से तथा आधुनिकता सामाजिक-सांस्कृतिक समग्रता का पुंज हो जाती है।''[151] आधुनिकता का संबंध एक विशेष प्रकार की चेतना (spirit of freedom) से भी है, जबकि आधुनिकीकरण केवल भौतिक प्रक्रिया से जुड़ी अवस्था है जिसमें शहरीकरण, औद्योगिकरण आदि शामिल हैं। एम.एन. श्रीनिवास के अनुसार ''किसी पश्चिमी देश के प्रत्यक्ष या परोक्ष संपर्क के कारण किसी गैर-पश्चिमी देश में होने वाले परिवर्तनों के लिए प्रचलित शब्द है 'आधुनिकीकरण'।''[152] तो फिर पश्चिमीकरण क्या है? पश्चिमीकरण से तात्पर्य इन समस्त सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और व्यापक रूप से मानव-मूल्यों, प्रतिमानों तथा उसी प्रकार की संस्थाओं और विधाओं को अपना लेना है, जिनसे पश्चिम और खासकर यूरोप गुजरा है।''[153]

''डेनियल लर्नर ने, 'पश्चिमीकरण' और 'आधुनिकीकरण' दोनों की उपयुक्तता पर विचार करके, आधुनिकीकरण को स्वीकार किया है।''[154] पश्चिमीकरण शब्द कई कारणों से अनुपयुक्त है; वह अत्यधिक स्थानीय लेबिल है और जिस आदर्श का अनुकरण किया जा रहा है, वह कोई पश्चिमी देश न होकर रूस, तुर्की, जापान या भारत हो सकता है। लर्नर द्वारा पश्चिमीकरण के बजाय आधुनिकीकरण को स्वीकार करने में एक महत्त्वपूर्ण कारक यह भी था कि मध्यपूर्व में जो उसका कार्य-क्षेत्र था, शिक्षित लोग, 'आधुनिक पैकेज' चाहते हुए भी '''अमेरिका में बना' (या कि 'रूस में बना') लेबिल स्वीकार नहीं करते।''[155] ''इसके अतिरिक्त अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में पश्चिमी संस्कृति के सभी तत्त्वों का उद्‌गम पश्चिम में नहीं हुआ था। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिम की औद्योगिकी-संबंधी श्रेष्ठता के कुछ अवयव प्राचीन सुदूर पूर्व और मध्ययुगीन भारत से आये थे। बारूद, छापे के टाइप और कागज का आविष्कार चीन में हुआ था।''[156] इस तरह पश्चिमीकरण की तुलना में आधुनिकीकरण ज्यादा संगत जान पड़ता है। औद्योगीकरण, शहरीकरण, नगरीकरण, यंत्रीकरण आदि आधुनिकीकरण के ही अंग हैं।

---

151 रमेशकुंतल मेघ-आधुनिकताबोधा और आधुनिकीकरण, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली-1969, पृ॰सं॰-311

152 एम.एन. श्रीनिवास-आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल पेपरबैक्स, 2005 पृ॰सं॰-55

153 धनंजय वर्मा-आधुनिकीकरण और आधुनिकता, समकालीन सृजन-शंभुनाथ, अंक-21, 2002, पृ॰सं॰-75

154 एम.एन. श्रीनिवास-आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल पेपरबैक्स, 2005 पृ॰सं॰-55

155 एम.एन. श्रीनिवास-आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल पेपरबैक्स, 2005 पृ॰सं॰-55

156 एम.एन. श्रीनिवास-आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल पेपरबैक्स, 2005 पृ॰सं॰-57

आचार्य शुक्ल हिन्दी साहित्य के संदर्भवान आलोचक हैं। "आचार्य शुक्ल जब 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' का नवीन संस्करण तैयार कर रहे थे, तब हिन्दी में जहाँ-तहाँ आधुनिकता की चर्चा होने लगी थी। उस समय आधुनिकता बहुत दूर तक पश्चिमी प्रभाव तक सीमित थी। आचार्य शुक्ल हिन्दी साहित्य को पश्चिमी प्रभाव से मुक्त रखने के लिए उधार की आधुनिकता की आलोचना करना जरूरी समझते थे।"[157] शुक्लजी की स्पष्ट मान्यता थी कि ऐसा नहीं हो सकता कि जगत का सारा रूप विधान यूरोप करे और हम केवल उसका अनुकरण करें। अपने लेखकाल में 'आधुनिकता' के नाम पर फैलते वादों और प्रवादों की आलोचना करते हुए उन्होंने कहा कि "केवल पाश्चात्य साहित्य के किसी कोने में आँख खोलने वाले और योरप की हर एक नई पुरानी बात को 'आधुनिकता' कहकर चिल्लाने वाले लोगों के द्वारा बहुत कुछ अनधिकार चर्चा बहुत सी अनाड़ीपन की बातें-भी फैल चली। इस दूसरे ढाँचे के लोग योरप की सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक परिस्थितियों के अनुसार समय-समय पर उठे हुए नाना वादों और प्रवादों को लेकर और उनकी उक्तियों के टेढ़े सीधे अनुवाद को उद्धरणी करके ही अपने को हमारे वास्तविक साहित्य निर्माताओं से दस हाथ आगे बता चले। इनके कारण हमारा सच्चा साहित्य रूका तो नहीं, पर व्यर्थ की भीड़भाड़ के बीच ओट में अवश्य पड़ता रहा।"[158] इसके दूसरे गंभीर परिणामों की ओर भी शुक्लजी की दृष्टि थी। कहना न होगा कि आने वाले दिनों मे उनकी ये आशंकाएँ किसी भविष्य द्रष्टा के कहे हुए शब्द साबित हुए। शुक्लजी की यह आशंका निर्मूल नहीं थी कि "योरप के साहित्य क्षेत्र में फैशन के रूप में प्रचलित बातों को कच्चे-पक्के ढंग से सामने लाकर कुतूहल उत्पन्न करने की चेष्टा करना अपनी मस्तिष्कशून्यता के साथ ही साथ समस्त हिन्दी पाठकों पर मस्तिष्कशून्यता का आरोप करना है।"[159]

आचार्य शुक्ल पश्चिम के वादों-प्रवादों के अंध-विरोधी नहीं थे, उनका मानना था कि "किसी साहित्य में केवल बाहर की भद्दी नकल उसकी अपनी उन्नति या प्रगति नहीं कही जा सकती। बाहर से सामग्री आये, खूब आये, पर वह कूड़ा करकट के रूप में न इकट्ठी की जाये। उसकी कड़ी परीक्षा हो, उसपर व्यापक दृष्टि से विवेचन किया जाये, जिससे हमारे साहित्य के स्वतंत्र और व्यापक विकास में सहायता पहुँचे।"[160]

---

157 मैनेजर पाण्डेय-हिन्दी साहित्य का इतिहास, कसौटी-अंक-15, नन्द किशोर नवल (संपादक), पृ०सं०-319

158 रामचंद्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी तेइसवाँ संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण, 1990 ई०, पृ०सं०-291

159 रामचंद्र शुक्ल-समकालीन सृजन, अंक-21, वर्ष 2002 ई० पृ०सं०-16

160 रामचंद्र शुक्ल-समकालीन सृजन, अंक-21, वर्ष 2002 ई०, पृ०सं०-16

"आचार्य शुक्ल का आग्रह यह था कि पश्चिमी प्रभावों को विवेक के साथ स्वीकार किया जाए। इसीलिए उन्होंने यह भी लिखा था कि 'यदि हमें वर्तमान जगत के बीच अपना रास्ता निकालना है तो वहाँ के अनेक वादों और प्रवृतियों तथा उन्हें उत्पन्न करने वाली परिस्थितयों का पूरा परिचय होना चाहिए।' आचार्य शुक्ल की यह सलाह आज भी ध्यान देने लायक है। उन्होनें 1939 ई॰ में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के 28वें अधिवेशन के साहित्य परिषद् के स्वागताध्यक्ष के रूप में भाषण देते हुए कहा था कि हमें पश्चिम के साहित्य में पैदा होने वाली हर प्रवृत्ति के पीछे लपकने के बदले 'अपनी बाह्य और आभ्यंतर परिस्थिति के अनुसार स्वतंत्र मार्ग निकालते रहना चाहिए।' इसी व्याख्यान में उन्होंने यह भी कहा था कि 'उपन्यास और कहानी के ढाँचे हमने पश्चिम से लिए हैं। हैं भी ये ढाँचे बड़े सुंदर। हमें ढांचों तक ही सीमित रहना चाहिए। आचार्य शुक्ल की आकांक्षा यह है कि उपन्यास और कहानी के पश्चिमी ढाँचों के भीतर भारतीय जीवन के अनुभवों की अभिव्यक्ति करते हुए उन्हें रूपांतरित किया जाए और अपना बनाया जाए। स्वयं आचार्य शुक्ल ने उपन्यास और कहानी तो नहीं लेकिन हैकल (जर्मन वैज्ञानिक) की प्रसिद्ध पुस्तक 'रिडल ऑफ दि यूनिवर्स' का अनुवाद 1920 ई में 'विश्वप्रपंच' नाम से किया था। वह भी उस समय (1920 में) "जब भौतिकवाद और आधुनिक विज्ञान पर लिखने और विचार करने वाले लोग हिन्दी ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं में भी कम थे और उन्होंने अनुवाद ही नहीं किया, भूमिका में स्वयं ज्ञान की वर्तमान स्थिति का भी विवेचन किया।"[161]

'विश्वप्रपंच' की भूमिका को पढ़ते हुए पश्चिमी वादों और प्रवादों के प्रति आचार्य शुक्लजी के द्वारा अपनायी गयी दृष्टि अत्यंत महत्वपूर्ण है और हिन्दी साहित्य में पाश्चात्य विचारधाराओं के प्रति हमारी दृष्टि कैसी होनी चाहिए, इसके आदर्श रूप की झलक वहाँ मिलती हैं। "संसार के प्रति हमारा दार्शनिक दृष्टिकोण क्या हो? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हिन्दी में पहली बार इतने विस्तार से विज्ञान का अध्ययन किया गया है।"[162] "इस पुस्तक की लंबी भूमिका में उन्होंने उन सभी विषयों के विश्वस्तरीय ज्ञान की प्रगति का अच्छा विवेचन किया है, जिसका समावेश मूल पुस्तक में है।"[163]

---

161 रामविलास शर्मा- आचार्य शुक्ल और हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000 ई॰, पृ॰सं॰ - 17

162 रामविलास शर्मा- आचार्य शुक्ल और हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000 ई॰, पृ॰सं॰ - 17

163 रामचंद्र तिवारी - आचार्य रामचंद्र शुक्ल, 1994 ई॰ (द्वितीय संस्करण) पृ॰सं॰-10

विश्वप्रपंच की सुदीर्घ और सुचिंतित भूमिका में विश्वस्तरीय ज्ञान की विभिन्न शाखाओं-प्रशाखाओं की बात करते हुए आचार्य शुक्ल लगातार 'हमारे यहाँ' के जुमले का प्रयोग करते चलते हैं। 'हमारे यहाँ' से मतलब भारतीय परंपरा में। यूरोपीय वादों-प्रवादों की भारतीय संदर्भो में उपयुक्तता-अनुपयुक्तता पर पूरा विचार करने के बाद ही वे अपनी राय रखते हैं। आचार्य शुक्ल द्वारा अपनायी गयी यह दृष्टि अत्यंत महत्वपूर्ण आज इसलिए भी हो जाती है कि भारतीय संदर्भो में जब आधुनिकता की बात की जाती है तो 'मिसटेकेन माडर्निटी' (दीपांकर गुप्ता) और फ्रैक्चर्ड मोडर्निटी (संजय जोशी) जैसी अवधारणाएँ सामने आती हैं, जो आधुनिकता को अपने संपूर्ण अर्थों में भारतीय समाज में अनुपस्थित पाती है। तो जिस समाज में पूरी तरह से आधुनिकता नहीं आयी हो, वहाँ सजगता और सावधानी के अभाव में अन्य यूरोपीय विचारधाराओं एवं अवधारणाओं के अंधानुकरण का खतरा लगातार बना हुआ है। इसलिए जरूरत इस बात की है कि न सिर्फ हिन्दी साहित्य में बल्कि भारतीय समाज-साहित्य के संदर्भ में आधुनिकता की अपनी सैद्धांतिकी पर विचार-विमर्श हो अन्यथा अब तक अनजाने में जिस यूरोपीय आधुनिकता को हम ढो रहे हैं आगे चलकर फैशन के तहत स्वयं को यूरोपीय उत्तर-आधुनिकता की उतरन पहने हुए देखेंगे। शायद इसकी शुरूआत हिन्दी साहित्य में हो चुकी है इसकी पहचान और परख आवश्यक है क्योंकि अब और सोना मृत्यु का लक्षण है।

उपसंहार

उपसंहार

आधुनिकता एक यूरोपीय स्थिति और अवधारणा है। आधुनिकता विशुद्ध साहित्यिक अवधारणा नहीं है बल्कि इसकी जड़ें, अन्य ज्ञानानुशासनों में फैली हुई है। इसके स्वरूप और संरचना के निर्माण में साहित्येतर ज्ञानानुशासनों की महती भूमिका रही है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में पश्चिम के समान आधुनिकता का एक विचारधारा और दृष्टिकोण के रूप में स्पष्ट इतिहास का अभाव है। आधुनिकता का अर्थ उसके संदर्भ और व्याख्या पर निर्भर करता है, इसीलिए इसके कालगत संदर्भो की अनदेखी कर इसके अर्थ तक नहीं पहुँचा जा सकता है। आधुनिकता केवल बुद्धिवाद की प्रक्रिया नहीं हैं बल्कि भौतिकवाद की भी प्रक्रिया है और ये दोनों प्रक्रियाएं एक-दूसरे से स्वतंत्र होकर आधुनिकता का वाहक समाज-साहित्य में नहीं हो सकती, इन दोनों प्रक्रियाओं की परस्परता अनिवार्य है। बुद्धिवाद आधुनिकता का एक लक्षण मात्र है, पर्याय नहीं। आधुनिकता के भौतिक आधार के लिए जिन ऐतिहासिक परिस्थितियों की आवश्यकता होती है। औपनिवेशिक काल से पहले यह परिस्थितियाँ निर्मित नहीं हो सकी थी। इसलिए भारतीय संदर्भो में आधुनिकता एक औपनिवेशिक निर्मिति (Colonial Construct)है। आधुनिकता एक चेतना है। एक काल सापेक्ष अवधारणा है। एक निरंतर गतिशील प्रक्रिया है। अत: इसकी कोई सुस्पष्ट और सुनिश्चित परिभाषा नहीं है।

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के उदय की बात करते हुए, जो बातें स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आती हैं वह यह कि-हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का उदय गद्य और पद्य दोनों में समान रूप से एक ही समय देखने को नहीं मिलता है। उनके बीच दस-पन्द्रह वर्षो का अंतराल है। इसमें भी गद्य विधाएँ जैसे कहानी और उपन्यास में आधुनिकता का समावेश अलग-अलग कालखण्डों में देखने को मिलता है। गद्य और खड़ीबोली हिन्दी तो सहवर्ती स्थितियाँ रही हैं। लेकिन कविता के प्रसंग में खड़ीबोली हिन्दी में लिखी गयी कविता ही आधुनिक कविता मानी जाती है। गद्य की तुलना में पद्य में आधुनिकता की यह एक अतिरिक्त शर्त है।

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के उदय का स्पष्ट वर्ष बता पाना कठिन है। अलग-अलग साहित्यिक विधाओं के प्रसंग में यह बिंदु तलाशे जा सकते हैं। लेकिन सामान्य तौर पर किसी निर्णायक वर्ष की प्रस्तावना हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के उदय के लिए प्रस्तावित नहीं की जा सकती। जैसे 1853 का वर्ष आधुनिकता के भौतिक आधारों के निर्माण के दृष्टिकोण से एक महत्त्वपूर्ण वर्ष है लेकिन सामाजिक परिवर्तन और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से 1857 निर्णायक वर्ष है। हिन्दी साहित्य के संदर्भ में 1868-70 का वर्ष महत्त्वपूर्ण है, इन्हीं वर्षो में हिन्दी पत्रकारिता उपनिवेशवाद-साम्राज्यवाद विरोधी और उस चेतना-प्रवृति का निर्माण सतत् रूप से आरंभ

करती है, जिस चेतना और जिन प्रवृतियों की पहचान हम आधुनिकता के रूप में करते हैं।

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के उदय को मोटे तौर पर गद्य के आविर्भाव, प्रेस के आगमन, यातायात के समुन्नत साधनों, शांतिपूर्ण व्यवस्था और सचेत परिवर्तनेच्छा से जोड़ा जाता है। इन कारकों की उपलब्धता 19वीं शती में देखकर कहा गया कि उन्नीसवीं शती में हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल का आरंभ होता है। सौ वर्ष के कालखंड में ये सारे कारक अपने सामान्य अर्थों में प्रयुक्त हुए जबकि आधुनिकता के साथ इनका विशिष्ट संबंध था। मसलन् गद्य का आविर्भाव मात्र, आधुनिकता और उसके संबंधों की सही व्याख्या नहीं प्रस्तुत करता है। गद्य के आविर्भाव के साथ उसके द्वारा निभायी जाने वाली भूमिका का प्रश्न जुड़ा हुआ था कि गद्य 'सचेत परिवर्तनेच्छा' की मानसिकता निर्मित करने वाली भूमिका कब से निभाता है। गद्य की कई विधायें उन्नीसवीं शती के बाद विकसित हुई।

आधुनिकता केवल बुद्धिवाद की प्रक्रिया नहीं हैं बल्कि भौतिकवाद की भी प्रक्रिया है। इनमें से कोई भी अकेला आधुनिकता का परिचायक नहीं है। प्रेस आधुनिकता का एक महत्त्वपूर्ण भौतिक आधार है लेकिन इस भौतिक आधार के साथ बुद्धिवाद की यह प्रक्रिया भी जुड़ी हुई है कि साहित्य किस मानसिकता का निर्माण करता है? संप्रेषण की क्रांति का श्रीगणेश होने का संबंध प्रेस (टेक्नोलॉजी) से है जबकि संप्रेषण की अंतर्वस्तु, (वह मध्यकालीनता का प्रचार प्रसार कर रही है या आधुनिकता का?), का संबंध उससे जुड़ी विचारधारा (आईडियोलॉजी) से है। तकनीक (टेक्नॉलॉजी) अपनी विचारधारा (आइडियॉलॉजी) का निर्माण स्वयं करती है। तकनीक का नियंत्रण जिस व्यक्ति, सत्ता या संगठन के हाथ में होता है, उसी की इच्छा पर तकनीक के इस्तेमाल द्वारा वांछित विचारधारा का निर्माण किया जा सकता है। आचार्य शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में गद्य की परंपरा एक साथ चलानेवाले जिन 'लेखक चतुष्टय' का उल्लेख किया है- उनकी रचनाओं की अंतर्वस्तु पारंपरिक और भाषा आधुनिक है। मुंशी सदासुखलाल 'नियाज' कृत 'सुखसागर', इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी, लल्लूलालजी का 'प्रेमसागर' जिसमें भागवत दशमस्कंध की कथा वर्णन की गयी है। तथा सदल मिश्र की 'नासिकेतोपाख्यान इनकी विषयवस्तु औपनिवेशिक काल की स्थितियों के प्रति न तो असंतोष का भाव व्यक्त करती है न इनमें 'सचेत परिवर्तनेच्छा' की कोशिश नजर आती है। केवल इनकी भाषा में (विशेषकर मुंशी सदासुखलाल और सदल मिश्र की) आधुनिक हिन्दी का पूरा-पूरा आभास मिलता है। भाषा के आधुनिक होने मात्र से कोई रचना आधुनिकता का प्रसार नहीं कर सकती है, उसकी अंतर्वस्तु की भूमिका निर्णायक होती है।

प्रेस ने साहित्य को प्रजातांत्रिक स्वरूप प्रदान किया और यातायात के साधनों ने इसके प्रचार-प्रसार की भूमिका निभायी। किनके बीच? मध्यवर्ग में हमने देखा कि भारतीय मध्यवर्ग, जिसका हिन्दी साहित्य की आधुनिकता से संबंध है, लगभग 150 वर्षों में विकसित होता है, उसमें भी आधुनिकता मध्यवर्ग के साथ जीवन-पद्धति (Life Style) के रूप में जुड़ती है और साहित्य में आधुनिकता 'शिक्षित मध्यवर्ग' के साथ जुड़ती है। मतलब आधुनिकता स्थूल रूप से मध्यवर्ग से जुड़ती है लेकिन सही अर्थ में उसका संबंध (हिन्दी साहित्य में) 'शिक्षित मध्यवर्ग' से है।

आधुनिकता, परम्परा, संस्कृति, मध्यवर्ग, राष्ट्रवाद यह सभी अवधारणाएँ भारत में (हिन्दी साहित्य में) अंग्रेजी राज का परिणाम रही हैं। लेकिन इनका विकास अस्तित्वमान पारंपरिक आधारों पर नये अवसरों का लाभ उठाकर हुआ। हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का आरंभ हम सामान्य तौर पर भारतेंदु-युग से मान सकते हैं। ऐसा मानते हुए इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि आधुनिकता भारतेन्दु-काल में निर्माण की प्रक्रिया में है, न की अपने पूर्णतम अवस्था में। भारतेन्दु-काल से आरंभ होने वाली आधुनिकता का पहला चरण 1936 मे पूरा होता है। आधुनिकता की सही पहचान पहली बार संगत तौर पर प्रेमचंद की रचनाओं में हमें देखने को मिलता है। 1936 के बाद आधुनिकता का दूसरा चरण आरंभ होता है, जो आधुनिकता नहीं बल्कि 'आधुनिकतावादी आधुनिकता' है। आधुनिकतावादी आधुनिकता के विभिन्न पहलुओं की चर्चा पूर्व में की जा चुकी है।

प्रत्येक अध्याय के अंत में जिन मुख्य बिन्दुओं पर विचार किया गया है, उसके संदर्भ में आधुनिकता को विश्लेषित किया गया है। हम यूँ कह लें कि प्रत्येक अध्याय का एक उपखण्ड (Sub-Chapter) अपने स्वरूप और संरचना में उपसंहारात्मक ही है। इसलिए उसका दोहराव यहाँ अनिवार्य नहीं जान पड़ता वैसे भी -

एक ही गीत बार-बार गाने से विवाह का गीत हो जाता है।।

संदर्भ ग्रंथ/ सहायक ग्रंथ/

सामग्री सूची

संदर्भ ग्रंथ सूची

i) हिन्दी पुस्तकें

1. इन्द्रनाथ मदान - आधुनिकता और हिन्दी आलोचना, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, 1975 ई०

2. कर्मेन्दु शिशिर - राधामोहन गोकुल और हिन्दी नवजागरण, संभावना प्रकाशन, हापुड़, 2003 ई० (प्रथम संस्करण)

3. के० दामोरन - भारतीय चिन्तन परम्परा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा०), लिमिटेड, नयी दिल्ली, अप्रैल 2001 ई० (चौथा संस्करण)

4. किशन पटनायक - विकल्पहीन नहीं है दुनिया, राजकमल प्रकाशन (पेपरबैक्स), दरियागंज, नयी दिल्ली, 2001 ई० (प्रथम आवृति)

5. गीता शर्मा - डा० रामविलास शर्मा और परंपरा का मूल्यांकन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, दरियागंज, 1991 ई०

6. गोपाल राय - हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल पेपरबैक्स दरियागंज, नयी दिल्ली, 2005 ई०

7. गंगा प्रसाद विमल - आधुनिकता साहित्य के संदर्भ में, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, दिल्ली, 1978 ई०

8. टी०बी० बॉटमोर - समाजशास्त्र समस्याओं और साहित्य का अध्ययन अनुवादक - गोपाल प्रधान, 2004 ई० (प्रथम हिन्दी संस्करण) ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली

9. नन्दकिशोर नवल - हिन्दी आलोचना का विकास, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज नयी दिल्ली, 2000 ई० (प्रथम आवृति)

10. नरेन्द्र मोहन - आधुनिकता के संदर्भ में हिन्दी कहानी जयश्री प्रकाशन, दिल्ली, 1982 ई०

11. नामवर सिंह - दूसरी परंपरा की खोज, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1989 ई०

12. नामवर सिंह - इतिहास और आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2002 ई०

13. नामवर सिंह - छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1997 ई०

14. नामवर सिंह-प्रगतिशीलता और आधुनिकता, समानांतर प्रकाशन, गोरखपुर, 2004 ई०

15. नित्यानंद तिवारी - आधुनिक साहित्य और इतिहास बोध, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1994 ई०

16. पुरूषोत्तम अग्रवाल - विचार का अनंत, राजकमल प्रकाशन (पेपरबैक्स), 2000 ई०

17. पुरूषोत्तम अग्रवाल - संस्कृति वर्चस्व और प्रतिरोध, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1995 ई०

18. पूनमचन्द्र तिवारी - द्विवेदीयुगीन काव्य, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1972 ई०

19. प्रेमचन्द - कुछ विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2003 ई०

20. बच्चन सिंह - हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, वाणी प्रकाशन, 2001ई०

20. बच्चन सिंह - हिन्दी नाटक, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1989 ई०

21. बच्चन सिंह - हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2000 ई०

22. भवदेव पाण्डेय - आचार्य रामचंद्र शुक्ल आलोचना के नए मानदंड, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2003 ई०

23. भूपेन्द्रनाथ सान्याल - फ्रेंच साहित्य का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, हिन्दी समिति प्रभाग, 1979 ई०

24. एम०एन० श्रीनिवास - आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल प्रकाशन (पेपरबैक्स), नयी दिल्ली, 2005 ई०

25. मधुरेश - हिन्दी कहानी का विकास, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, 2001 ई०,

26. महात्मा गाँधी - हिन्द स्वराज, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद 2004

27. मार्क्स - पूँजी खण्ड-3, (अनुवादक-नरेश बेदी) प्रगति प्रकाशन, मास्को पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, 1988 (द्वितीय संस्करण)

28. मार्क्स - भारतीय इतिहास पर टिप्पणियाँ (664-1558), (अनुवाद-रमेश सिन्हा) इंडिया पब्लिशर्स लखनऊ, 1964 ई०

29. मार्क्स एंगेल्स - भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (1857-59), (पहला हिन्दी संस्करण) पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1963 (अनुवादक - रमेश सिन्हा)

30. मुबारक अली - इतिहासकार का मतान्तर, राजकमल प्रकाशन, 2002 ई० (अनुवादक-प्रेम कपूर)

31. मैनेजर पाण्डेय - आलोचना की सामाजिकता, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली, 2005 (प्रथम संस्करण)

32. मैनेजर पाण्डेय - साहित्य और इतिहास दृष्टि, अरूणोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1992 ई०

33. मैनेजर पाण्डेय - साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2001 ई०

34. योगेन्द्र सिंह - भारतीय परम्परा का आधुनिकीकरण, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2006 ई०

35. रघुवंश - आधुनिकता और सर्जनशीलता, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, नयी दिल्ली, 1980 ई०

36. रजनी दाम दत्त - आज का भारत, ग्रंथशिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, अनुवादक - रामविलास शर्मा, 2004 ई०

37. रमेश कुंतल मेघ - आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1969 ई०

38. रविंदर कुमार - आधुनिक भारत का सामजिक इतिहास, अनुवादक - आदित्यनारायण सिंह, ग्रंथशिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, 1997 ई०

39. रामचन्द्र तिवारी-हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1999 ई०

40. रामचन्द तिवारी -आचार्य रामचंद्र शुक्ल, 1994 ई०

41. रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि भाग-1, साहित्य सरोवर, आगरा, 2002 ई०

42. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संशोधित एवं परिवर्धित तेइसवाँ संस्करण, सं० 2047

43. रामचन्द्र शुक्ल - त्रिवेणी, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी (पेपरबैक्स) पचपनवाँ संस्करण

44. रामधारी सिंह 'दिनकर' - आधुनिक बोध, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1989 ई०

45. रामविलास शर्मा - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन (पेपरबैक्स), नयी दिल्ली 2000 ई०

46. रामविलास शर्मा - नयी कविता और अस्तित्ववाद, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1989 ई० (तृतीय संस्करण)

47. रामविलास शर्मा - परम्परा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन,नयी दिल्ली, 1981 ई० (प्रथम संस्करण)

48. रामविलास शर्मा-भारत की भाषा समस्या, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1989 ई०

49. रामविलास शर्मा - भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1982 ई० (प्रथम संस्करण)

50. रामविलास शर्मा - भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1995 ई०

51. रामविलास शर्मा - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004 ई० (छठी आवृति)

52. रामविलास शर्मा - भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन, 2005, पाँचवी आवृति

53. रामविलास शर्मा - महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1989 ई० (द्वितीय संस्करण)

54. रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999 ई० (ग्यारहवाँ संस्करण)

55. विजय कुमार - अंधेरे समय में विचार, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2006, प्रथम प्रकाशन

56. विपिन कुमार अग्रवाल - आधुनिकता के पहलू, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972 ई०

57. विश्वनाथ त्रिपाठी - हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन (पेपरबैक्स) नयी दिल्ली, 2000 ई० (पांचवी आवृत्ति)

58. वीर भारत तलवार - रस्साकशी, सारांश प्रकाशन,दिल्ली, 2002 ई०

59. वीर भारत तलवार - राष्ट्रीय नवजागरण और साहित्य कुछ प्रसंग : कुछ प्रवृत्तियाँ हिमाचल पुस्तक भंडार, 1993 ई०

60. वीर भारत तलवार - सामना, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2005

61. वीर भारत तलवार - हिन्दू नवजागरण की विचारधारा : 'सत्यार्थ प्रकाश' समालोचना का एक प्रयास, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला, 2001 ई०

62. हजारी प्रसाद द्विवेदी - अशोक के फूल, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली, 1999 ई०

63. हजारी प्रसाद द्विवेदी - मध्यकालीन बोध का स्वरूप, (प्रथम संस्करण) पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़, मार्च (1970)

64. हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य उद्‌भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1984 ई० (द्वितीय संस्करण)

65. हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य की भूमिका, (पेपरबैक्स) राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1990 ई० (छठा संस्करण)

66. हजारी प्रसाद द्विवेदी - विचार प्रवाह

67. शिवदान सिंह चौहान - हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड, बम्बई, 1954 ई०

68. सखाराम गणेश देउस्कर - देश की बात, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया अनुवाद- बाबूराव विष्णुराव पराड़कर 2005 ई०, पहला संस्करण

69. सतीश चन्द्र - मध्यकलीन भारत (सल्तनत से मुगलों तक 1526-1748) जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली, 2005 (द्वितीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण)

70. समीक्षा ठाकुर - रामचंद्र शुक्ल के समीक्षा सिद्धांत और गीता रहस्य, राजमकल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1993 ई०

71. सव्यसाची भट्टाचार्य - आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, राजकमल प्रकाशन (पेपरबैक्स), नयी दिल्ली, 2004 ई०

72. सुधाकर पाण्डेय - भारतीय साहित्य के निर्माता, श्यामसुन्दर दास, साहित्य अकादमी, 1982 ई०

73. सुधीश पचौरी - आलोचना से आगे, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2000 ई०

74. श्रीकृष्ण लाल - आधुनिक हिन्दी का विकास, हिन्दी परिषद प्रकाशन, विश्वविद्यालय, प्रयाग, संशोधित एवं परिवर्धित चतुर्थ संस्करण - 1965 ई०

ii) सम्पादित हिन्दी पुस्तकें

75. अमित्रसूदन भट्टाचार्य (संपादन) - बंकिम चंद्र, प्रतिनिधि निबंध, अनुवाद - प्रयाग शुक्ल, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2005 ई० (तीसरी आवृत्ति)

76. अशोक वाजपेयी (संपादन) - परम्परा की आधुनिकता : हजारी प्रसाद द्विवेदी, पूर्वोदय प्रकाशन, 1997 ई०

77. कर्ण सिंह चौहान (संपादन) - साक्षात्कार : डॉ० रामविलास शर्मा से बातचीत राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1986 ई०

78. नन्दकिशोर नवल (संपादित) - नामवर संचयिता, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2003 ई०

79. राजकिशोर (संपादन) - स्त्री परंपरा और आधुनिकता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004 ई०

80. रामबक्ष (संपादक), नामवर सिंह (प्रधान संपादक) - महावीर प्रसाद द्विवेदी प्रतिनिधि संकलन, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया-1995 ई०

81. वीर भारत तलवार (संपादक), नामवर सिंह (प्रधान संपादक) - राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' प्रतिनिधि संकलन नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया - 2005 ई०

82. सत्य प्रकाश मिश्र (संपादक), नामवर सिंह (प्रधान संपादक) - बालकृष्ण भट्ट : प्रतिनिधि संकलन, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया-2004 ई०

83. राबर्ट डब्ल्यू मैक्चेस्नी, इलेन मिक्सिन्स वुड, जॉन बेलेमी फॉस्टर (संपादक) - पूंजीवाद और सूचना को युग, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, 2006 (प्रथम हिन्दी संस्करण)

84. शिवपूजन सहाय, नलिनविलोचन शर्मा- अयोध्याप्रसाद खत्री-स्मारक ग्रन्थ, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, वि० 2017

85. श्याम कश्यप (संकलन एवं संपादन) - हिन्दी साहित्य का इतिहास पुनर्लेखन की समस्याएँ, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, संशोधित एवं परिवर्धित द्वितीय संस्करण, 1999 ई०

iii) हिन्दी पत्र एवं पत्रिकायें :-

86. आलोचना - सहस्त्राब्दी अंक - चार 2001, जनवरी-मार्च, परमानंद श्रीवास्तव (संपा०)

87. आलोचना - सहस्त्राब्दी अंक-पांच, 2001, अप्रैल-जून, परमानन्द श्रीवास्तव (संपा०)

88. इतिहास बोध - फरवरी 2005, लालबहादुर वर्मा (संपादक)

89. कसौटी - अंक - 15, अगस्त 2005

90. कादम्बिनी - अंक - 6, अप्रैल 1961

91. जनसत्ता (दिल्ली) - 21 अगस्त 2005

92. तद्भव - अप्रैल 2002, अंक-7, अखिलेश (संपादक)

93. तद्भव - अगस्त 2004, अंक-11, अखिलेश (संपादक)

94. पहल - अंक - 73, ज्ञानरंजन (संपादक)

95. पहल - अंक - 75, ज्ञानरंजन (संपादक)

96. पहल - अंक - 77, ज्ञानरंजन (संपादक)

97. पूर्वग्रह - अंक - 70-71, सितम्बर - दिसम्बर - 1985, अशोक वाजपेयी (संपादक)

98. पूर्वग्रह - अंक 118, मदन सोनी (संपादक)

99. मित्र-अंक 2, अप्रैल 2003, मिथिलेश्वर (संपादक)

100. संधान-अंक 3, अक्टूबर - दिसम्बर-2001, सुभाषा गाताडे (संपादक)

101. समकालीन जनमत - अंक-1, वर्ष - 23, मार्च 2004, सुधीर सुमन, प्रणय कृष्ण (संपादक)

102. समकालीन सृजन - अंक - 21, 2002, शंभुनाथ (संपादक)

iv) English Books/ Journals

1. Avijit Pathak – Modernity Globalization and Identity towards A Reflexive Quest; Aakar Books, Delhi, First Published – 2006

2. Bipan Chandra – India's Struggle for Independence, Penguin Books, 1989

3. Braj Ranjan Mani – Debrahmanising History, Manohar Publications, Delhi, 2005

4. Deepak Kumar – Science and The Raj, Oxford University Press, 2006

5. Dipankar Gupta – Mistaken Modernity (India between worlds). Harper Collins Publishers India, Published-2000

6. Edward W. Said – Orientalism: Western conception of the Orient, Penguin Books, 2001

7. Jawaharlal Nehru – An Autobiography Allied Publishers Private Limited, 1962

8. Marx Engels– On Colonialism, Progress Publishers, Moscow, 1978 (Seventh Printing)

9. Marx Engels – The First Indian War of Independence 1857-1859 Progress Publishers, Moscow, 1988 (Sixth Printing)

10. Niharranjan Ray (Director) – Modernity and Contemporary Indian Literature Proceedings of a Seminar, Indian Institute of Advanced Study, Simla, 1968 (First Edition)

11. Partha Chatterjee – Nationalist Thought and the Colonial World: A Derivative Discourse, Oxford University Press, 1996

12. Pawan K. Verma – The Great Indian Middle Class, Penguin Books, 1999

13. Sanjay Joshi – Fractured Modernity: Making of a Middle Class, in Colonial North India, Oxford University Press, 2005.

14. Sudha P. Pandya, Prafulla, C. Kar – (Edited)-Interdisciplinary Perspectives on Modernity, Pencraft International, Delhi, 2001, (First Edition)

15. The Bernard Cohn Omnibus, Oxford University Press, 2004

16. Thomas R. Metcalf – Forging the Raj: Essay on the British India in the Heyday of Empire, Oxford University Press, 2005.

17. Social Scientist – 394-395, Number 3-4, March – April-2006

v) Dictionary

1. New compact oxford Dictionary Thesaurus and Wordpower, Guide, Oxford University Press Inc. New York, 2005, Indian Edition.

vi) Website

1. http//www.wikipedia.org/wiki/modernity